जैन विश्वभारती संस्थान

¼ekU; fo'ofo|ky;½

ykMuw & 341 306 ¼jktLFkku½

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातकोत्तर (एम.ए.) उत्तरार्द्ध

विषय-अहिंसा एवं शांति

षष्ठ पत्र

शान्ति संगठन एवं आन्दोलन

Peace Organisation and Movement

fo'k"kK lfefr

1- ik- jk/kkd".ku
चेन्नई

2- ik- t;idk'ke
मदुरई

3- ik- t-,u- 'kek
चण्डीगढ़

4- ik- cPNjkt nxM
आचार्य, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

5- Mk- oh- v#.k dekj
कोटा

6- Mk- vfuy/kj
विभागाध्यक्ष, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

7- Mk- le.kh lR;iKk
सह–आचार्य, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

7- Mk- vfuynÙk feJk
सहायक निदेशक, गांधी संग्रहालय
दिल्ली

कॉपीराइट :
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ – 341 306 (राजस्थान)

लेखक :
डॉ. अनिल धर

संस्करण : 2015

मुद्रित प्रतियाँ : 100

मुद्रक :

vuØef.kdk

“kkfr lxBu ,oa vkUnksyu

Hkkx&1

इकाई–1	अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का उद्‌भव, राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, संयुक्त राष्ट्रसंघ : विश्व नागरिकता तथा विश्वशांति की संसद, सिपरी (स्टॉकहोम पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट)	01–40
इकाई–2	प्रमुख संघ के गठन, यूरोपीय संघ, वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन, आसियान	41–75
इकाई–3	सार्क–भूमिका एवं क्षेत्र, सार्क : विश्व राजनीति के मंच पर, शीर्ष सम्मेलन	76–86

Hkkx&2

इकाई–4	शांति आन्दोलन, भारतीय शांति आन्दोलन, गांधीवादी आन्दोलन असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, ग्रामदान, भूदान, आनन्दवन, अणुव्रत आन्दोलन	87–108
इकाई–5	पाश्चात्य शांति आन्दोलन	109–124

Hkkx&1

bdkbZ&1 vUrjkZ"Vªh; laLFkkvksa dk mn~Hko] jk"Vª la?k] vUrjkZ"Vªh; Je laxBu] vUrjkZ"Vªh; U;k;ky;] la;qDr jk"Vª la?k % fo'o ukxfjdrk rFkk fo'o'kkfr dh laln] fljijh ¼LVkdgkse ihl fjlpZ bULVhV~;wV½

lajpuk

1-0 jk"Vª la?k % izLrkouk
1-1 ,sfrgkfld i`"BHkwfe
1-2 jk"Vª&la?k ds mís';
1-3 jk"Vª la?k dh lnL;rk
1-4 jk"Vª la?k ds vax
1-5 jk"Vª la?k ds izeq[k dk;Z
1-6 vUrjkZ"Vªh; fookknksa dk 'kkafriw.kZ lek/kku
1-7 jk"Vª la?k dh vlQyrk ds eq[; dkj.k
1-8 jk"Vª la?k dk ewY;kadu
1-9 vUrjkZ"Vªh; Je laxBu
1-10 lajpuk
1-11 ewY;kadu
1-12 vUrjkZ"Vªh; U;k;ky;
1-13 U;k;ky; dk xBu
1-14 U;k;ky; dk {ks=kf/kdkj
1-15 U;kf;d fu.kZ; dh fØ;kfUofr
1-16 vUrjkZ"Vªh; U;k;ky; dk ewY;kadu
1-17 la;qDr jk"Vª dk tUe
1-18 la;qDr jk"Vª ds mís';
1-19 la;qDr jk"Vª dh lnL;rk
1-20 la;qDr jk"Vª ds izeq[k vax
1-21 la;qDr jk"Vª dh izeq[k fof'k"V ,tsfUl;k¡
1-22 la;qDr jk"Vª ds izeq[k dk;Z
1-23 la;qDr jk"Vª la?k vkSj fo'o'kkfr
1-24 la;qDr jk"Vª la?k % mRiUu fookn
1-25 la;qDr jk"Vª dk 'kkfUr LFkkiuk esa ;ksxnku % ewY;kadu
1-26 fljijh

1-0 jk"Vª l?k % iLrkouk

''यह वह समय था जब यूरोपीय राष्ट्रों में साम्राज्यवादी प्रवृत्तियाँ अत्यन्त उग्र रूप धारण कर चुकी थीं। एक ओर वे राज्य थे, जिन्होंने उपनिवेश बसाकर विदेशी मण्डियाँ प्राप्त कर ली थीं और अपना व्यापार बढ़ा रहे थे। दूसरी ओर कुछ ऐसे राष्ट्र थे, जो उपनिवेशों को हासिल करने के लिए व्यग्र थे ताकि औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली औद्योगिक वस्तुओं को काफी लाभ पर खपाने के लिए विदेशों की मण्डियाँ प्राप्त कर सकें। अतएव, एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली बनने की उनमें होड़ चल पड़ी। स्थिति की भयंकरता को अनुभव करते हुए भी, यूरोपीय राजनीतिज्ञ संघर्ष को रोकने की दिशा में कुछ न कर सके और अन्ततोगत्वा यूरोप में इन दोनों श्रेणियों के राष्ट्रों के मध्य विश्व–युद्ध छिड़ गया।

प्रारम्भ में अमरीका तटस्थता की नीति का पालन करता रहा। परन्तु अमरीकन राजनीतिज्ञ एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण का प्रयास करने लगे जो विश्व–शान्ति की स्थापना करने में समर्थ हो सके। कुछ अमरीकी नेताओं के प्रयासों से वहाँ 'शान्ति स्थापना लीग' नामक संस्था का निर्माण हुआ जिसका प्रथम सम्मेलन फिलाडेल्फिया में जून 1915 में हुआ। इस सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का पंच–फैसले या न्यायिक फैसलों से समाधान, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करने के लिए एक परिषद् की स्थापना करने, अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के निर्माण हेतु समय–समय पर सम्मेलन आयोजित करने तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़ों के समाधान हेतु सैनिक–शक्ति का प्रयोग नहीं करने आदि प्रस्तावनाओं के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने का सुझाव दिया गया।

1-1 ,frgkfld i"BHkwfe

सन् 1916 में वाशिंगटन में इस संस्था का दूसरा सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि विवादों की मध्यस्थता कराना राष्ट्रों की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए अपितु शान्तिपूर्ण समझौते का प्रयास अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए और इस उद्देश्य की प्रति–पूर्ति हेतु एक विश्व संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए। इस सम्मेलन से प्रेरित होकर न्यूयार्क के निवासियों ने 'स्वतन्त्र राष्ट्र–संघ की लीग' नामक संस्था की स्थापना की।

परिस्थितियों के वशीभूत अमरीका को मित्र–राष्ट्रों की तरफ से प्रथम विश्व–युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा। उस समय तत्कालीन अमरीकन राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने अमरीकन सीनेट में भाषण देते हुए 'शान्ति के लिए विश्व लीग' की स्थापना पर जोर दिया। उनकी मान्यता थी कि युद्ध के द्वारा स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। उन्होंने स्थायी शान्ति की स्थापना पर जोर देते हुए कहा कि समानता, सामान्य हित और पारस्परिक सहयोग की भावना पर आधारित सिद्धान्तों से ही विश्वशान्ति स्थापित हो सकती है। विल्सन एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण करने के इच्छुक थे जिसका आधार–राष्ट्रों की समानता, सार्वभौमिकता सत्ता, पारस्परिक सम्मान और सहयोग पर निर्मित हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने 8 जनवरी, 1918 को एक 'चौदह–सूत्री' कार्यक्रम विश्व के सामने प्रस्तुत किया जिसके आधार पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण पर जोर दिया।

पेरिस के शान्ति सम्मेलन में राष्ट्र–संघ के संविधान को तैयार करने के लिए विल्सन की अध्यक्षता में 19 सदस्यों के एक आयोग की स्थापना की गयी। उस आयोग में छोटे राष्ट्रों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिला। 14 फरवरी, 1919 को उक्त आयोग द्वारा एक प्रस्ताव सम्मेलन के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया जिसे 28 अप्रेल, 1919 को कुछ सामान्य संशोधनों सहित स्वीकृत कर दिया गया। राष्ट्र संघ शान्ति सन्धियों का अभिन्न अंग बनाया गया। गैथोर्न हार्डी के शब्दों में–''राष्ट्र–संघ शान्ति सम्मेलन का एक महान रचनात्मक कार्य था। इसकी आत्मा पूर्णतः अन्तर्राष्ट्रीय थी और उन सदस्यों के हाथों में, जो निःस्वार्थ

भाव से उपयोग करने का संकल्प करते, यह शान्ति का एक शानदार उपकरण बन सकता था। शान्ति सन्धियों की प्रथम 26 धाराओं में उसी से सम्बन्धित व्यवस्थाओं का उल्लेख है।

1-2 jk"V&l?k dk mn~ns';

राष्ट्र–संघ की स्थापना के मुख्य उद्‌देश्य निम्नलिखित थे–

(1) युद्धों की रोकथाम करना।

(2) राष्ट्रों के मध्य सम्मानजनक और प्रतिष्ठापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।

(3) राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन करने में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को मान्यता प्रदान करना।

(4) राष्ट्रों द्वारा सभी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों और समझौतों का सम्मान करना और उन पर न्यायपूर्ण आचरण करना।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बनाये रखना।

1-3 jk"V&l?k dh lnL;rk

प्रारम्भ में राष्ट्र–संघ के 52 राष्ट्र सदस्य थे किन्तु बाद में बढ़ कर 57 हो गये।

राष्ट्र–संघ में तीन प्रकार के सदस्य थे–

(1) वे राष्ट्र, जो इसके मौलिक सदस्य थे, इनकी संख्या 32 थी,

(2) आमन्त्रित राष्ट्र, तथा

(3) समझौता–पत्र लागू होने के बाद बनाये गये सदस्य राष्ट्र। उल्लेखनीय है कि अप्रेल 1920 को राष्ट्र संघ के 42 सदस्य थे और 21 राष्ट्र बाद में प्रविष्ट हुए।

राष्ट्रसंघ के संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि यदि कोई देश अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों को स्वीकार करने, सैनिक शक्ति और शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में राष्ट्र–संघ द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने पर अपनी सहमति प्रकट करे तथा राष्ट्र–संघ की असेम्बली (साधारण सभा) के सदस्य दो–तिहाई मतों से उसे सदस्य बनाने के लिए अपनी सहमति प्रदान करे तो उसे राष्ट्र–संघ का सदस्य बनाया जा सकेगा। किसी भी सदस्य राष्ट्र को परिषद् की सर्वसम्मति से राष्ट्र–संघ से पृथक किया जा सकता था तथा कोई भी सदस्य राष्ट्र दो वर्ष की पूर्व सूचना देकर सदस्यता त्याग सकता था।

राष्ट्रसंघ की अन्य व्यवस्थाएँ– (1) गुप्त सन्धियों पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्‌देश्य से राष्ट्रसंघ द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी कि सन्धि करने वाले राष्ट्र अपनी सन्धियों को राष्ट्र संघ में पंजीकृत करायेंगे। (2) राष्ट्रसंघ के समझौता पत्र में यह भी व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रों द्वारा सभी सन्धियों और समझौतो का पालन किया जोयगा। (3) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा यातायात, स्वास्थ्य और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने की जिम्मेदारी भी राष्ट्रसंघ ने ली।

1-4 jk"V&l?k dk vax

राष्ट्र–संघ के प्रमुख अंग निम्नलिखित थे :

(1) साधारण सभा, (2) परिषद, (3) सचिवालय।

¼1½ lk/kkj.k lHkk & यह राष्ट्र–संघ का प्रमख अंग थी और सभी छोटे–बड़े राष्ट्रों को इसकी सदस्यता प्राप्त थी। प्रत्येक राष्ट्र को एक मत देने का अधिकार होता था। साधारण सभा में अध्यक्ष का चुनाव सदस्यों द्वारा ही किया जाता था और वे ही अपने लिए नियम बनाते थे। जिन मामलों पर विचार

करना होता था उसे महासचिव द्वारा पहले ही तैयार कर लिया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर साध ारण सभा उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकती थी। साधारण सभा के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए 6 विशेष समितियों की स्थापना की गयी थी, जो निम्नवत् थी :

(1) संवैधानिक तथा कानूनी मामलों से सम्बन्धित समिति।

(2) राजनीतिक समिति।

(3) सामाजिक और मानवीय मामलो से सम्बन्धित समिति।

(4) बजट समिति।

(5) संगठन समिति, और

(6) निःशस्त्रीकरण समिति।

इन समितियों के अतिरिक्त भी आवश्यकता पड़ने पर अन्य समितियों का गठन साधारण सभा के द्वारा किया जा सकता था। साधारण सभा में विश्व–शान्ति से सम्बन्धित अथवा राष्ट्र–संघ के कार्य–क्षेत्र में आने वाले किसी भी विषय पर विचार किया जा सकता था। परन्तु इन समस्याओं के सम्बन्ध में लिये गये निर्णय बाध्यकारी नहीं होकर केवल सिफारिश मात्र होते थे। साधारण सभा को निम्न विषयों पर विशेषाधिकार भी प्राप्त थे :

(1) राष्ट्र–संघ के बजट का निर्धारण करना।

(2) सुपरवाइजरी कमीशन की स्थापना करना।

(3) राष्ट्र–संघ के अधिकार'–पत्र में संशोधन करना।

(4) दो–तिहाई बहुमत के समर्थन से नवीन राष्ट्रों को राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान करना।

(5) परिषद् के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन करना।

(6) परिषद् के अस्थायी एवं स्थायीसदस्यों की संख्या में वृद्धि का अधिकार एवं

(7) परिषद् के लिए नामजद किये जाने वाले नये सदस्यों की पुष्टि करना।

साधारण सभा प्रतिवर्ष बहुमत के आधार पर परिषद् के लिए तीन अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन करती थी और प्रति नवें वर्ष बहुमत द्वारा अस्थायी न्यायालय के लिए 15 न्यायधीशों का निर्वाचन भी करती थी।

साधारण सभा परिषद् की सिफारिश पर महासचिव का भी निर्वाचन करती थी। साधारण सभा में ऐसी सन्धियो पर भी विचार किया जा सकता था जो लागू न हों अथवा लागू किये जाने योग्य नहीं हो। साधारण सभा ऐसे मामलों पर भी विचार–विमर्श करती थी जो परिषद् द्वारा उसके पास विचारार्थ भेजे जाते थे। ऐसे मामलों के सम्बन्ध में साधारण सभा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से भी कानूनी राय ले सकती थी। साधारण–सभा को अधिकार था कि वह परामर्शदात्री समितियों की नियुक्ति के लिए परिषद् से अपनी अनुशंसा प्रकट करें।

साधारण सभा का एक अध्यक्ष और 8 उपाध्यक्ष होते थे। साधारण सभा के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए 6 समितियों का गठन किया गया था। ये समितियाँ : (1) कानूनी और संवैधानिक समस्याओं को सुलझाने, (2) तकनीकी संगठन एवं बौद्धिक सहयोग प्रदान करने, (3) शस्त्रास्त्रों में कमी करने, (4) बजट निर्माण, (5) सामाजिक व अन्य समस्याओं को सुलझाने, (6) राजनीतिक समस्याओं का निदान करने आदि विविध क्षेत्रों में कार्य करती थीं। इनके अतिरिक्त एवं अन्य समिति विषय सूची का निर्धारण करने तथा दूसरी सदस्यों के प्रमाण–पत्रों की वैधता की जाँच करने का कार्य करती थी।

साधारण सभा के सभी निर्णयों में समस्त सदस्य राष्ट्रो की सहमति होना जरूरी था, परन्तु कार्यविधि से सम्बन्धित सभी निर्णय बहुमत द्वारा किये जा सकते है। हेरिस (Harris) के मतानुसार–''सदस्य राज्य अपनी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को बचाने के लिए इतने सतर्क थे कि वे ऐसी किसी संस्था के सदस्य बनने के इच्छुक नहीं थे, जिसमें उन पर किसी निर्णय को लादे जाने का भय हो।''

¼2½ ifj"kn& आरम्भ में राष्ट्र संघ की परिषद के 5 स्थायी सदस्य– ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका, इटली और जापान एवं चार अस्थायी सदस्य थे। परन्तु अमरीकन सीनेट की स्वीकृति नहीं मिलने के कारण अमरीका राष्ट्र–संघ का सदस्य नहीं बन सका।

तत्पश्चात् 8 सितम्बर, 1927 को जर्मनी को परिषद् का स्थायी सदस्य बना लिया गया और अस्थायी सदस्यों की संख्या में वृद्धि करके पहले 6 और उसके बाद 9 निश्चित कर दी गयी थी। परिषद् के अस्थायी और स्थायी सदस्यों की संख्या में बराबर वृद्धि अथवा कमी होती रही। जहाँ सदस्य राष्ट्रों के स्वार्थ टकराये, वहीं उन्होंने राष्ट्र–संघ की स्थायी सदस्यता को त्याग दिया। 1939 से पूर्व ही जर्मनी और इटली ने राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और युद्ध प्रारम्भ होने के बाद राष्ट्र–संघ पूर्णरूपेण प्रभावहीन हो गया।

परिषद् उन सभी मामलों पर विचार–विमर्श कर सकती थी जिन मामलों पर साधारण सभा में विचार किया जा सकता था। परिषद् की बैठकें तीन माह में एक बार होती थी तथा आवश्यकता होने पर कभी भी बुलायी जा सकती थी। परिषद् का सबसे मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करना था। इसके अतिरिक्त, निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी प्रयास करना, बाहरी आक्रमणों से सदस्य राष्ट्रों की प्रादेशिक अखण्डता को रक्षा करना, संरक्षित प्रदेशों के शासन की रिपोर्ट पर विचार करना, साधारण सभा की सिफारिशों को क्रियान्वित करना, अन्य प्रशासकीय कार्य करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए सैनिक कार्यवाही का निश्चय करना आदि परिषद् के कार्य थे।

परिषद् में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान शान्तिपूर्ण ढंग से हो जाता था। विश्व शान्ति की स्थापना में परिषद् ने प्रशंसनीय कार्य किया। हावर्ड इलियस के मतानुसार–''अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को विचार-विमर्श के माध्यम से तथा शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने के कारण परिषद् ने यह स्पष्ट कर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान युद्ध के अतिरिक्त अन्य उपायों द्वारा भी किया जा सकता है।

महासचिव की नामजदगी, सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति आदि कार्य भी परिषद् के माध्यम से ही सम्पन्न होते थे। यह राष्ट्र–संघ की सर्वाधिक महत्व की संस्था थी।

¼3½ lfpoky; & राष्ट्र–संघ का स्थायी प्रशासनिक अंग सचिवालय था। इसका मुख्यालय जेनेवा में था जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के 600 कर्मचारी कार्यरत थे जो अपने कार्यों के लिए राष्ट्र–संघ के प्रति ही उत्तरदायी थे और उनका प्रशासनिक अधिकारी महासचिव होता था। राष्ट्र–संघ के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने में सचिवालय का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इसका मुख्य कार्य साधारण सभा एवं परिषद् के लिए विचारणीय बिन्दुओं की सूची तैयार करना, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करना और उनका प्रकाशन करना, बैठकों की कार्यवाही का विवरण तैयार करना एवं अन्य प्रशासनिक कार्यों का सम्पादन करना था।

1-5 jk"Vª la?k ds eq[; dk;Z

राष्ट्र–संघ चार्टर के अनुसार राष्ट्र–संघ के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) प्रशासनिक कार्य,

(2) संरक्षण सम्बन्धी कार्य,

(3) अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा करना,

(4) सामाजिक और आर्थिक कार्य,

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना।

1-6 vrjk"Vh; fooknk dk 'kkfri.k lek/kku

vkyM }hileg (Aaland Islands) & ब्रिटेन के द्वारा राष्ट्रसंघ की परिषद् के सामने लाया जाने वाला यह प्रथम विवाद था। स्वीडन और फिनलैंड के मध्य बथानिया की खाड़ी (Gulf of Bathania) के दक्षिण में आलैंड द्वीप समूह स्थित है। इन द्वीपों पर फिनलैंड का अधिकार था, परंतु इनके अधिकांश निवासी स्वीडन के थे और वे स्वीडिश भाषा बोलते थे। वे स्वीडन के साथ विलय के इच्छुक थे। फिनलैंड इसके विरूद्ध था, उसका तर्क था कि आलैंड द्वीप लंबे समय से उसके अधिकार में थे तथा पेरिस शांति सम्मेलन में उन्हे फिनलैंड की संप्रभुता के अधीन स्वीकार किया था। स्वीडन तथा फिनलैंड के मध्य हुई प्रत्यक्ष वार्ता का कोई परिणाम नहीं निकाला। जब फिनलैंड ने अपने सैनिक भेजकर स्वीडन–समर्थक आंदोलनकारियों को बंदी बना लिया तब तनाव में वृद्धि हो गई। स्वीडन ने सैनिक कार्यवाही की तैयारी आरंभ कर दी। उस समय, जुलाई 1920 में यह विवाद राष्ट्रसंघ की परिषद के समक्ष लाया गया। परिषद ने एक जाँच आयोग की रिपोर्ट के आधार पर, जून 1921 में यह निर्णय लिया कि आलैंड द्वीप फिनलैंड की संप्रभुता के अधीन बने रहेंगे, परंतु फिनलैंड की सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि स्वीडन के लोगों को स्वायत्तता प्राप्त हो तथा उनके राजनीतिक अधिकार सुरक्षित रहें। निजी संपत्ति के अधिकार तथा स्कूलों में स्वीडिश भाषा के प्रयोग को मान्यता दी गई। राष्ट्रसंघ की परिषद् के निर्णय को दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया तथा युद्ध टल गया। आलैंड द्वीपसमूह की तटस्थता की गारंटी दी गई तथा 1922 में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण भी प्रदान किया गया।

dkQ fookn (The Corfu Case) – यह विवाद ग्रीस तथा इटली के मध्य उत्पन्न हो गया था। इस विवाद की पृष्ठभूमि में अल्बेनिया की सीमा संबंधी समस्या थी। अल्बेनिया बाल्कन क्षेत्र का एक छोटा–सा देश है। ग्रीस तथा यूगोस्लाविया के साथ उसकी साझी सीमा थी। राष्ट्रसंघ द्वारा अल्बेनिया को स्वतंत्रा देश के रूप में मान्यता प्राप्त थी। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात न केवल इटली उसको अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था, वरन उसके अन्य पड़ौसी देश भी उसकी भूमि में रुचि रखते थे। यूगोस्लाविया ने 1921 में अल्बेनिया पर आक्रमण कर दिया था। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने राष्ट्रसंघ के महासचिव के नाम एक तार भेजकर यूगोस्लाविया के विरूद्ध कार्यवाही करने का आग्रह किया क्योंकि उसने अल्बेनिया पर आक्रमण किया था। यूगोस्लाविया ने अपनी सैनिक कार्यवाही बंद करके, अपने सैनिकों को वापस बुला लिया। इसके पश्चात् राष्ट्रसंघ की परिषद् ने अल्बेनिया की सीमा निर्धारित करने के लिए एक समिति का गठन किया।

27 अगस्त, 1923 को जब सीमा निर्धारण करने वाली समिति ग्रीस–अल्बेनिया की सीमा का निर्धारण कर रही थी, उस समय इस समिति के एक इटैलियन सदस्य की, ग्रीस की सीमा के अंदर, गोली मारकर हत्या कर दी गई। इटली ने इस अपराध के लिए ग्रीस को दोष दिया और यह माँग की कि वह इटली से तुरंत क्षमा याचना करे, अपराधियों को दंड दिया जाए तथा 5 दिन के अंदर अपराध के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में इटली को 5 करोड़ अमरीकी डॉलर का भुगतान किया जाए। ग्रीस इन माँगों को स्वीकार नहीं कर सकता था। इसलिए इटली ने भारी गोलीबारी की तथा उसके कौर्फू चैनल नामक द्वीप पर कब्जा कर लिया। ग्रीस ने यह समस्या परिषद के समक्ष प्रस्तुत की तथा उससे प्रार्थना की कि कौर्फू द्वीप को खाली करवाया जाए। परंतु इटली ने यह कहा कि यह विवाद ऐसा नहीं था जिस पर परिषद् विचार करे। इटली ने माँग की कि इस समस्या को राजदूतों की समिति (Committee of

Ambassadors) के विचारार्थ भेज दिया जाए। राजदूतों ने मामले की छानबीन करने के बाद अपनी रिपोर्ट में लगभग वही सिफारिश की जो कि इटली चाहता था। समिति ने कहा कि ग्रीस अपराधियों को दंड दे, इटली से क्षमायाचना करे तथा उसे 5 करोड़ अमरीकी डालर की क्षतिपूर्ति का भुगतान करे। यदि ग्रीस यह शर्तें पूरी कर दे तो इटली कौर्फू से अपनी सेना वापस बुला लेगा तथा उसे ग्रीस की संप्रभुता में वापस कर दिया जाएगा। दोनों देशों ने सभी शर्तें मान लीं तथा इटली ने कौर्फू द्वीप से अपनी सेना हटा लीं। इस विवाद के समाधान से यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रसंघ को बड़ी शक्तियों की इच्छा के अनुसार ही कार्य करना पड़ता था। इटली ने गोलीबारी तथा बमवर्षा की थी। उसी ने कौर्फू द्वीप पर कब्जा कर लिया था। अंततः सबको उसी की बात माननी पड़ी। इटली को ग्रीस से क्षतिपूर्ति के रूप में एक बड़ी राशि मिल गई, यद्यपि ग्रीक सरकार का कोई दोष नहीं था। ग्रीस की भूमि पर एक इटैलियन राजनयिक की किसी अपराधी ने हत्या कर दी थी, इसके लिए इटली ने ग्रीस को अपमानित करवाकर दंड दिलवाया।

xhl&cYxkfj;k fookn **(Dispute between Greece and Bulgaria)** & प्रथम विश्व युद्ध के अनेक वर्ष बाद तक ग्रीस–बुल्गारिया सीमा पर अशांति बनी रही थी। उपद्रवों के लिए 'मैसेडोनियन' ब्रिगैन्ड'' नामक उग्रवादी समूह उत्तरदायी था। पेरिस शांति सम्मेलन ने मैसेडोनिया का अधिकांश भाग यूगोस्लाविया को सौंपा था और उसका अधिकांश शेष प्रदेश ग्रीस को मिला था। मैसेडोनिया के लोग जनजातियों के थे तथा वे लड़ाई करने में गर्व का अनुभव करते थे। उनके अधिकांश नेता भागकर बुल्गारिया चले गए थे और वहाँ उन्होंने मैसेडोनिया के क्रांतिकारी संगठन की स्थापना कर ली थी। इन क्रांतिकारियों के द्वारा समय–समय पर ग्रीस तथा यूगोस्लाविया, दोनों के प्रदेशों में छापे मारे जाते थे। इन गतिविधियों से बुल्गारिया के अपने पड़ोसियों के साथ संबंध बिगड़ गए थे।

अक्टूबर 1925 में, इसी प्रकार के एक छापे के दौरान ग्रीस की एक सीमा चौकी का कमांडर एवं उसका एक जवान मार डाले गए। ग्रीस की सरकार ने इस पर गंभीर आपत्ति की तथा अपनी सेना को बुल्गारिया की ओर कूच करवा दिया। बुल्गारिया की सरकार ने प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 के अधीन राष्ट्रसंघ में याचिका दायर की। परिषद के विधान ब्रियाँ (Briand) ने पेरिस में परिषद की एक बैठक बुलाई। इस बीच उसने ग्रीस तथा बुल्गारिया से तब तक कोई सैनिक कार्यवाही न करने का आग्रह किया जब तक परिषद कोई निर्णय न कर ले। परिषद ने, अपनी बैठक में ब्रियाँ की कार्यवाही का अनुमोदन किया तथा ग्रीस से आग्रह किया कि वह 24 घंटे के अंदर अपने सैनिक वापस बुला ले। दोनों देशों से यह भी कहा गया कि वे 60 घंटे के अंदर परिषद को बताएँ की सीमा पर पूर्ण शांति विद्यमान है। परिषद ने फ्रांस, ब्रिटेन तथा इटली से आग्रह किया कि वे अपने सैनिक प्रेक्षक भेजकर यह सुनिश्चित करें कि ग्रीस–बुल्गारिया सीमा पर शांति बनी रहे। ग्रीस को आक्रमण करने का दोषी पाया गया। ग्रीस ने अपने सैनिक वापस बुला लिए। साथ ही ग्रीस को यह भी आदेश दिया गया कि वह बुल्गारिया को राष्ट्रसंघ के एक आयोग द्वारा निर्धारित मुआवजे का भुगतान करे। ग्रीस ने इस निर्णय को स्वीकार करके मुआवजे की राशि का भुगतान कर दिया। इस निर्णय ने कुछ कटुता अवश्य उत्पन्न की, क्योंकि जब दो वर्ष पूर्व इटली ने ग्रीस के कौर्फू द्वीप पर कब्जा कर लिया था, उस समय भी दंड ग्रीस को ही मिला था, इटली को नहीं। उस विवाद का निर्णय परिषद ने नहीं, राजदूतों की समिति ने किया था। इस ग्रीस–बुल्गारिया विवाद में राष्ट्रसंघ को अवश्य सफलता मिली क्योंकि यह विवाद दो छोटे देशों के मध्य था।

ekslyy dk fookn **(The Mosul Dispute)** & इस विवाद का संबंध उस क्षेत्र से था जिसे मोसूल की विलायत अथवा मोसूल का जिला कहते थे। लोसेन की संधि (The Treaty of Lausanne) 1923 में, प्रथम विश्व युद्ध के विजेताओं तथा तुर्की के मध्य (आरोपण के बिना) बातचीत से संपन्न हुई थी। पूर्व तुर्की साम्राज्य के अनेक गैरतुर्की प्रदेशों को स्वतंत्रता से वंचित रखकर मैन्डेट प्रदेश घोषित

किया गया था। ईराक इसी श्रेणी का एक मैन्डैट प्रदेश था, जो कि ब्रिटेन के संरक्षण में रखा गया था। लोसेन की संधि में यह प्रावधान किया गया था कि यदि बिटेन तथा तुर्की ईराक–तुर्की सीमा पर सहमत न हो पाएं तो इस प्रश्न को राष्ट्रसंघ की परिषद तय करेगी। मोसूल की विलायत ब्रिटेन के अधिकार में थी, परंतु इसके स्वामित्व का दावा तुर्की कर रहा था। मोसूल तेल के भंडार वाला प्रदेश है। इसके विषय में ब्रिटेन तथा तुर्की के मध्य कोई समझौता नहीं हो सका। इस विवाद को परिषद् के समक्ष निर्णय के लिए लाया गया। तुर्की ने यह पहले ही मान लिया था कि परिषद् का जो भी निर्णय होगा, वह उसे स्वीकार करेगा। यद्यपि तुर्की परिषद् का सदस्य नहीं था, फिर भी अनुच्छेद 4 के अनुसार उसे इसकी कार्यवाही में भाग लेने के लिए बुलाया गया। परिषद् ने एक तटस्थ सीमा आयोग नियुक्त किया। विवादास्पद प्रदेश में तुर्क, अरब तथा कुर्द राष्ट्रीयताओं की मिली–जुली जनसंख्या का निवास था। जब सीमा आयोग कार्यरत था, उन्हीं दिनों कुर्द लोगों ने तुर्की की सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह को दबा दिया गया। बहुत से कुर्द तुर्की से भागकर मोसूल में आ गए और कई नई मुठभेड़ें हुई। परिषद् ने 1925 के आरंभ में परिस्थिति का जायजा लेने के लिए एक अन्य आयोग को भेजा। इस आयोग की रिपोर्ट स्पष्ट रूप से तुर्की के विरुद्ध थी। जब तुर्की को यह लगा कि रिपोर्ट उसके विरुद्ध जाने वाली है तो उसके परिषद् में उपस्थिति बंद कर दी तथा उसके निर्णय को मानने की अपनी वचनबद्धता से भी विमुख हो गया।

ऐसी स्थिति में राष्ट्रसंघ की परिषद् ने यह विवाद अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of International Justice) के पास भेजा। न्यायालय ने यह आदेश दिया कि परिषद् का निर्णय सबको मान्य होगा। अंततः तुर्की ने राष्ट्रसंघ के निर्णय को मान लिया। जून 1926 में ब्रिटेन, तुर्की तथा ईराक के मध्य एक त्रिपक्षीय समझौता हुआ। इसके अनुसार मोसूल का एक छोटा–सा अंश तुर्की को वापस दे दिया गया तथा शेष मोसूल ब्रिटेन के ईराकी मैन्डेट का भाग बन गया। तुर्की को तेल से होने वाली आय का एक अंश (Royalty) देने का निर्णय भी लिया गया। मोसूल विवाद में एक बड़ी शक्ति, ब्रिटेन संबद्ध था और निर्णय मूल रूप से उसके पक्ष में गया जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

foyuk dk fookn **(The Vilna Dispute)** & विलना लिथुएनिया नामक छोटे से बाल्टिक राज्य की राजधानी था। सोलहवीं शताब्दी में एक शाही विवाह ने लिथुएनिया का पोलैंड में विलय करवा दिया था। अठारहवीं शताब्दी में पोलैंड के विभाजन के फलस्वरूप पोलैंड का जो भाग रूस के अधिकार क्षेत्र में चला गया था, लिथुएनिया उसी में शामिल था। रूसी क्रांति के पश्चात लिथुएनिया स्वतंत्र देश के रूप में स्थापित हुआ। उस समय उसने विलना को पुनः अपनी राजधानी घोषित कर दिया। विलना नगर का पोलैंड के साथ भावनात्मक संबंध था, क्योंकि वहां एक सुप्रसिद्ध पोलिस विश्वविद्यालय स्थापित था। विलना में पोलिश, श्वेत रूसी (White Russian) तथा यहूदियों की मिली–जुली जनसंख्या का निवास था। यहूदियों का नगर में स्पष्ट बहुमत था। सोवियत–पोलिस युद्ध के समय 1920 में सोवियत संघ ने विलना के विषय में, लिथुएनिया को अपने समर्थन का आश्वासन दिया था, परंतु अक्टूबर 1920 में युद्ध विराम के तीन दिन पश्चात् विलना पर पोलैंड की सेना ने कब्जा कर लिया। यद्यपि पोलैंड की सरकार ने अपने सैनिकों की कार्यवाही का उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार नहीं किया, तथापि उसने विलना को छोड़ा भी नहीं। मित्र राष्ट्रों ने औपचारिक रूप से विलना को पोलैंड के भाग के रूप में उस समय मान्यता दे दी जब लिथुएनिया ने बलपूर्वक मैमेल पर कब्जा कर लिया। मित्र राष्ट्रों के निर्णय का लिथुएनिया ने तीव्र विरोध किया। उसने पोलैंड से अपने राजनयिक संबंध विच्छेद कर लिए और युद्ध की स्थिति (State of War) की घोषणा कर दी। दोनों देशों के मध्य, सीमा पर, रेल, सड़क तथा नदी सभी यातायात निलंबित कर दिए गए। समय–समय पर दोनों देशों की ओर से उत्तेजक वक्तव्य दिए गए जिन्होंने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया।

सितम्बर–अक्टूबर, 1927 में विलना से कुछ लिथुएनिया के लोगों को निष्कासित कर दिया गया। ऐसी स्थिति में लिथुएनिया की वोल्डेमारास (Voldemaras) की सरकार ने, प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 के अधीन, इस विवाद को राष्ट्रसंघ की परिषद में पेश कर दिया। जब 10 दिसंबर, 1927 को परिषद की बैठक हुई तो उसमे पोलिश राज्याध्यक्ष पिल्सुद्स्की (Pilsudski) तथा वोल्डेमारास दोनों ने ही भाग लिया। उनके आमने–सामने बैठने का यह परिणाम निकला कि परिषद ने एक सर्वसम्मत प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें कहा गया कि ''राष्ट्रसंघ के दो सदस्यों के मध्य युद्ध की स्थिति प्रसंविदा की भावना के विपरीत'' थी। लिथुएनिया ने घोषणा की कि वह पोलैंड के विरुद्ध अब युद्ध की स्थिति में नहीं है, तथा दोनों देशों की सरकारों ने प्रत्यक्ष बाचचीत आरंभ करने की सहमति व्यक्त की, परंतु व्यवहार में कोई प्रत्यक्ष बातचीत हुई ही नहीं। दोनों देशों के बीच न तो राजनयिक संबंध पुनः स्थापित हुए और न वाणिज्य संबंध। फिर भी, लंबे समय से चला आ रहा विवाद देखने में तो सुलझ गया किंतु वास्तविक मैत्री कभी भी स्थापित नहीं हुई। कार ने इसे ''राष्ट्रसंघ की वास्तविक सफलता'' का नाम लिया।

ckyhfo;k vkj ijkx, d e/; fookn **(Dispute between Bolivia and Paraguay)** & दिसंबर 1928 में बोलीविया तथा परागुए के मध्य एक सशस्त्र संघर्ष हो गया। संघर्ष का मुद्दा चाकू (Chaco) नामक एक सुदूर क्षेत्र था जिसमें किसी का भी निवास नहीं (Uninhabited) था। इस क्षेत्र पर लंबे समय से दोनों देश दावा करते रहे थे। राष्ट्रसंघ की परिषद ने दोनों देशों को परामर्श दिया कि वे स्वयं शांतिपूर्ण उपायों से इस विवाद का समाधान करें। दोनों ही देशों ने पंचनिर्णय और समझौते के अखिल अमरीकी सम्मेलन (Pan-American Conference on Artitration and Concitilation) की मध्यस्थता स्वीकार कर ली। तात्कालिक विवाद का तो समाधान हो गया, परंतु मई 1929 में नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों देशों के प्रतिनिधियों का वाशिंगठन में एक सम्मेलन हुआ, जिसके फलस्वरूप उन्होंने एक अनाक्रमण समझौते पर हस्ताक्षर किए तथा संघर्ष समाप्त हो गया।

1932 में एक बार फिर तनाव उत्पन्न हुआ और सशस्त्र संघर्ष आरंभ हो गया। अगले वर्ष (1933) परागुए ने युद्ध की विधिवत घोषणा कर दी। अमरीकी गणराज्यों के, युद्ध बंद करवाने के प्रयास विफल हो गए। राष्ट्रसंघ ने एक जांच आयोग नियुक्त किया। यह निश्चय किया गया कि कोई भी देश दोनों में से किसी भी पक्ष को शस्त्रास्त्रों की आपूर्ति नहीं करेगा, परंतु कुछ देशों ने यह प्रतिबंध लगाने से इनकार कर दिया। परागुए विद्रोह की मुद्रा में था, वह किसी प्रकार के समझौते के लिए प्रस्तुत ही नहीं था। उसने बोलीविया को पराजित करके, स्वयं को राष्ट्रसंघ से अलग कर लेने की घोषणा कर दी, अर्थात् उसने भी आक्रामक जापान और इटली की भांति राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा का पालन करने के स्थान पर, संघ की सदस्यता का त्याग करना पसंद किया। राष्ट्रसंघ ने 1935 के पश्चात इस समस्या में कोई रुचि नहीं दिखाई। अंततः, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, चिली तथा अर्जेन्टीना इत्यादि की मध्यस्थता के फलस्वरूप 1938 में शांति की स्थापना हुई। यह राष्ट्रसंघ की विफलता का एक प्रमुख उदाहरण था।

i:&dkyfc;k fookn **(The Peru-Colombia Dispute)** & पेरू तथा कोलंबिया के मध्य विवाद दक्षिणी अमेरिका का एक ऐसा विवाद था जिसमें (चाकू विवाद की भांति) संयुक्त राज्य अमेरिका ने राष्ट्रसंघ द्वारा की गई कार्यवाही का समर्थन ही नहीं, उसको प्रोत्साहित भी किया। विवाद का कारण यह था कि लेटीसिया (Leticia) नामक कोलंबिया की छोटी–सी बस्ती (तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश) को पेरू ने छीनकर अपने अधिकार में ले लिया था। कोलंबिया ने प्रसंविदा के अनुच्छेद 15 के अधीन राष्ट्रसंघ के आग्रह को मानने से इनकार कर दिया, परंतु पेरू की कुछ आंतरिक घटनाओं से विवश होकर पेरू की सरकार ने कोलंबिया के प्रदेश से वापस आ जाने की घोषणा की। उसके पश्चात्, राष्ट्रसंघ परिषद ने एक आयोग नियुक्त किया, जिसका कार्य था कि वह लेटीसिया के प्रदेश का पेरू द्वारा कोलंबिया को हस्तांतरण का निरीक्षण करे।

1933 में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय तथा राष्ट्रसंघ का ध्यान मंचूरिया के संकट तथा निस्त्रीकरण की समस्या पर केन्द्रित होने के कारण, जैसा कि ई.एच. कार का निष्कर्ष है, न तो चाकू विवाद में राष्ट्रसंघ की विफलता और न लेटीसिया के विषय में उसकी सफलता, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का चिंतापूर्ण ध्यान मंचूरिया के संकट से हटा नहीं सका।

1-7 jk"Vª la?k dh vlQyrk ds eq[; dkj.k

राष्ट्र–संघ जैसी प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संस्था अपने महान् उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकी और अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्रयास व्यर्थ हो गये और विश्व एक बार पुनः युद्ध पर उतारू हो गया। संक्षेप में, राष्ट्र–संघ की असफलता के निम्न कारण थे :

1- lo/kkfud nqcZyrk & राष्ट्रसंघ की असफलता का कारण यह था कि राष्ट्रसंघ के चार्टर में अनेक संवैधानिक कमजोरियां थी।

(क) राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्र उनकी सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं थे, उन पर केवल नैतिक बंधन था। इस नैतिक बन्धन को वे तब तक ही स्वीकार करने के लिए तैयार थे, जब तक कि उनका राष्ट्रीय स्वार्थ नहीं टकराये।

(ख) राष्ट्रसंघ के पास अपने निर्णयों को लागू करवाने के लिए कोई अन्तर्राष्ट्रीय सेना आदि की व्यवस्था नहीं थी। इसी कारण जापान द्वारा मंचूरिया पर, इटली द्वारा एबीसीनिया पर और जर्मनी द्वारा आस्ट्रेलिया और चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के समय वह अकर्मण्य साबित हुआ।

(ग) किसी भी राज्य को अपराधी घोषित करने का निर्णय परिषद् द्वारा सर्व–सम्मति से करना पड़ता था किन्तु इसमें राष्ट्रों के आपसी स्वार्थ टकराते थे। इसलिए सर्व–सम्मत निर्णय कर पाना कठिन था।

(घ) राष्ट्रसंघ की कार्यप्रणाली जटिल थी। उसके द्वारा नियुक्त कमीशन भी ढीले–ढाले होते थे।

(ङ) चार्टर के अनुसार युद्ध का पूर्ण निषेध नहीं किया गया था, केवल आक्रमणात्मक युद्ध (Offensive War) की अवैध घोषित किया गया था, जबकि रक्षात्मक युद्ध (Defensive War) को वैध माना गया था। यह बताना बहुत कठिन था कि आक्रमणकारी कौन है? प्रत्येक राष्ट्र राष्ट्रीय सुरक्षा की आड़ में युद्ध पर उतारू हो जाता था।

(च) राष्ट्रसंघ के पास स्थायी और स्वतन्त्र आय के साधन नहीं थे जिसके कारण उसे सदैव आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था।

(छ) राष्ट्रसंघ का सबसे बड़ा दोष यह था कि उसमें छोटे और बड़े राष्ट्रों में ईर्ष्या उत्पन्न करने वाला भेदभाव विद्यमान था।

इस प्रकार राष्ट्रसंघ की संवैधानिक दुर्बलता ही उसकी असफलता का मुख्य कारण सिद्ध हुई।

2- vefjdk dk vlg;ksx & राष्ट्रसंघ का दुर्भाग्य था कि उसका निर्माता और प्रमुख समर्थक राष्ट्र अमेरिका ही उसका सदस्य नहीं बन सका। गैथोर्न हार्डी के शब्दों में – ''एक बालक (राष्ट्रसंघ) को यूरोप के दरवाजे पर अनाथ की भांति छोड़ दिया, जिसके चेहरे–मोहरे से अमरीकी पैतृकता की स्पष्ट छाप दिखायी देती थी।

अमरीका द्वारा राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बनने के कारण प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में राष्ट्रसंघ के अस्तित्व पर कुप्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ–

(अ) राष्ट्रसंघ का संविधान मानने के लिए अमरीका बाध्य नहीं था। यदि किसी राज्य पर राष्ट्रसंघ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाता तो वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति अमरीका से कर सकता था।

(ब) अमरीका के पृथक हो जाने से फ्रांस और ब्रिटेन ने राष्ट्रसंघ की आदर्शवादी परम्पराओं के स्थान पर संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण नीतियों को प्रश्रय देना प्रारम्भ कर दिया, जिससे विश्व राजनीति पर कुप्रभाव पड़ा।

(स) अमरीका के सदस्य नहीं बनने से असन्तुष्ट राष्ट्र भी धीरे–धीरे इस संगठन की सदस्यता का परित्याग करने को उत्सुक हो गये।

(द) अमरीका जैसे देश के सदस्य नहीं बनने से यह संगठन सार्वभौमिक संगठन का रूप धारण नहीं कर सका।

(य) अमरीका द्वारा सदस्य नहीं बनने के कारण फ्रांस की सुरक्षा के लिए दी गयी ऐंग्लो–अमरीकन गारण्टी का कोई अर्थ नहीं रहा। फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठा। उसने गुटबन्दी की नीति को अपनाया, जिससे विश्वशांति को खतरा उत्पन्न हो गया।

3- jk"V l?k ,d lkoHkkfed lxBu ugh Fkk & राष्ट्रसंघ में विश्व की सभी महाशक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं था। अमरीका ने इसकी सदस्यता स्वीकार नहीं की। राष्ट्रसंघ में यूरोपीय देशों का प्रभाव अधिक दिखायी देता था। सोवियत रूस व पराजित जर्मनी को प्रारम्भ में इसका सदस्य नहीं बनने दिया गया। जर्मनी को 1926 में व सोवियत रूस को 1934 में राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया गया किन्तु जापान और जर्मनी ने बाद में इसकी सदस्यता का परित्याग कर दिया। धीरे–धीरे कुछ अन्य राज्य भी राष्ट्रसंघ से पृथक् हो गये। इस प्रकार राष्ट्रसंघ कुछ राष्ट्र विशेषों का ही संगठन बना रहा। अन्य शब्दों में यह सन्तुष्ट राष्ट्रों का संगठन या विजेताओं का संघ था। इस संगठन ने कभी भी विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व नहीं किया जो उसके स्वरूप की एक बड़ी कमजोरी थी। एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के लिए गैर–यूरोपीय देशों को महत्त्व नहीं देना भी उचित नहीं था। ऐसी संस्था की सफलता सन्देहास्पद ही थी। यह संस्था सर्वव्यापी नहीं थी जिसके कारण असफल रही।

4- jk"V l?k d fl)kUrk d ifr egk'kfä;k dh vukLFkk & राष्ट्रसंघ के संविधान पर हस्ताक्षर करने वाली महाशक्तियों ने विश्वशांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय बाध्यताओं और दायित्वों के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट की परन्तु वास्तविकता कुछ और थी। ब्रिटेन बराबर कहता रहता था कि ''ब्रिटिश सरकार राष्ट्रसंघ के संविधान को सामूहिक प्रयत्नों के पूर्णरूप से बनाये रखने के लिए कटिबद्ध है।'' फ्रांस इस बात पर जोर देता कि ''फ्रांस राष्ट्रसंघ के संविधान के प्रति पूर्ण आस्था रखता है।'' परन्तु इटली द्वारा एबीसीनिया पर किये गये आक्रमण के समय ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उनकी वास्तविक नीति का पर्दाफाश करता है और बताता है कि इन महाशक्तियों की कथनी और करनी में बहुत अन्तर था और राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों के प्रति इनकी कोई आस्था नहीं थी। उल्लेखनीय है कि महाशक्तियों ने 1933 ई. तक रूस को राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बनने दिया। 1933 में जब वह राष्ट्रसंघ का सदस्य बना तब भी वे उससे कटी–कटी रहती थीं। रूस ने अनुभव किया कि मित्र–राष्ट्र उसे जर्मनी से भिड़ाकर स्वयं तमाशा देखना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में रूस ने केन्द्रीय शक्तियों से समझौता कर लिया। मित्र–राष्ट्रों का जब स्वार्थ पूरा न हो सका तो वे रूस से रुष्ट हो गये और फिनलैण्ड के प्रश्न को लेकर उसे राष्ट्रसंघ की सदस्यता से निष्कासित कर दिया। इस प्रकार का दण्ड जर्मनी, इटली व जापान को नहीं दिया गया था।

5- olk; dh lfU/k dh mRifÙk & राष्ट्रसंघ की उत्पत्ति वर्साय की सन्धि से हुई थी, और यह भी उसके पतन का एक कारण सिद्ध हुआ। नोर्मन बेण्टविच (Norman Bentwich) के शब्दों में, ''राष्ट्र–संघ 'एक कुख्यात मां की कुप्रतिष्ठित पुत्री' अथवा 'बदनाम मां की सम्मानित बेटी' थी।'' यही कारण था कि पराजित राष्ट्र इसे एक थोपी हुई व्यवस्थाओं का संरक्षक मानते थे तथा विजेता राष्ट्रों की स्वार्थसिद्धि का साधन मानकर इसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। धुरी–राष्ट्रों का राष्ट्रसंघ के प्रति ऐसा दृष्टिकोण विश्वशांति के मार्ग में बाधक था।

6- jk"Vl?k ,d iodkfyd f'k'k Fkk & राष्ट्रसंघ अपने प्रकार का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था और प्रथम विश्व–युद्ध से त्रस्त मानवता को मुक्ति दिलाना चाहता था। परन्तु इसकी उत्पत्ति ऐसे समय में हुई जबकि संसार में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का भली प्रकार विकास भी नहीं हो पाया था। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में अमरीका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के अथक प्रयासों के कारण ही मित्र–राष्ट्रों ने केवल उसे सन्तुष्ट करने और उसकी आड़ में अपने अन्य राष्ट्रीय स्वार्थों को सिद्ध करने हेतु राष्ट्रसंघ की योजना को स्वीकार कर लिया था। ऐसी स्थिति में राष्ट्रसंघ की सफलता की आशा नहीं की जा सकती थी।

7- lnL; jk"Vk dh ijLij fojk/kh uhfr;k & सदस्य राष्ट्रों के सहयोग से ही राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था अपने उद्देश्यों को पूरा करने में समर्थ हो सकती थी। परन्तु इसकी स्थापना के साथ ही सदस्य राष्ट्र इसे अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन बनाने में रत हो गये। फ्रांस चाहता था कि राष्ट्रसंघ वर्साय की सन्धि को अपनी पूर्ण शक्ति के साथ लागू करे और उसकी व्यवस्थाओं को स्थायी रूप देने में सहायता प्रदान करें। दूसरे शब्दों में फ्रांस इसे जर्मनी को कुचलने का साधन समझता था। ब्रिटेन अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जर्मनी के प्रति उदारता की नीति का अनुसरण कर रहा था। जर्मनी ने जब यह अनुभव किया कि राष्ट्रसंघ उसकी महत्त्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाता है और मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है तो 1926 में सदस्य बना और शीघ्र ही 1933 में सदस्यता का परित्याग कर दिया। सोवियत रूस भी राष्ट–संघ की नीतियों से अप्रसन्न था क्योंकि साम्यवादी क्रांति को विफल बनाने के लिए पश्चिमी राष्ट्रों ने सैनिक सहायता दी थी। अमरीका ने राष्ट्रसंघ की सदस्यता ही ग्रहण नहीं की। इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों की परस्पर विरोधी नीतियों के कारण राष्ट्रसंघ असफल हो गया।

8- vf/kuk;dokn dk vH;n; & प्रथम विश्वयुद्ध के बाद में यूरोप में अधिनायकवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ जिसके कारण इटली में फासिस्टवाद और जर्मनी में नाजीवाद का उदय हुआ। राष्ट्रसंघ प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से और शांतिपूर्ण ढ़ंग से राष्ट्रों के बीच पारस्परिक विवादों का समाधान करने का समर्थक था, किन्तु इन तानाशाही शक्तियों ने युद्ध, शस्त्रीकरण, शक्ति और आक्रमणात्मक पद्धति से साम्राज्य विस्तार की नीति को अपनाया। इसके कारण, राष्ट्रसंघ का उद्देश्य खतरे में पड़ गया। हिटलर और मुसोलिनी की 'रक्त और लोहे की नीति' (Policy of Blood and Iron) ने राष्ट्रसंघ को असफल बनाकर ही दम लिया।

9- fo'o vkfFkd ldV & 1930 के विश्व आर्थिक संकट ने राष्ट्रसंघ को कमजोर बना दिया। प्रत्येक राष्ट्र इस आर्थिक संकट के कुप्रभाव से मुक्त होने के लिए अन्य राष्ट्रों की चिन्ता किये बिना राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न आर्थिक उपायों का सहारा लेने लगा जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विकास को आघात पहुंचा। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस आर्थिक संकट के कई दुष्परिणाम हुए जो राष्ट्रसंघ के लिए घातक थे। जैसे–जर्मनी में नाजीवाद और इटली में फासीवाद का उदय हुआ। जापान में सैनिकवाद को प्रोत्साहन मिला व अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में वृद्धि हुई। फ्रांस व अमरीका अपनी स्वार्थपूर्ति में संलग्न हो गये। रूस की आर्थिक प्रगति में पूंजीवादी देशों के साथ उसकी शत्रुता और अधिक उग्र हो गयी। सभी परिस्थितियों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना में कमी आ गयी।

10- jk"Vl?k dk egk'kfä;k dk fof'k"V xV dk f'kdkj gkuk & वर्साय की सन्धि एवं अन्य शांति–सन्धियों के माध्मय से पराजित राष्ट्रों पर अनेक शर्तें जबरन थोपी गयी थी और इन सन्धियों को प्रभावशाली बनाये रखने की जिम्मेदारी राष्ट्रसंघ को सौंपी गयी। यही कारण था कि यद्यपि राष्ट्रसंघ के आदर्श बहुत उच्च थे किन्तु धुरी राष्ट्रों ने इसे पश्चिमी राष्ट्रों का एक षड्यन्त्र या विजेताओं का संघ ही माना। राष्ट्रसंघ को अधिकार था कि वह आवश्यकतानुसार इस सन्धियों में परिवर्तन कर सकता था। परन्तु दुर्भाग्य से राष्ट्रसंघ पर उन्हीं शक्तियों का जोर रहा जो परिवर्तन के विरुद्ध थीं। परिणामस्वरूप जब जर्मनी,

जापान और इटली के उद्देश्य राष्ट्रसंघ द्वारा पूरे नहीं हो सके तो वे इससे पृथक हो गये जिसके कारण राष्ट्रसंघ कमजोर बन गया और अन्त में नष्ट हो गया।

11- fu%'kL=hdj.k dh vlQyrk & राष्ट्रसंघ अपनी निःशस्त्रीकरण की योजनाओं में भी सफल नहीं हो सका। 1930 के बाद शस्त्रास्त्रों की निरन्तर होड़ बढ़ती चली गयी। प्रत्येक राष्ट्र इस प्रतियोगिता में आगे बढ़ने का प्रयास करने लगा, जिसके कारण राष्ट्रसंघ अपनी विश्वशांति की योजना को कार्यान्वित करने में असफल रहा।

12- mxz jk"Vªh;rk dh Hkkouk dk fodkl & प्रथम विश्व–युद्ध के बाद राष्ट्रों में उग्र राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति और भी अधिक बलवती हो गयी। सम्प्रभु राष्ट्र अपने ऊपर किसी का नियन्त्रण स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। राष्ट्रों की संकीर्ण राष्ट्रवाद की इस मनोवृत्ति ने राष्ट्रसंघ की सफलता में अवरोध उत्पन्न किया।

1-8 jk"Vªla?k dk ewY;kadu

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने से राष्ट्रसंघ विश्व शांति की स्थापना और व्यवस्था के कार्य में असफल सिद्ध हुआ। परन्तु यह असफलता वास्तव में राष्ट्रसंघ की न होकर सदस्य राष्ट्रों की असफलता ही मानी जा सकती है। सदस्य राष्ट्रों में राष्ट्रसंघ के प्रति निष्ठा की भावना नहीं थी, उन्होंने अपने अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों का पूर्णरूपेण उल्लंघन किया, ऐसी स्थिति में राष्ट्रसंघ का असफल होना स्वाभाविक ही था। यद्यपि राष्ट्रसंघ असफल हो गया, किन्तु यह संस्था अपने आप में एक महान और ऐतिहासिक महत्त्व की संस्था सिद्ध हुई। राष्ट्रसंघ राजनीतिक क्षेत्र में अवश्यक असफल रहा किन्तु आर्थिक, सामाजिक और मानवीय क्षेत्र में इसकी उपलब्धियां प्रशंसनीय थीं। यदि राष्ट्रसंघ को कोई महत्त्व नहीं होता तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण नहीं होता।

वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में राष्ट्रसंघ प्रथम व नूतन प्रयोग था। इसलिए इसमें अवश्य ही कुछ दोष रह गये थे, फिर भी यह संघ सफल हो जाता यदि सदस्य राष्ट्र सहयोग करते। यदि यह कहा जाये कि शांति सम्मेलन की सबसे बड़ी रचनात्मक उपलब्धि राष्ट्रसंघ का निर्माण करना था तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। गैथोर्न हार्डी के शब्दों में, ''राष्ट्रसंघ शांति सम्मेलन का एक महान् रचनात्मक कार्य था। इसकी आत्मा पूर्ण रूप से अन्तर्राष्ट्रीय थी, और उन सदस्यों के हाथों, जो निःस्वार्थ भाव से इसका उपयोग करने का निश्चय करते, यह शांति का एक शानदार उपकरण सिद्ध हो सकता था। राष्ट्रसंघ ने विश्व मानवता को सहयोग और सह–अस्तित्व का प्रथम सबक सिखाया। राष्ट्रसंघ ने ही कूटनीति के परम्परागत व्यवहार में अनेक परिवर्तन ला दिये। ''राष्ट्रसंघ की सफलता या असफलता उस कसौटी पर निर्भर करती है जिस पर इसे कसा जाता है। यदि यह उन आदर्शवादियों की कसौटी हो, जो इसके माध्यम से युद्ध का पूर्ण निषेध करना चाहते थे तो राष्ट्रसंघ अवश्य ही असफल रहा है। यदि यह कसौटी संघ के वास्तविक कार्यों, उसकी सीमाओं और मानव–जाति पर उसके प्रभाव पर आधारित हो तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजनीतिक क्षेत्र में असफल होने पर भी वह आर्थिक, सामाजिक और मानवीय कार्यों में पर्याप्त सफल रहा।''

1-9 vUrjk"Vªh; Je laxBu

संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बद्ध विशिष्ट अभिकरणों में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ के जीवन काल से भी पुराना है। इसका प्रादुर्भाव वर्साय सन्धि की इस उद्घोषणा पर आधारित है कि ''विश्वव्यापी एवं चिरस्थायी शान्ति तभी स्थापित हो सकती है यदि वह सामाजिक न्याय पर आधारित हो।'' यद्यपि सामाजिक न्याय को परिभाषित तो नहीं किया गया परन्तु इस उद्घोषणा से स्पष्ट है कि सरकारें उस समय की श्रमिकों की दुर्दशा से चिंतित थीं। अतः श्रमिकों की दशा सुधारने हेतु उन्होंने

वर्साय सन्धि के भाग XIII में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान को जोड़ दिया। यह लीग ऑफ नेशन्स का स्वायत हिस्सा था। इसे 1939 में गठित किया गया था। तब से यह संगठन श्रम संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढ़ंग से सुलझाने में लगा हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उतने ही सदस्य थे जितने कि राष्ट्र संघ के थे। परन्तु इसकी विशेषता यह थी कि जहां राष्ट्रसंघ की सदस्यता में कमी होती गई वहां अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सदस्यों की संख्या बढ़ती गई। सन् 1939 में इसके सदस्यों की संख्या 57 थी। वे राज्य भी इसके सदस्य थे जो राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं थे। उदाहरणतः, अमरीका और जर्मनी राष्ट्रसंघ के सदस्य न होते हुए भी श्रम संगठन के सदस्य थे और ब्राजील राष्ट्रसंघ की सदस्यता से अलग होकर भी श्रम संगठन का सदस्य बना रहा। भारत पहले एशियाई देशों में था जिसने 1939 के पहले अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में शिरकत की थी।

सन् 1944 में फिलाडेल्फिया में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक बैठक का आयोजन किया गया जिसमें संगठन के उद्देश्यों का पुनः समर्थन किया गया, नये उद्देश्यों को ग्रहण किया गया और इसके मूल संविधान में कुछ परिवर्तन स्वीकार किये गये। इसके मुख्य सिद्धातों को निम्न प्रकार से घोषित किया गया–

(क) श्रम वस्तु नहीं अर्थात् श्रमिक को मानव एवं समाजिक प्राणी समझा जाय।

(ख) दरिद्रता समृद्धि के लिए खतरनाक है।

(ग) विकास के लिए संगठन एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की आवश्यकता है।

(घ) अभाव और दरिद्रता के विरुद्ध अभियान शुरू किया जाय।

संगठन के मार्गदर्शन के लिए जिस कार्यक्रम को निर्धारित किया गया उसके मुख्य बिन्दु निम्न हैं–

(क) कार्य की दशा सुधारने के लिए कार्य के घण्टों को निश्चित किया जाये, बीमारी, रोग और चोट की अवस्थाओं में सुरक्षा की व्यवस्था की जाये।

(ख) आर्थिक स्थिरता एवं सुरक्षा के लिए पर्याप्त निर्वाह मजदूरी, पूर्ण रोजगार, समान कार्य के लिए समान वेतन, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

(ग) श्रम स्तर को बढ़ाने के लिए संघ या समुदाय के अधिकार को स्वीकार किया जाये। इस बात पर बल दिया गया कि श्रमिकों को सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार है।

(घ) कल्याणकारी कार्यों के लिए श्रमिकों को आर्थिक विषमताओं एवं शोषण में मुक्ति दिलायी जाये, पर्याप्त भोजन की व्यवस्था की जाये। बालकों, युवकों और महिलाओं की सुरक्षा की जाये, वृद्धों और रोगियों को विशेष सहायता दी जाये एवं चिकित्सा सहायता की व्यवस्था की जाये।

संक्षेप में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा के वातावरण में, जाति, वर्ग और लिंग के भेदभाव के बिना, सभी व्यक्तियों के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास को जारी रखने के अधिकार की व्यवस्था हो। यह श्रमिकों की स्थितियों को सुधारने, उनका जीवन स्तर बढ़ाने और उत्पादक रोजगार को बढ़ाने की दिशा में काम करता है।

1-10 l¡jpuk (Structure)

सन् 1946 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण के रूप में पुनः संगठित किया गया। इसके प्रमुख तीन भाग हैं जो निम्न हैं–

1- vUrjk"Vªh; Je lEesyu **(International Labour Conference)** & यह संगठन की नीति निर्धारित करने वाली सभा है जिसे प्रायः 'औद्योगिक संसद' एवं 'श्रमिकों की विश्व संसद' कहा जाता है। इसमें प्रत्येक सदस्य अपने चार प्रतिनिधि के साथ भाग लेते हैं, जिनमें दो सरकारी, एक प्रबन्धकों और एक श्रमिकों का प्रतिनिधि होता है। यह त्रिविध प्रतिनिधित्व श्रम और प्रबन्धकों के हितों में सामंजस्य उत्पन्न करने में सहायक है। प्रत्येक प्रतिनिधि को मताधिकार प्राप्त हैं। अतः यह हो सकता है कि श्रमिक प्रतिनिधि उस प्रकार मतदान न करें जिस प्रकार सरकार या प्रबन्ध के प्रतिनिधि मतदान करें।

श्रम सम्मेलन की बैठकें वार्षिक होती है। इसमें निर्णय दोतिहाई मत से किया जाता है। सम्मेलन सिफारिशें और समझौतों को स्वीकार करता है, श्रम कानूनों को प्रोत्साहन देता है, जो समय पाकर, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता (International Labour Code) का रूप ग्रहण कर लेते हैं। समझौतों और सिफारिश की कार्यान्विति के संबंध में सदस्य संगठन को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

2- vf/k'kklh fudk; **(The Governing Body)** & यह संगठन की कार्यकारिणी परिषद् है। इसके 48 सदस्य हैं जिन्हें तीन वर्ष के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इसमें भी त्रिविध प्रतिनिधि हैं। इसमें 24 सरकारी, 12 प्रबन्धकों और 12 श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं। औद्योगिक महत्त्व के कारण कुछ देश अधिशासी निकाय के स्थायी सदस्य होते हैं। ये सदस्य हैं – कनाडा, चीन, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, भारत, इटली, जापान, सोवियत संघ, ब्रिटेन और अमरीका। अधिशासी निकाय का मुख्य कार्यालय जिनेवा में है। यह वर्ष में चार बार मिलती है। यह महानिदेशक को नियुक्त करती है। अधिशासी निकाय श्रम सम्मेलन के कार्यक्रम को तैयार करती है और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय (सचिवालय) के कार्य की देख–रेख करती है।

अपने कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए इसने समितियों की स्थापना की है, जैसे सम्मेलनों और सिफारिशों को लागू करने वाली समिति, स्टाफ की समिति, यूरोप, एशिया, लातीन, अमरीका के लिए मानव शक्ति सम्बन्धी तकनीकी सहायता समिति आदि।

3- vUrjk"Vªh; Je dk;kZy; **(International Labour Office)** & यह संगठन का सचिवालय है जो संगठन को त्रिविध सेवायें प्रदान करता है।

1-11 eY;kdu **(Evaluation)**

श्रम मापदण्ड राज्यों के घरेलू क्षेत्राधिकार और श्रम सम्मेलनों (समझौतों) और सिफारिशों की कार्यान्विति के लिये संगठन के पास नैतिक अनुनय के अतिरिक्त और कोई शक्ति नहीं फिर भी श्रमिकों की स्थिति सुधारने में इसने सराहनीय कार्य किया है। उदाहरणतः संगठन में उन्नत मापदण्डों का निर्माण किया है तथा कोयले की खानों एवं कारखानों में कार्य करने वालों के संबंध में संहिताओं का निर्माण किया है, दिन में 8 घण्टे कार्य, वेतन, सुरक्षा, सवेतन अवकाश, बालकों और स्त्रियों को कठोर श्रम वाले (जैसे–खानों में कार्य से निषेध, श्रमिकों और श्रम संगठन बनाने के अधिकार संबंधी अनेक कार्य किये हैं।) संगठन ने श्रमिकों के शोषण, महिलाओं एवं दासों के व्यापार के लिए व्यापक प्रचार किया है। यह विश्व की ऐसी श्रम संसद है जिसने सर्वेक्षण करके श्रम के प्रति सरकारों के दृष्टिकोण को बदला है तथा श्रमिकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए जन–जागृति पैदा की है। इसके कार्यों के लिए 1969 में नोबेल पुरस्कार मिला था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने सरकारों की अनेक अन्य क्षेत्रों में सहायता दे रहा है। उदाहरणतः इसने सामाजिक बीमा व्यवस्था, श्रमिक विधान, रोजगार सेवा की कार्यान्विति, युवकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, श्रमिक आंकड़ों का प्रकाशन, सहकारी सेवाओं एवं मानव शक्ति के प्रबन्ध में सरकारों को परामर्श दिया है। इसने अनेक क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये हैं। इसने एशिया के लिए बंगलौर (भारत) में,

दक्षिण अमरीका के लिए लीमा (पेरू) में, मध्य अमरीका के लिए मेक्सिको नगर में और पूर्व मध्य के लिए इस्तम्बूल में क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये हैं।

श्रम संगठन के पास वार्षिक प्रतिवेदन एक ऐसा अस्त्र हैं जिसके माध्यम से सह सम्मेलनों (समझौतों) और सिफारिशों को कार्यान्वित कराती है। जो राज्य समझौतों और सिफारिशों का अनुसमर्थन कर देते हैं उन्हें उनकी कार्यान्विति या कार्यास्थिति में आने वाली कठिनाईयों के सम्बन्ध में श्रम संगठन को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी पड़ती है। यदि सरकार वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में असफल रहे तो प्रबन्धकों और श्रमिकों के समुदाय भी रिपोर्ट भेज सकते हैं। अधिशासी निकाय संबंधी सरकार से विवरण की मांग कर सकती है। यदि विवरण असन्तोषजनक हो तो अधिशासी निकाय को यह अधिकार है कि वह शिकायत (श्रमिकों की रिपोर्ट) और विवरण दोनों को प्रकाशित कर दे। यह कलंक की धमकी ही राज्यों को समझोतों और सिफारिशों को, विशेषकर उन्हें जिनका उन्होंने अनुसमर्थन कर दिया होता है, कार्यान्वित करने की प्रेरणा देती है। यदि कोई राज्य समझौतों और सिफारिशों की निरन्तर अवहेलना करता है तो उसे काली सूची में लिख दिया जाता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा उसके अन्य अभिकरणों की भांति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन भी शीत युद्ध की पीड़ा से अछूता नहीं रहा। इस पर सोवियत संघ की यह आपत्ति रही है कि यह श्रमिकों के हितों का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करता। दूसरे, इसने जरूरतमंदों की तुलना में गैर–जरूरतमन्दों या कम जरूरतमन्दों की अधिक सेवा की है।

1-12 vUrjkZ"Vªh; U;k;ky;

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय राष्ट्र संघ की प्रमुख कानूनी संस्था है। कानून से संबंध रखने वाले प्रश्नों पर ही यह विचार करता है। राजनीतिक झगड़ों से इसका कोई संबंध नहीं है। ऐसे देश जो इस न्यायालय के सदस्य हों, यदि किसी मामले को न्यायालय के समक्ष उपस्थित करना चाहें, तो कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् कानूनी विवाद उपस्थित होने पर उसे न्यायालय के सम्मुख पेश कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य संस्थाएं भी किसी कानूनी प्रश्न पर न्यायालय से परामर्श ले सकती हैं। व्यक्तिगत झगड़े इस अदालत में पेश नहीं किये जा सकते। चीन, सोवियत संघ, ब्रिटेन और अमरीका ने डम्बर्टन ऑक्स सम्मेलन के समय संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन के सम्बंध में जो प्रस्ताव किये थे, उनमें यह कहा गया था कि एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय भी होना चाहिए।

सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन का आयोजन करने वाले राष्ट्रों के आमन्त्रण पर विधिवेत्ताओं की समिति, जिसमें 14 देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, की बैठक 9 अप्रैल से 20 अप्रैल, 1945 तक वाशिंगटन में हुई। इस बैठक में वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का प्रारूप तैयार हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में 92 से 96 तक के अनुच्छेदों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का विधान है। अनुच्छेद 92 का मन्तव्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्याय संबंधी प्रधान उपकरण होगा। उसका काम उस विधान के अनुसार होगा की परिशिष्ट रूप में चार्टर के साथ संलग्न है। अनुच्छेद 94 के अनुसार प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह न्यायालय के निर्णयों का ठीक तरह से पालन करें। यदि एक पक्ष पालन न करे तो दूसरे पक्ष को अधिकार है कि सुरक्षा परिषद का ध्यान इस ओर उपयुक्त कार्यवाही के लिए आकृष्ट करें। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हेग में 3 अप्रैल, 1946 को हुई थी। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का संविधान 70 अनुच्छेदों में है। इसमें न्यायालय के अधिकार, अधिकार–क्षेत्र, कार्य संचालन विषय, आदि सभी आवश्यक बातें दी हुई हैं।

स्थायी न्यायालय का कार्यालय हेग में दूसरे युद्ध के आरम्भ तक था। युद्धकाल में वह स्विट्जरलैण्ड चला गया था क्योंकि सारे हॉलैण्ड पर जर्मनी का अधिकार हो गया था। युद्ध समाप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत जिस न्यायालय की स्थापना हुई, उसका मुख्य स्थान हेग ही रखा गया। इसका

कारण भी था। कार्यालय के भव्य भवन का निर्माण अमरीकी दानवीर स्वर्गीय कार्नेगी ने अपने धन से कराया था। अतः आज अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का कार्यालय उसी भवन में है। पहले न्यायालय ने जो निर्णय किये थे या आदेश दिये थे उन सबको नये न्यायालय ने अंगीकार कर लिया।

1-13 U;k;ky; dk xBu

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 92 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के लिए न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का गठन हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय के समान ही न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों की संख्या 15 रखी गयी थी। ये न्यायाधीश अपने में से ही एक सभापति तथा उपसभापति को 3 वर्ष के लिए चुनते हैं। न्यायाधीशों का चुनाव सुरक्षा परिषद् तथा महासभा द्वारा 9 वर्ष के लिए किया जाता है। न्यायाधीशों का चुनाव जाति भेद, रंग भेद तथा धर्म भेद के आधार पर न होकर योग्यता के आधार पर होता है। ये व्यक्ति अपने राष्ट्र में विधिवेत्ता के रूप में ख्याति पा चुके होते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विशेषज्ञ माने जाते हैं। संविधान में कहा गया है कि न्यायाधीशों का नैतिक चरित्र उच्च होना चाहिए और उनमें वे योग्यताएं होनी चाहिए जो उनके देश की न्याय संबंधी उच्च संस्थाओं के उच्च न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए आवश्यक हों। इतना होने पर भी यह ध्यान रखा जाता है कि एक से अधिक न्यायाधीश एक ही राष्ट्र के न हों। इन न्यायाधीशों को कोई राजनीतिक कार्य या अन्य कोई व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं होती। इनका पुनर्निर्वाचन भी हो सकता है। न्यायाध ीशों का चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखा जाता है कि न्यायालय में संसार की सभी न्याय व्यवस्थाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाये।

mUefä;k **(Immunities)** & न्यायाधीशों को अनेक विशेषाधिकार सौंपे जाते हैं। उनको राजनयिक उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं। न्यायालय के सम्मुख वादियों के प्रतिनिधि, परामर्शदाता और वकीलों को भी स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की छूट दी जाती है।

x.kifr **(Quorum)** & न्यायालय के विधान के अनुसार इसमें 15 न्यायाधीशों के अतिरिक्त अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त करने की भी व्यवस्था है। न्यायालय की गणपूर्ति 9 रखी गयी है।

izfØ;k **(Procedure)** & न्यायालय के सभी निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं। बहुमत न होने पर सभापति का निर्णायक मत मान्य होता है।

न्यायालय की भाषा फ्रेंच तथा अंग्रेजी है। अन्य भाषाओं को भी अधिकृत रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। न्यायालय अपनी कार्यविधि और नियमावली स्वयं तैयार करता है। न्यायालय के सामने वे सब विवाद जा सकते हैं जिनको दोनों पक्ष उसके सामने रखना चाहें या जिनका संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर अथवा किसी सन्धि के अनुसार न्यायालय में लाया जाना अनिवार्य हो।

न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मुकदमों में वादी और प्रतिवादी केवल राष्ट्र ही हो सकते हैं, व्यक्ति नहीं। ऐसे राष्ट्र जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं हैं, अपने विवाद का निर्णय इस न्यायालय द्वारा करा सकते हैं, किन्तु सुरक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित शर्तों को मानना पड़ेगा। सुरक्षा परिषद् भी ऐसी शर्तें नहीं रख सकती जिसके कारण गैर–सदस्य राष्ट्रों में असमानता (छोटे–बड़े का भेद) दृष्टिगत हो। न्यायालय के विधान के मनतवय के अनुसार मुकदमे के खर्च का कौन–सा हिस्सा गैर–सदस्य राष्ट्र को देना पड़ेगा, इसका निर्णय न्यायालय ही करेगा।

न्यायालय का निर्णय अन्तिम समझा जाता है। निर्णय की अपील नहीं हो सकती, किन्तु यदि कोई पक्ष समझे कि कोई आवश्यक बात न्यायालय के सम्मुख किसी कारण से उपस्थित नहीं हो सकी अथवा प्रत्यक्ष रूप से कहीं भूल हुई है, तब उस अवस्था में पुनः विचार के लिए प्रार्थना–पत्र दिया जा सकता है। न्यायालय को अधिकार है कि अपना निर्णय देने के पूर्व किसी व्यक्ति विशेषज्ञ अथवा कमेटी द्वारा मुकदमे

से संबंधित किसी भी विषय के संबंध में जांच करा ले। मुकदमे की सुनवाई आमतौर से सार्वजनिक रूप से होती है, किन्तु न्यायालय स्वतः अथवा वादी–प्रतिवादी की प्रार्थना पर बनद कमरे में मुकदमें की सुनवाई कर सकता है।

सब प्रश्नों का निपटारा उपस्थित न्यायाधीशों के बहुमत से होता है। यदि किसी प्रश्न पर न्यायाधीशों का मत बराबर हो तो सभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में जो सभापति का आसन ग्रहण कर रहे हों, अपना निर्णाक मत (Casting Vote) दे सकते हैं। यदि निर्णय सर्वसम्मति से नहीं हो तो उस अवस्था में अल्पमत वाले न्यायाधीशों को भी अपना पृथक् लिखित मत व्यक्त करने का अधिकार है।

मुकदमे का निर्णय खुली अदालत में पढ़ा जाता है और उस पर सभापति एवं रजिस्ट्रार के हसताक्षर होते हैं। साधारणतः यदि राष्ट्रीय न्यायालय की तरह फैसले में जीतने वाले राज्य को मुकदमें का व्यय पाने का उल्लेख न हो तो समझा जाता है कि न्यायालय का विचार है कि प्रत्येक पक्ष अपना खर्च स्वयं उठाये। मुकदमे की सुनवाई के लिए कम–से–कम नौ न्यायाधीशों की उपस्थिति अनिवार्य है। न्यायालय का खर्च सदस्य देश देते हैं। खर्च का कितना हिस्सा किसको देना पड़ेगा, इसका निर्णय महासभा करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के वार्षिक बजट में न्यायालय का बजट भी सम्मिलित रहता है और महासभा न्यायाधीशों तथा रजिस्ट्रार का वेतन निर्धारित करती है।

यद्यपि न्यायालय का स्थायी कार्यालय हेग में है तथापि मुकदमे की सुनवाई दूसरे देश में भी हो सकती है।

1-14 U;k;ky; dk {k=kf/kdkj **(Jurisdiction of the Court)**

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. एच्छिक क्षेत्राधिकार (Voluntary Jurisdiction), 2. अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Compulsory Jurisdiction), 3. परामर्शात्मक क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)

1- ,fPNd {k=kf/kdkj & अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि की धारा 36 के अनुसार न्यायालय उन सभी मामलों पर विचार कर सकता है जिनको संबंधित राज्य न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करें।

2- vfuok;l {k=kf/kdkj & राज्य स्वयं घोषणा करके इन क्षेत्रों में न्यायालय के आवश्यक क्षेत्राधिकार को स्वीकार कर लेता है। ये हैं–सन्धि की व्याख्या, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र से सम्बन्धित सभी मामले, किसी ऐसे तथ्य का अस्तित्व जिसके सिद्ध होने पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य का उल्लंघन समझा जाये तथा किसी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति का रूप और परिणाम। प्रो. ओपेनहीम ने न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को 'वैकल्पिक आवश्यक आवश्यक क्षेत्राधिकार' कहा है।

3- ijke'kkRed {k=kf/kdkj & अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा परामर्श देने कार्य भी सम्पन्न किया जाता है। महासभा अथवा सुरक्षा परिषद् किसी भी कानून प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का परामर्श मांग सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के दूसरे अंग तथा विशेष अभिकरण भी उनके अधिकार–क्षेत्र में उठने वाले कानूनी प्रश्नों पर न्यायालय का परामर्श प्राप्त कर सकते हैं। परामर्श के लिए न्यायालय के सम्मुख लिखित रूप में प्रार्थना की जाती है। इस प्रार्थना–पत्र में संबंधित प्रश्न का विवरण तथा वे सभी दस्तावेज होते हैं जो प्रश्न पर प्रकाश डाल सकते हैं। न्यायालय का पराशर्म केवल परामर्श होता है, जिसे मानने के लिए किसी भी संस्था को बाध्य नहीं किया जा सकता।

1-15 U;kf;d fu.k; dh fØ;kfUofr **(Execution of Judicial Decision)**

संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए संघ के चार्टर की धारा 94 में व्यवस्था की गयी है। इसके अनुसार संघ का प्रत्येक सदस्य यह प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी मामले में विवादी होने पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के फैसले को मानेगा। यदि एक पक्ष न्यायालय के निर्णय को

नहीं मानता तो दूसरा पक्ष सुरक्षा परिषद् का आश्रय ले सकता है। न्यायालय के निर्णय को क्रियान्वित कराने के लिए आवश्यक कार्यवाही तय करते समय सुरक्षा परिषद् के 9 सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है। इसमें से 5 स्थायी सदस्य भी होने चाहिए। सुरक्षा परिषद् जैसा आवश्यक समझे वही कार्यवाही करेगी। व्यवहार में यह देखा गया है कि न्यायालय के निर्णयों का राज्य अपनी पोल खुलने से बचने के लिए विवाद में सहमतिपूर्ण निपटारे के लिए तैयार हो जाते हैं। न्यायालय के मत का नैतिक बल भी बहुत अधिक होता है और यदि कोई राज्य निर्णय की अवहेलना करता है तो उसे भी विश्व जनमत के सामने झुकना पड़ा है।''

U;k;ky; }kjk dkuu dk i;kx & चार्टर के नियमों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय वादों का निर्णय करने में अन्तर्राष्ट्रीय विधि का प्रयोग करता है। जो बाद निर्णय के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पेश किये जाते हैं उन वादों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करते हैं :

1. सामान्य अथवा विशिष्ट पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियां और समझौते जिनको वादग्रस्त पक्ष स्वीकार करते हों।
2. वे अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराएं और रीति–रिवाज, जिन्हें सामान्यतया प्रयोग में माना जाता है।
3. सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त कानूनों के सामान्य सिद्धान्त।
4. भिन्न–भिन्न राष्ट्रों के विधिवेत्ताओं और न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णये।

1-16 vUrjkZ"Vªh; U;k;ky; dk eY;kadu (Evaluation of the International Court of Justice)

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों के पीछे कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं है फिर भी जब से इसने जन्म लिया है, इसके द्वारा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को सुलझाया जा चुका है। एम.सी. छागला के अनुसार, ''यह न्यायालय संयुक्त राष्ट्र संध का एक महत्त्वपूर्ण न्यायालय है। यद्यपि उसके पास वे शक्तियां एवं अधिकार नहीं हैं जो इसे वास्तव में प्राप्त होने चाहिए थे, फिर भी यह महान् उद्देश्यों की एक साकार प्रतिमा है।'' न्यायालय के कार्य संचालन में विभिन्न देशों तथा गुटों ने बाधा डाली है। राज्यों की अवहेलना तथा असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण के कारण वह अधिक उपयोगी तथा शक्तिशाली संस्था नहीं बन सका है। अतिवादी प्रभुसत्ता का विचार न्यायालय के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इसका परित्याग करना होगा। इसी प्रकार संविधि की धारा 34ए, जिसमें यह कहा गया है कि न्यायालय के सम्मुख राज्य ही वादी और प्रतिवादी हो सकते हैं, को भी बदलता पड़ेगा तथा व्यक्तियों को न्यायालय में पहुंचने का अधिकार देना होगा।

गुडस्पीड ने लिखा है कि ''अपनी क्षमता के बावजूद न्यायालय एक ऐसे विश्व समाज में कार्य करता है जो अभी भी इसे महत्त्वपूर्ण मामले सुपर्द करने को तैयार नहीं है अथवा वह भी कार्य करने देने के लिए तैयार नहीं जो चार्टर में इसके लिए निर्देशित है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना (1946) से वर्ष 2007 के अन्त तक राज्यों द्वारा इसके समक्ष लाये गये 93 मामलों में फैसला सुनाया गया है और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने 25 सलाहकारी परामर्श देने का अनुरोध किया। पिछले दशक में न्यायालय के समक्ष पेश किये गये न्यायिक मुकदमों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई जबकि वर्ष 1970 के दशक में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष समय में इसके डॉकेट में एक या दो मामले ही होते थे लेकिन वर्ष 1990–97 के बीच यह संख्या 9 और 13 के बीच रही। उसके बाद वे इसके समक्ष आये बाद या केस 20 तक की संख्या पर पहुंच गये। वर्ष 2006 के अनत में 14 लम्बित वाद थे, जिनमें एक तो सक्रिय रूप से विचाराधीन था।

यह आश्चर्य की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी 2007 तक सिर्फ 25 बार कानूनी सलाह इस न्यायालय से ली है। सुरक्षा परिषद् तथा अन्य संस्थाओं ने तो इसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं

किया है। सुरक्षा परिषद् तथा अन्य संस्थाओं ने प्रायः कानूनी मामलों पर न्यायालय की राय न लेकर, कानूनी बातों के संबंध में भी राजनीतिक भावना से काम लिया है। कश्मीर प्रश्न अथवा स्वेज नहर प्रश्न आदि मूलतः कानूनी प्रश्न थे, किन्तु इनके संबंध में निर्णय राजनीतिक दृष्टि से किया गया। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि अपनी दुर्बताओं और परिसीमाओं के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अपना काम बड़ी कुशलता से किया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास में योगदान दिया है।

1.17 संयुक्त राष्ट्र का जन्म

संयुक्त राष्ट्र लगभग 185 संप्रभुता–संपन्न देशों का संगठन है। इसकी स्थापना 1945 में, दुर्भाग्यग्रसित राष्ट्रसंघ का स्थान लेने के लिए की गई। द्वितीय विश्व युद्ध के समय धुरी (Axis) राष्ट्रों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, मित्र राष्ट्रों ने राष्ट्र संघ को पुनर्जीवित करने की बजाय एक नए अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निर्णय लिया। मित्र राष्ट्र (Allies) युद्ध मे अधिनायकवाद को समाप्त करके विश्व को लोकतंत्र के लिए सुरक्षित करना चाहते थे। मित्र राष्ट्रों द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करते हुए 12 जून, 1941 को लंदन घोषणा (London Declaration) में अन्य स्वतंत्र देशों के साथ मिलकर संघर्ष करने और ऐसे विश्व की स्थापना करने का संकल्प किया था, जिसको आक्रमण के भय से मुक्ति मिल जाएगी और जहां सबको आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध होगी। उससे पूर्व, अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने कांग्रेस को भेजे गए एक संदेश में (जनवरी, 1941) चार प्रमुख स्वतंत्रताओं का उल्लेख करते हुए उन्हें सार्वभौमिक महत्त्व की बताया था। ये चार स्वतंत्रताएं थी : (क) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (ख) उपासना करने (धर्म) की स्वतंत्रता (ग) निर्धनता से स्वतंत्रता (Freedom from want) तथा (घ) भय से स्वतंत्रता। रुजवेल्ट की चार स्वतंत्रताएं तथा लंदन घोषणा, 'युद्ध और निर्धनता' से मुक्ति पाने की मानवता की इच्छा की अभिव्यक्ति थी। राष्ट्रपति रुजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने 14 अगस्त, 1941 को अपनी प्रसिद्ध अटलांटिक घोषणा (Atlantic Charter) जारी की। उसमें यह आशा व्यक्त की गई कि –''एक ऐसी शांति की स्थापना हो सकेगी, जिसके द्वारा सभी राष्ट्रों को अपनी सीमाओं के भीतर सुरक्षा से जीवित रहने के साधन उपलब्ध होंगे, सभी राष्ट्र भय–मुक्त तथा निर्धनता मुक्त होंगे और सामान्य सुरक्षा की एक व्यापक तथा स्थायी व्यवस्था'' की स्थापना की जा सकेगी। अटलांटिक घोषणा (चार्टर) तथा लंदन घोषणा में उल्लेखित सिद्धांतों का 1 जनवरी, 1942 को उन 26 देशों ने अनुमोदन किया, जो उस समय युद्ध में मित्र राष्ट्र थे। इस सहमति को ''सयुक्त राष्ट्र घोषणा'' (United Nations Declaration) के नाम से जाना गया। वाशिंगटन में हस्ताक्षर की गई इस घोषणा का मुख्य संबंध युद्ध से था, शान्ति से नहीं। इसका उद्देश्य धुरी राष्ट्रों (Axis) के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों के सहयोग पर बल देना था और एक–दूसरे को यह आश्वासन देना था कि कोई भी मित्र राष्ट्र अकेले किसी भी शत्रु देश के साथ शांति स्थापित नहीं करेगा।

एक नए अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का औपचारिक निर्णय 30 अक्टूबर, 1943 को ''सामान्य सुरक्षा के लिए चार राष्ट्रों की मॉस्को घोषणा'' में लिया गया। ये चार मित्र राष्ट्र थेः ब्रिटेन, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ। उन्होंने घोषणा की ''वे एक ऐसे सामान्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन की शीघ्र स्थापना की आवश्यकता अनुभव करते हैं, जो सभी शांति प्रिय राज्यों की संप्रभु समानता के सिद्धान्त पर आधारित होगा, वह छोटे या बड़े सभी राज्यों को सदस्यता के अवसर प्रदान करेगा, ताकि अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाई रखी जा सके।''

मित्र राष्ट्रों के मध्य, शत्रु के विरुद्ध एकता के प्रतीक के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संगठन को 'संयुक्त राष्ट्र' नाम दिया गया। इस शब्द का चयन राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने किया था और 1 जननरी, 1942 की (ऊपर वर्णित) घोषणा में, किसी अन्य संदर्भ में इसका उपयोग किया गया था।

1.18 संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र को सुदृढ़ता के नाम पर भागीदारी (Sharing in the Name of Solidarity) कहा गया है। भूतपूर्व महासचिव डैग हैमरशोल्ड ने इस कथन का प्रयोग करते हुए इसे मानवता की महती आवश्यकता कहा था। इसमें कोई विकल्प है ही नहीं। मानवता की आशा और उसकी सहभागिता (Involvement) चार्टर की प्रस्तावना में ही प्रतिबिंबित होती है। प्रस्तावना के अनुसार ''हम संयुक्त राष्ट्र के लोग, जो कि युद्ध की व्यापक व्याधि से, जिसने हमारे जीवनकाल में ही दो बार मानवता को अवर्णनीय दुःख में धकेल दिया था, भविष्य की पीढ़ियों को मुक्त कराने के लिए कृतसंकल्प है, संयुक्त राष्ट्र नामक एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं।'' इस प्रकार राष्ट्रसंघ के विपरीत संसार का जनमानस संयुक्त राष्ट्र की शक्ति का स्रोत है। संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों का चार्टर के अनुच्छेद एक में उल्लेख किया गया है। संक्षेप में ये उद्देश्य हैं : (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना और उस उद्देश्य के लिए प्रभावी सामूहिक सुरक्षा उपाय करना, ताकि शांति के लिए खतरों से बचा जा सके और उन्हें दूर किया जा सके, (ख) सभी राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना, (ग) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना, तथा (घ) इन सामान्य उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए एक समीकरण केन्द्र का कार्य करना। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने की एक आवश्यकात है, यह मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए आवश्यकता है और सदस्य–देशों के सामाजिक –आर्थिक विकास में सहायक है।

चार्टर के अनुच्छेद 2 में संयुक्त राष्ट्र के मार्गदर्शन के लिए सात सिद्धांतों का उल्लेख है। वे हैं : (1) संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों की संप्रभु समानता, (2) सदस्य–राष्ट्रों द्वारा ग्रहण किए गए चार्टर के सभी उत्तरदायित्वों का स्वेच्छा से पालन करना, (3) अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान ताकि अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा और न्याय खतरे में न पड़ें, (4) सभी सदस्य ऐसा कुछ नहीं करेंगे, जिससे अन्य देशों की प्रादेशिक अखंडता के लिए वे बल प्रयोग या उसकी धमकी के द्वारा किसी प्रकार का संकट उत्पन्न करें, (5) सभी सदस्य संयुक्त राष्ट्रों को हर संभव सहायता उपलब्ध कराएंगे तथा ऐसे देश को किसी प्रकार की सहायता नहीं देंगे, जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कोई कार्यवाही कर रहा होगा, (6) संयुक्त राष्ट्र इस बात का प्रयास करेगा कि जो देश संगठन के सदस्य नहीं हैं, वे भी चार्टर के सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करें, तथा (7) जो मामले मूलरूप से किसी भी देश के आंतरिक क्षेत्राधिकार (Domestic Jurisdiction) में आते हैं, उनमें संयुक्त राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं करेगा। इन सिद्धान्तों से संयुक्त राष्ट्र के वे उद्देश्य, जिनके लिए इसकी स्थापना हुई थी, स्पष्ट हो जाते हैं। अतः राज्यों की संप्रभुता का सम्मान किया जाएगा,, विवादों का शांतिपूर्ण समाधान तलाश किया जाएगा, राज्यों की प्रादेशिक अखंडता को सुरक्षित रखा जाएगा, बल प्रयोग से बचा जाएगा तथा आंतरिक मामलों में संयुक्त राष्ट्र का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के सभी प्रावधान इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित हैं। आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, राष्ट्रों की प्रभुसत्ता सुनिश्चित करता है तथा संयुक्त राष्ट्र पर स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा का प्रतीक है।

1.19 संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता ¼Membership of the United Nations½

संसार के सभी संप्रभुता –संपन्न और शांतिप्रिय देश संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बन सकते हैं। चार्टर के अनुच्छेद 3 के अनुसार, वे सभी देश जिन्होंने सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लिया था और जिन्होंने 1 जनवरी, 1942 के संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए थे, वे सभी इस संगठन के प्रारंभिक सदस्य घोषित किए गए। इन प्रारंभिक सदस्यों की संख्या 51 थी। उसके पश्चात्, अनुच्छेद 4 के अनुसार, ''वे सभी शांतिप्रिय राज्य, जो वर्तमान चार्टर के उत्तरदायित्व निभा सकें'' संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बन

सकते हैं। महासभा, नए सदस्यों को सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर संगठन में प्रवेश देती है। अतः बहुत–से देश, जो 1945 में सदस्य नहीं बन सके थे, वे बाद में इसी प्रक्रिया से संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बनाए गए। इसी प्रकार वे बहुत –से देश, जो उस समय साम्राज्यवादी शासन के अधीन थे, उपनिवेशवाद की समाप्ति पर स्वतंत्र राज्यों के रूप में संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त करते गए। जब दिसंबर, 1991 में सोवियत संघ का विघटन हुआ, तो उसके सभी 15 गणराज्य स्वतंत्र संप्रभु देशों के रूप में संयुक्त राष्ट्र में शामिल कर लिए गए। बहुत पहले जब पाकिस्तान का जन्म हुआ (1947) या जब बांग्लादेश का जन्म हुआ (1971), तो उनको भी संयक्त राष्ट्र की सदस्यता (बांग्लादेश को कुछ विलंब के पश्चात्) मिल गई। सन् 1992 में चैकोस्लाविका का दो देशो (चैक गणतंत्र और स्लोवाकिया) में विभाजन हुआ तो दोनों को ही संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त हो गई। उपनिवेशवाद की समाप्ति, सोवियत संघ के विघटन इत्यादि के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र की सदस्य संख्या 185 (स्वतंत्र देश) तक पहुंच गई। रूस को 1992 में पूर्व सोवियत संघ के उत्तराधिकारी के रूप में सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य घोषित कर दिया गया। शीत–युद्ध की चरम सीमा पर जापान, पश्चिमी तथा पूर्वी जर्मनी की सदस्यता में विलंब हुआ था, क्योंकि दोनों महाशक्तियां खुलकर सुरक्षा परिषद् में अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर रही थी।

1.20 संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंग

संयुक्त राष्ट्र के छह प्रमुख अंग हैं। इनका प्रावधान चार्टर में ही किया गया है। ये अंग हैं : महासभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक और सामाजिक परिषद्, न्यास परिषद्, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय। इन प्रमुख अंगों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र की अनेक विशिष्ट एजेंसियां भी हैं, जो कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक, विमानन, संचार व्यवस्था, शरणार्थी समस्या तथा बाल कल्याण जैसे अनेक कार्य करती हैं। यहां हम संक्षेप में प्रमुख अंगों का विवेचन करेंगे–

1- egk lHkk **(The General Assembly)** % महासभा वह अंग है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य–देशों का प्रतिनिधित्व होता है। इसलिए इसे विश्व की संसद भी कह दिया जाता है। परन्तु इसके लिए संसद शब्द का प्रयोग उचित नहीं है, क्योंकि इसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते है। इसमें सभी सदस्यों की सरकारों के द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि भाग लेते हैं। महासभा संसद होने का दावा नहीं कर सकती। महासभा चार्टर के क्षेत्राधिकार में किसी भी विषय पर विचार–विमर्श कर सकती है। यह अपने निर्णयों को सदस्य राष्ट्रों, सुरक्षा परिषद् अथवा महासचिव के पास भेज सकती है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे महासभा के निर्णयों को लागू करेंगे। सामान्य अधिवेशन के अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् के कहने पर या संयुक्त राष्ट्र के आधे सदस्यों की प्रार्थना पर महासचिव महासभा का एक या अधिक विशेष अधिवेशन भी बुला सकते हैं। महासभा अपने प्रक्रिया संबंधी नियम स्वयं निर्धारित करती है। प्रतिवर्ष महासभा अपना एक अध्यक्ष निर्वाचित करती है। जब भी महासभा का अधिवेशन होता है, उसमें भाग लेने के लिए प्रत्येक सदस्य देश एक से लेकर पांच प्रतिनिधियों का शिष्टमंडल भेज सकता है, परन्तु प्रत्येक छोटे–बड़े देश को महासभा में एक ही मत देने का अधिकार होता है। महासभा सभी गैर–प्रक्रिया संबंधी (Substantive or Non-procedural) विषयों पर दो तिहाई बहुमत से निर्णय कर सकती है। प्रक्रिया संबंधी निर्णय साधारण बहुमत से तय किए जाते हैं।

महासभा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी किसी भी विषय पर विचार कर सकती है। इसके अन्य कार्यों में ये कार्य शामिल हैं– ifFke, महासभा सुरक्षा परिषद् के दस अस्थायी सदस्य–देशों का निर्वाचन करती है। वह आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् का भी निर्वाचन करती है। वह सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर नए सदस्यों का प्रवेश देती है तथा महासचिव की नियुक्ति करती है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चुनाव महासभा और सुरक्षा परिषद् अलग–अलग मतदान करके

करते हैं। f}rh;, महासभा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी किसी विषय पर विचार करके सदस्यों के पास अपनी सिफारिशें भेज सकती है। वह विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए उपाय सुझा सकती है, परन्तु वह किसी ऐसे प्रश्न पर विचार नहीं कर सकती है, जो कि सुरक्षा परिषद् के विचाराधीन हो। r`rh;, महासभा सुरक्षा परिषद् सहित, सभी अंगों से वार्षिक तथा विशेष रिपोर्ट प्राप्त करके उन पर विचार करती है। vfre, महासभा बजट पर विचार करके उसको पास करती है। सदस्य देश कितनी धनराशि संयुक्त राष्ट्र को देंगे, इसका निर्णय स्वयं महासभा करती है।

अनुच्छेद 10 के अधीन महासभा किसी भी प्रश्न पर सिफारिशें कर सकती है। इसके विपरीत सुरक्षा परिषद् बाध्यकारी निर्णय ले सकती है, अतः महासभा को ही वाद–विवाद का मंच बनाया गया। परंतु जब 1950 में सोवियत संघ द्वारा निषेधाधिकार के बार–बार प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् कोई भी निर्णय लेने में असमर्थ हो गई, तब इस प्रकार की परिस्थितियों में समस्याओं के निदान के लिए महासभा ने, अमेरिका की पहल पर ''शान्ति के लिए एकता प्रस्ताव'' पास किया। इसके अधीन महासभा भी बाध्यकारी निर्णय ले सकती है, परन्तु ऐसा तभी होता है जबकि सुरक्षा परिषद् निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण पंगु हो गई हो।

2- lqj{kk ifj"kn **(The Security Council)** & सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र की निरंतर कार्यरत संस्था है। ''अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा'' बनाए रखना इसका प्राथमिक उत्तरदायित्व है। सुरक्षा परिषद् अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का प्रयास करती है। वह युद्ध या शांति भंग हो जाने की स्थिति में आक्रामक देश की पहचान करके, सामूहिक सुरक्षा के अंतर्गत उसके विरुद्ध प्रतिबंध लगाने का निर्णय करती है। परिषद् किसी भी युद्ध को बंद करवान के लिए आवश्यक निर्णय ले सकती है। सुरक्षा परिषद् ही निशस्त्रीकरण तथा शस्त्रनियंत्रण की व्यवस्था करने के लिउ उत्तरदायी है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर ही संयुक्त राष्ट्र में महासभा द्वारा किसी देश को प्रवेश दिया जाता है। इसी की सिफारिश पर महासभा महासचिव की नियुक्ति करती है। सुरक्षा परिषद् तथा महासभा अलग–अलग मतदान करके अंतर्राष्ट्रीय न्यायलय के न्यायधीशों का चुनाव करती है।

सुरक्षा परिषद् में 15 देश सदस्य होते हैं। आरंभ से ही पांच मान्यता प्राप्त बड़ी शक्तियों को परिषद् की स्थायी सदस्यता प्राप्त है। ये देश हैं : ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, रूस तथा चीन। सन् 1971 में राष्ट्रवादी चीन को निष्कासित करके चीन की सीट पर साम्यवादी को अधिकार दे दिया गया। सोवियत संघ के दिसम्बर, 1991 में विघटन के पश्चात् 1992 में रूस को उत्तराधिकारी राज्य मानकर, सोवियत संघ का स्थायी स्थान उसे दे दिया गया। पांच स्थायी सदस्यों के अतिरिक्त, महासभा दो–दो वर्ष के लिए दस अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन भी करती है। कोई भी अस्थायी सदस्य लगातार दो बार सदस्य के रूप में निर्वाचित नहीं हो सकता है। चार्टर के अनुच्छेद 27 के अनुसार सुरक्षा परिषद् प्रक्रिया संबंधी विषयों पर किन्हीं भी 9 सदस्यों के सकारात्मक मत से निर्णय ले सकती है। अन्य ठोस या गैर–प्रक्रिया संबंधी सुरक्षा परिषद् के निर्णय तभी मान्य होते हैं जब 15 में से 9 सदस्यों के सकारात्मक मत से निर्णय किए जाए। परन्तु यह परमावश्यक है कि इन 9 मतों में पांच स्थायी सदसयों के सकारात्मक मत शामिल हों। अर्थात् यदि एक भी स्थायी सदस्य पक्ष में मत न दे तो चाहे शेष 14 का बहुमत क्यों न हो, कोई भी निर्णय नहीं हो सकता है। इस अधिकार को स्थायी सदस्यों का निषेधाधिकार (Veto) कहते हैं। शीत युद्ध काल में निषेधाधिकार का इतना अधिक प्रयोग किया गया कि अनेक बार सुरक्षा परिषद् कोई भी निर्णय लेने में असमर्थ रही।

3- vkfFkd vkj lkekftd ifj"kn **(The Economic and social Council)** : संयुक्त राष्ट्र के संस्थापकों को भली–भांति ज्ञात था कि शांति तथा आर्थिक–सामाजिक समृद्धि में घनिष्ठ सबंध है। इसीलिए चार्टर में यह प्रावधान किया गया कि आर्थिक–सामाजिक स्थायित्व के लिए तथा राष्ट्रों के

मध्य शांतिपूवर्ण और मैत्री संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से, संयुक्त राष्ट्र ''उच्च जीवन स्तर, पूर्ण रोजगार तथा आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति तथा विकास की परिस्थितियां'' प्रोत्साहित करेगा। विश्व की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए तथा विकास और प्रगति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ECOSOC) की स्थपना की गई। यह परिषद् सयुक्त राष्ट्र का एक प्रमुख अंग है। इसमें 54 सदस्य देश होते हैं। यह परिषद् एक स्थायी संस्था है, परन्तु इसके एक–तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। इसके सभी सदस्य महासभा द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं–प्रतिवर्ष एक तिहाई स्थानों के लिए चुनाव होता है। अवकाश ग्रहण करने वाले सदस्य दोबारा भी चुने जा सकते हैं। उनके कार्यकाल पर कोई सीमा नहीं है। पांचों बड़ी शक्तियां तथा भारत सहित कई देश निरंतर इसके सदस्य चुने जाते रहे हैं।

आर्थिक और सामाजिक परिषद् सामाजिक–आर्थिक कार्य करने वाली अनेक विशिष्ट एजेंसियसें के कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तदायी है। चार्टर के अनुसार, आर्थिक–सामाजिक परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य तथा अन्य संबंधित विषयों पर अध्ययन करवाकर, रिपोर्ट के रूप में अपनी सिफारिशें महासभा के पास भेजती है। यह परिषद् मानव अधिकारों तथा मूलभूत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा के लिए भी उत्तरदायी है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् अनेक आयोगों की सहायता से कार्य करती है। उनमें से कुछ विशिष्ट कार्यों (functional) के आयोग हैं, तथा कुछ क्षेत्रीय आयोग हैं। कार्यत्मक आयोगों में आर्थिक रोजगार–संबंधी तथा विकास आयोग, परिवहन एवं संचार आयोग, जनसंख्या आयोग, सामाजिक आयोग मानव अधिकार आयोग, महिला संबंधी आयोग तथा नशीली दवाओं संबंधी आयोग शामिल हैं। प्रमुख क्षेत्रीय आयोग हैं : यूरोप के लिए आर्थिक आयोग, एशिया एवं सुदूर पूर्व के लिए आयोग तथा लैटिन अमेरिका के लिए आयोग।

सदस्य देशों के सामाजिक आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से आर्थिक और सामाजिक परिषद का है। विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत अनेक विशिष्ट एजेंसियां तथा गैर–सरकारी संगठन (NGOs) हैं जिसका निरीक्षण और जिनके कार्यों का समन्वय आर्थिक और सामाजिक परिषद करती है।

1.21 संयुक्त राष्ट्रीय की प्रमुख विशिष्ट एजेसियाँ

संयुक्त राष्ट्रीय की अनेक विशिष्ट एजेसियां (Specialised Agencies) हैं। उनमें प्रमुख हैं– (1) तकनीकी विषयों से संबद्ध विशिष्ट एजेंसियां अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन (I.C.A.O.), विश्व मौसम संगठन (WMO), सार्वभौमिक डाक संघ तथा अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ, (2) वे एजेंसियां जो सामाजिक तथा मानवीय गतिविधियों में संलग्न हैं, जैसे : अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O), संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), तथा कृषि और खाद्य संगठन (J.M.F.) विश्व बैंक (World Bank) तथा अंतर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण (IDA)। भारत इनमें से अधिकतर के साथ किसी न किसी रूप में सम्बद्ध है।

अंतर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थान है। इसकी स्थापना 1957 में वियना में की गई थी। दो अन्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्थन हैं : संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल कोष (UNICEF), तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP)। दोनों विशिष्ट एजेंसियां नहीं हैं, परन्तु इनकी भूमिका अत्येंत महत्त्वपूर्ण है, और इनके कार्यों का समन्वय भी आर्थिक और सामाजिक परिषद करती है।

4- U;kl ifj"kn ¼**The Trusteeship Council**½ % न्यास परिषद् की स्थापना न्यास प्रदेशों के प्रबंध और उनके निरीक्षण के लिए की गई थी। ये न्यास प्रदेश वे प्रदेश थे, जो राष्ट्रसंघ व्यवस्था में, प्रथम विश्व युद्ध के पराजित देशों से छीनकर मैन्डेट के नाम से मैन्टेड व्यवस्था के अधीन किसी विजयी

देश के शासन प्रबंध में रखे गए थे। वे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर पाए थे। उन्हें नई न्यास व्यवस्था में न्यास प्रदेश बनाया गया। इनके अतिरिक्त द्वितीय विश्व युद्ध में पराजित इटली और जापान के अधिकार से पृथक् किए गए उपनिवेश थे, जिन्हें न्यास व्यवस्था के अंतर्गत किसी विजय देश के निरीक्षण में तब तक के लिए रखा गया था, जब तक वे स्वतंत्रता प्राप्ति के योग्य न हो जाएं। न्यास परिषद न्यास प्रदेशों तथा अन्य पराधीन देशों के हितों को संरक्षित करने, तथा उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त करवाने में सहायता देने के लिए स्थापित की गई थी।

न्यास परिषद् की सदस्य संख्या निश्चित नहीं थी। इसमें कुछ पदेन सदस्य होते थे तथा कुछ महासभा द्वारा निर्वाचित सदस्य थे। इसके पदेन सदस्य वे राष्ट्र थे, जिनके अधीन कोई न कोई न्यास प्रदेश था, तथा सुरक्षा परिषद के वे स्थायी सदस्य, जिनके अधीन कोई न्यास प्रदेश नहीं था। महासभा द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या पदेन सदस्यों के बराबर थी। यह परिषद् न्यास प्रदेशों से शिकायतें प्राप्त करती थी, उन पर विचार करके शासक देशों को निर्देश देती थी तथा महासभा के सम्मुख समय–समय पर रिपोर्ट भेजती थी।

न्यास परिषद् ने उपनिवेशवाद उन्मूलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब जब कुछ गिने–चुने द्वीप स्वतंत्र होने को शेष हैं, न्यास परिषद् की भूमिका लगभग समाप्त हो गई है।

4- vUrjkZ"Vªh; U;k;ky; **(International Court of Justice)** % चार्टर के अनुसार हेग स्थित अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र का एक प्रमुख अंग है। गैर राजनीतिक विवादों को सुलझाने के लिए राष्ट्रसंघ की व्यवस्था में (प्रसंविदा के अतिरिक्त) एक अंतर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय (PCIJ) स्थापित किया गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी न्यायलय, न्याय का अंतर्राष्ट्रीय (ICJ) स्थापित किया गया। वे सभी देश, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य हैं, स्वयं ही न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आ जाते हैं। यह राष्ट्रों के मध्य उन विवादों को निबटाता है, जो कि किसी संधि की अथवा अंतर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या से संबंधित हैं। अर्थात राजनीतिक विवाद इसकी परिधि में नहीं आते हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायलय में 15 न्यायाधीश होते हैं, जो कि 15 अलग–अलग देशों के निवासी होते हैं। कोई भी दो न्यायाधीश एक ही देश के नागरिक नहीं हो सकते हैं। ये 15 विख्यात न्यायविद सुरक्षा परिषद् तथा महासभा के द्वारा पृथक मतदान में चुने जाते हैं। न्यायधीशों का कार्यकाल 9 वर्ष होता है– परंतु उनमें से एक तिहाई (पांच) प्रत्येक तीन वर्ष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। अवकाश ग्रहण करने वाले न्यायाधीश अपने में से एक प्रधान और एक उप–प्रधान चुनते हैं। प्रधान न्यायाधीश न्यायालय की अध्यक्षता करता है। प्रधान न्यायाधीश का कार्यकाल तीन वर्ष होता है। प्रमुख भारतीय न्यायविद –न्यायमूर्ति आर.एस. पाठक, बी.एन. राऊ तथा डॉ. नगेंद्र सिंह अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में न्यायाधीश रहे हैं। डॉ. नगेंद्र सिंह अंतर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या करके उसके अनुसार राष्ट्रों के मध्य मुकदमों का निर्णय करता है। कोई व्यक्ति या संस्था इस न्यायालय से न्याय की मांग नहीं कर सकता है। सामान्यतया कोई भी देश अपना विवाद पारस्परिक सहमति से इस न्यायालय के समक्ष लाता है। कोई एक देश दूसरे देश की सहमति के बिना उसके विरुद्ध मुकदमा शुरू नहीं कर सकता है। इसे स्वेच्छा क्षेत्राधिकार माना जाता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार से भी मुकदमे लाए जा सकते हैं। उसे ऐच्छिक धारा (Optinal Clause) कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिन देशों ने अपनी इच्छा से स्वयं को इस धारा के अंतर्गत घोषित कर दिया है, केवल वे ही देश एक–दूसरे की पूर्व अनुमति के बिना मुकदमा चला सकते हैं। परंतु किसी ऐसे देश के विरुद्ध यह व्यवस्था लागू नहीं होती जिसने ऐच्छिक धारा पर हस्ताक्षर न किए हों। न्यायालय के निर्णय बाध्य होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार भी हैं। इसके अधीन महासभा, सुरक्षा परिषद्, अन्य अंग तथा विशिष्ट एजेंसियां, जिन्हें महासभा ने अनुमति दी हो, किसी कानूनी प्रश्न

पर परामर्श मांग सकते हैं। परामर्श बाध्यकारी नहीं होता हैं, परन्तु उसे प्रायः मान लिया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायलय के निर्णय यदि सर्वसम्मति से न हो पाएं तो बहुमत से लिए जाते हैं। न्यायाधीशों के बहुमत से किए गए निर्णय न्यायालय के निर्णय माने जाते हैं और वे दृष्टांत के रूप में पेश किए जा सकते हैं। न्यायलय के निर्णयों को भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय कानून का सम्मान प्राप्त होता है।

lfpoky ; **(The Secretatiat)** % संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय स्थायी रूप से कार्य करते रहने वाला गैर–राजनीतिक अंग है। यह संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय (न्यूयॉर्क) में स्थिति हैं। सचिवालय के अनेक देशों से योग्यता और अनुभव के आधार पर चुने हजारों अधिकारी, लिपिक तथा अन्य कर्मी कार्य करते हैं। सचिवालय का प्रधान, महासचिव (Secretary-General) इस अन्तर्राष्ट्रीय लोक सेवा (International Civil Service) का अध्यक्ष होता है। चार्टर के अनुच्छेद 97 के अनुसार महासचिव संगठन का मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर उसको महासभा नियुक्त करती है। उसका सामान्य कर्यकाल पांच वर्ष है, परन्तु वह प्रायः दूसरे कार्यकाल के लिए भी चुन लिया जाता है। व्यवहार में अधिकांश महासचिवों ने दो कार्यकाल (दस वर्ष) पूरे किए। उनका पहला कार्यकाल पूरा होने पर घाना के वरिष्ठ राजनयिक कोफी अनान (Kofi Anna) को 1997 में महासचिव चुना गया। वे अनेक वर्षों से सचिवालय में वरिष्ठ अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। अन्य सभी महासचिव अपने–अपने देशों में प्रमुख राजनीतिक पदों पर कार्य कर चुके थे। प्रथम महासचिव ट्रिगवे ली (Trygve Lie) नार्वे के राजनीतिज्ञ थे। बूट्रस घाली महासचिव बनने से पूर्व मिस्र के विदेश मंत्री थे। 1945 से 1997 तक नियुक्त सभी महासचिव कम शक्तिशाली देशों से ही लिए गए।

महासचिवालय सचिवालय के हजारों कर्मियों को नियुक्त करता है और उनका मार्गदर्शन एवं उनके कार्य का नियमन और निरीक्षण करता है। सचिवालय किसी भी सरकार के सचिवालय की भांति कार्य करता है। महासचिव संयुक्त राष्ट्र महासभा, सुरक्षा परिषद् इत्यादि प्रमुख अंगों के महासचिव के रूप में कार्य करता है और उनके निर्णय लागू करवाने का प्रयास करता है। व्यवहार में महासचिव उनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण राजनीतिक और राजनयिक भूमिका भी निभाता है। समय के साथ उसकी इस भूमिका में वृद्धि हुई है। गंभीर संकट के समय, महासचिव संयुक्त राष्ट्र के प्रधान अधिकारी के रूप में मध्यस्थता करके समस्याओं को सुलझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए डॉ. बूट्रस घाली ने तीन वर्ष से ऊपर चले, पूर्व यूगोस्लाविया के सर्बों तथा बोस्नियनों के मध्य युद्ध को समाप्त करवाने के लिए सराहनीय प्रयास किए। खाड़ी युद्ध (1990–91) के समय से ईराक के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र के व्यापक प्रतिबंध लगे हुए थे। ईराक में अस्त्र–भंडारों के निरीक्षण को लेकर 1998 में उस समय संकट बहुत गंभीर हो गया जब ईराक ने संयुक्त राष्ट्र निरीक्षण दल में कुछ अमरीकियों को शामिल किए जाने पर गंभीर आपत्ति की। उधर अमेरिका के राष्ट्रपति ने ईराक के विरुद्ध युद्ध की धमकी दे डाली। इस परिस्थिति में महासचिव कोफी अनन ने व्यक्तिगत मध्यस्थता करके ईराक को अस्त्र निरीक्षण के लिए मना लिया और संभावित अमरीकी आक्रमण टल गया। इस प्रकार महासचिव अब केवल प्रशासन का मुख्य अधिकारी ही नहीं रह गया है। वह, चार्टर निर्माताओं की अपेक्षाओं से कहीं आगे निकलकर प्रमुख राजनीतिक हो गया है।

1.22 संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख कार्य ½Major Functions of the United Nations½

संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख कार्यों का संबंध उसके इस घोषित उद्देश्य से है कि आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की भीषण पीड़ा से बचाना है। अतः अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख उत्तरदायित्व है। दूसरे, यदि विश्व के किसी भी भाग में युद्ध आरंभ हो जाए, अथवा किसी देश पर आक्रमण किया गया हो तो संयुक्त राष्ट्र उस सशस्त्र संघर्ष को शीघ्र समाप्त करवाने का प्रयास करता

है। यदि और कोई मार्ग न बचे तो संयुक्त राष्ट्र सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था कर सकता है। इसके अधीन, आक्रमण से पीड़ित देश को मुक्त करवाने के लिए सामूहिक बल प्रयोग का प्रबंध किया जा सकता है। तीसरे, संयुक्त राष्ट्र ने संकट की अनेक परिस्थितियों में शांति संस्थापन (peacekeeping) का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, और कर रहा है। जब कभी किसी युद्ध या सशस्त्र संघर्ष का अंत करवाया जाता है तो सामान्य स्थिति बहाल करवाने तक पूर्ण शांति बनाए रखना एक आवश्यक शर्त हो जाती है। इस कार्य के लिए संयुक्त राष्ट्र विभिन्न देशों से शांति बनाए रखने वालों को बुलाकर एकत्र करता है तथा संघर्ष के क्षेत्र में उनका उचित उपयोग सुनिश्चित करता है। चौथे, चार्टर के अनुच्छेद 1 (3) के अंतर्गत, संयुक्त राष्ट्र इस बात के लिए निरंतर प्रयत्नशील है कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय अथवा परोपकारी (Humanitarian) प्रकृति की अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान किया जा सके। विविध सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों का समन्वय आर्थिक और सामाजिक परिषद् करती है। आर्थिक–सामाजिक परिषद् (ECOSOC) यह कार्य विभिन्न (ऊपर उल्लेख किए गए) कार्यात्मक तथा क्षेत्रीय आयोगों के द्वारा करवाती है। संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न विशिष्ट एजेंसियां अनेक समस्याओं के समाधान के लिए निरंतर कार्यरत हैं। ये समस्याएं है : स्वास्थ्य रक्षा, श्रमिक वर्ग के हितों की रक्षा, भोजन की व्यवस्था, शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक कार्यों का समन्वय तथा बच्चों की सुरक्षा। पांचवें, चार्टर के अनुसार, सयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में से एक है–''मानव अधिकारों तथा सभी के लिए मूलभूत स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहित करना'' और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना। इसी प्रावधान के अधीन शुरू में ही, संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकार आयोग का गठन किया था, जिसने मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र का प्रारूप तैयार किया। इस घोषणापत्र को 10 दिसम्बर, 1948 के दिन महासभा ने स्वीकार एंव अंगीकृत किया। बाद में इसको लागू करवाने के लिए दो दस्तावेज स्वीकार किए गए, जिनमें क्रमशः राजनीतिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं तथा आर्थिक–सामाजिक अधिकारों का विस्तृत उल्लेख किया गया और सदस्य राष्ट्रों से अपेक्षा की गई कि वे उन्हें प्रभावी बनाएंगे।

1.23 संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्वशान्ति

संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल ध्येय अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखना तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहां कहीं भी सशस्त्र आक्रमण हो वहां सुरक्षा के लिए सामूहिक कार्यवाही करना है। चार्टर में अनुच्छेद 33 से 38 तक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समझौते की व्यवस्थाएं की गयी हैं। जब से संघ की स्थापना हुई है तब से आज तक, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा सम्बन्धी अनेक विवाद इसके समक्ष लाये गये हैं। इन विवादों को सुलझाने में यद्यपि संघ सदैव सफल नहीं हुआ, तथापि अनेक बार युद्ध की सम्भावनाओं को टालकर विश्व–शान्ति की दिशा में उसने उल्लेखनीय भूमिका निभायी है।

संयुक्त राष्ट्र के जन्म के बाद ही इसे ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ा, जो उस समय तृतीय विश्व–युद्ध की भूमिका बन सकती थीं। बर्लिन समस्या तथा कोरिया युद्ध ऐसे प्रकरण थे, जिनसे तात्कालिक परिस्थितियों में राजनीतिज्ञों और जन–साधारण को युद्ध की सम्भावनाएं दिखायी पड़ती थीं। वर्तमान युग में राजनीतिक क्रिया–कलाप केवल राजनीति के प्रकरण से ही बंधे नहीं हैं, अनेक समस्याएं राजनीतिक स्वरूप को लेकर विवाद के रूप में शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा बन सकती हैं। अणु शस्त्रास्त्रों के विस्तार को रोकने का प्रश्न, कहीं रंग–भेद नीति, कहीं सीमा–विवाद तथा अन्य क्षेत्रीय या स्थायी हितों से सम्बद्ध समस्याएं विवादों का कारण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में यदि उस पर पूर्ण नियन्त्रण न भी पाया जा सके और उसे विश्व–शान्ति को समाप्त कर देने वाली परिस्थितियों में न विकसित होने दिया जाय तो यह भी अपने आप में एक सफलता है, जो विश्व राजनीति की गतिविधियों को प्रभावित करती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ एक ऐसी संस्था है जहां विवादों के निपटाने के लिए एक ओर तो विचार–विमर्श किया जा सकता है दूसरी और युद्ध की सी स्थितियों अथवा सम्भावित स्थितियों के निराकरण के लिए प्रस्तावों के रूप में उपाय सुझाये जाते हैं। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ का संगठन एक सरकार का संगठन नहीं है और न ही इसकी कार्य–प्रणाली ही सरकारी है फिर भी यह अपने सदस्यों के सहयोग से जो कदाचित आज विश्व–युद्ध को एक प्रकार से अमान्य स्वीकार कर चुके हैं, पर्याप्त रूप से विवाद की स्थिति पर नियन्त्रण पाने, उसका निराकरण करने अथवा उसे विस्तृत विवाद का क्षेत्र न बनने देने के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

यहां विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को संक्षिप्त रूप से देखने से संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका को हम अपूर्व नहीं कह सकते हैं और न ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसकी क्षमता को विशिष्ट। फिर भी संयुक्त राष्ट्र अपने आप में एक ऐसी संस्था है, जो विश्व राजनीति में यद्यपि स्वतः प्रभावकारी रूप से तो उपस्थित नहीं होती तथापि उनेक परिस्थितियां इस मंच की उपादेयता को स्वीकार कराती दिखायी पड़ती है।

1.24 संयुक्त राष्ट्र संघ : उत्पन्न विवाद

1- bjku & यह संघ में उपस्थित होने वाला पहला महत्वपूर्ण विवाद था। 19 जनवरी, 1946 को ईरान ने सुरक्षा परिषद् को सूचना दी कि सोवियत फौजें उसके आजरवाइजान प्रान्त में घुसी हुई हैं और इसे खाली नहीं कर रही हैं। सुरक्षा परिषद् के कार्य का इस विवाद के साथ श्रीगणेश होना शुभ नहीं था, फिर भी इस समस्या का हल 21 मई, 1946 को सोवियत सेनाओं के ईरान से हट जाने के साथ सफलतापूर्वक हो गया। यह परिषद् की बड़ी सफलता थी। सोवियत संघ द्वारा सेनाएं हटाने का कारण परिषद् द्वारा की गयी कार्यवाही नहीं थी, बल्कि सुरक्षा परिषद् में हुई बहस से निर्मित हुआ प्रबल लोकमत था।

2- ;wuku & 3 दिसम्बर, 1946 को यूनान ने सुरक्षा परिषद् में यह शिकायत की कि उसके उत्तरी सीमान्त पर स्थित साम्यवाद राज्य विद्रोही छापामारों को सहयोग दे रहे हैं और यूनान में गृह–युद्ध कराना चाहते हैं। इस पर परिषद् ने एक जांच कमीशन नियुक्त किया। 1947 में यह प्रश्न महासभा में ले जाया गया। महासभा ने एक समिति की स्थापना की और इसे मौके पर जाकर मामले की जांच करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दिया। इस जांच के आधार पर महासभा ने यूनान को मदद देने का निश्चय किया और यूनान व उसके राज्यों को आपस में समझौता कर लेने का सुझाव दिया। इस बीच यूगोस्लाविया की नीति बदली और उसने छापामारों को सहायता देना बन्द कर दिया।

3- lhfj;k&ylcuku & 4 फरवरी, 1946 को सीरिया तथा लेबनान ने अपने देश से फ्रेंच फौजों के हटाने की मांग की। सुरक्षा परिषद् में मतदान के समय फ्रांस और ब्रिटेन ने सम्बद्ध पक्ष होने के कारण वोट न देते हुए यह घोषणा की कि वे अपनी फौजें हटा लेंगे और बाद में उन्होंने यह वचन पूरा किया। इसमें भी संघ को सफलता मिली।

4- b.Mkuf'k;k – द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व इण्डोनेशिया पर हॉलैण्ड का अधिकार था। युद्ध के दौरान जापान ने उस पर अपना अधिकार ब्रिटेन व डच सेनाओं ने इण्डोनेशिया पर पुनः 'डच साम्राज्यवाद' लादने के उद्देश्य से आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष में हजारों इण्डोनेशियायी तथा ब्रिटिश सैनिक मारे गये। भारत और आस्ट्रेलिया ने इस मामले को परिषद् में उठाया। अगस्त 1947 को परिषद् ने दोनों पक्षों को युद्ध विराम का आदेश दिया और विवाद के शान्तिपूर्ण हल के लिए सत्कार्य समिति बनायी। इस समिति ने एक समझौता करवाया, किन्तु हॉलैण्ड ने समझौते का उल्लंघन करके युद्ध छेड़ दिया। 28 जनवरी, 1948 को परिषद् ने एक प्रस्ताव पास करके हॉलैण्ड को लड़ाई बन्द करने का आदेश दिया। हॉलैण्ड की सरकार ने शुरू में उसका विराध किया, किन्तु बाद में वह

उसे मानने को विवश हो गयी। 27 दिसम्बर, 1949 को इण्डोनेशिया ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली और सभी समस्याओं का निराकरण हो गया।

5- cfyu dk ?kjk & 1945 के पोट्सडाम समझौते के अनुसार बर्लिन नगर चार विभिन्न शक्तियों के नियन्त्रण में चार क्षेत्रों में बांटा गया था। इसका पूर्वी भाग सोवियत संघ के तथा पश्चिमी बर्लिन के तीन भाग फ्रांस, अमरीका और ब्रिटेन के नियन्त्रण में थे। पश्चिमी भागों का मार्ग सोवियत संघ के पूर्वी भाग में से होकर गुजरता था। 1948 में स्थायी मुद्रा विषयक एक झगड़े को लेकर सोवियत संघ ने पश्चिमी बर्लिन के स्थल और जल के सब मार्ग बन्द कर दिये। तीनों देशों ने सुरक्षा परिषद् में बर्लिन के घेरे के विरुद्ध शिकायत की। दोनों पक्षों में वार्तालाप के द्वारा 1949 में समस्या हल हुई। यद्यपि इस समस्या के हल का श्रेय सुरक्षा परिषद् को नहीं है, फिर भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने दोनों पक्षों के परस्पर मिलने के लिए स्थान और सुविधाएं उपलब्ध की।

6 ityLVkbu – पेलेस्टाइन के विभाजन के प्रश्न को लेकर 1947 से ही अरबों और यहूदियों में उग्र विरोध चल रहा था। इजराइल राज्य की स्थापना हो गयी थी एवं नये राज्य पर चारों ओर से अरब राज्यों ने हमला कर दिया था। युद्ध, बन्द भी हो गया, किन्तु उपद्रव चलते रहे। महासभा ने ''संयुक्त राष्ट्र समझौता आयोग' नियुक्त किया। इसके फलस्वरूप इस प्रदेश में शान्ति स्थापित हुई।

7- Liu & 1946 में पोलैण्ड ने सुरक्षा परिषद् से इस बात की शिकायत की कि स्पेन में फ्रांको का शासन फासिस्ट होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए खतरा है। महासभा ने इस विषय में यह सिफारिश की कि फ्रांको सरकार को संघ की तथा सहायक संस्थाओं की सदस्यता से वंचित कर दिया जाये। किन्तु बाद में इस सिफारिश को रद्द कर दिया गया एवं 1955 में स्पेन को संघ का सदस्य बना लिया गया।

8- dkjQw puy fookn –ब्रिटेन ने 1947 में परिषद् से यह शिकायत की कि अल्बानिया द्वारा कोरफू टापू के पास वाले समुद्र में बिछायी गयी सुरंगों से ब्रिटिश युद्धपोतों को हानि हुई है, अतः उसे क्षतिपूर्ति दिलवायी जाये। अल्बानिया का मन था कि ब्रिटेन ने उसके प्रादेशिक समुद्र में उसकी सर्वोच्च सत्ता का उल्लंघन किया है। अन्त में मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के पास ले जाया गया।

9- dkfj;k – 25 जून, 1950 को संयुक्त राष्ट्र को सूचना दी गयी कि उत्तरी कोरिया की सेनाओं ने दक्षिणी कोरिया के गणराज्य पर आक्रमण किया है। उसी दिन सुरक्षा परिषद् की बैठक हुई और उसमें यह घोषणा की गयी कि इस सशस्त्र आक्रमण से शान्ति भंग हुई है। परिषद् ने युद्ध विराम की मांग की परन्तु दो–तीन दिन तक युद्ध चलते रहने पर परिषद् ने सिफारिश की कि संघ के सदस्यगण कोरियाई गणराज्य को उस सशस्त्र आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तथा उस क्षेत्र में शान्ति की स्थापना करने में सहायता दें। 27 जून, 1950 को संघ ने यह घोषणा की कि उसने अपनी वायु तथा जल सेनाओं को और बाद में स्थल सेनाओं को भी दक्षिण कोरिया की सहायता के लिए आज्ञा दे दी है। कोरिया का युद्ध वास्तव में संयुक्त राज्य अमरीका के युद्ध था। एक वर्ष के युद्ध के बाद दोनों पक्षों में विराम–सन्धि की चर्चा चलने लगी। भारत की अध्यक्षता में तटस्थ देशों का आयोग बनाया गया एवं 27 जुलाई 1953 को पानमुनजोन में कोरिया युद्ध की विराम–सन्धि पर हस्ताक्षर होने से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गयी पहली सैनिक कार्यवाही समाप्त हुई। कोरिया मे संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रभावशाली और सफल कार्यवाही के अनेक कारण थे। पहला कारण सोवियत संघ द्वारा परिषद् का बहिष्कार था। दूसरा कारण जापान में अमरीकी फौजों की उपस्थिति और अमरीका द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को इन फौजों को लड़ने के लिए प्रदान करना था।

10- cekZ ¼E;kekj½ esa phuh lsuk,a & सन् 1953 में बर्मा ने महासभा से शिकायत की कि उसके प्रदेश में चीनी सेनाएं घुस आयी हैं। ये बर्मा में विद्रोह भड़काने का कार्य कर रही हैं। महासभा

ने एक प्रस्ताव में बर्मा में विदेशी सैनिकों की उपस्थिति की निन्दा की। कुछ देशों की ''संयुक्त सैनिक समिति' ने बर्मा से चीनी सैनिकों को निकालना शुरू किया और यह समस्या शान्तिपूर्वक हल हो गयी।

11- d'eh j – कश्मीर का मामला भारत तथा पाकिस्तान के मध्य कई बार युद्ध तथा सैनिक कार्यवाही भड़काने वाला रहा है। यह विवाद आज भी संयुक्त राष्ट्र संघ में बना हुआ है। जब कभी भारत तथा पाकिस्तान में कश्मीर के प्रश्न को लेकर युद्ध हुआ संयुक्त राष्ट्र संघ ने युद्ध–विराम करने का भरसक प्रयास किया एवं सफलता प्राप्त की। सुरक्षा परिषद् ने सर्वप्रथम 1948 में दोनों सरकारों से युद्ध बन्द करने को कहा। सन् 1965 में भी दोनों देशों में बड़े पैमाने पर भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। महासचिव यु–थाण्ट ने दोनों देशों से युद्ध बन्द करने की अपील की। महासचिव ने स्वयं भारत तथा पाकिस्तान की यात्राएं की तथा बाद में युद्ध विराम हो गया।

12- Lo t ugj& जब 1956 में मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो ब्रिटेन, फ्रांस तथा इजरायल ने मिलकर मिस्र पर आक्रमण कर दिया। महासभा ने ब्रिटिश, फ्रेंच तथा इजरायली फौजों से तत्काल मिस्र से हट जाने का प्रस्ताव पास किया। ब्रिटेन और फ्रांस ने अपनी सेनाएं हटा लीं, किन्तु इजरायल ने सेनाएं नहीं हटायीं। इसके फलस्वरूप छः शक्तियों ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि ''सब राज्य इजरायल को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देना बन्द कर दें।'' इस पर पहली मार्च, 1957 को इजरायल ने कुछ शर्तों के साथ सेनाएं हटाना स्वीकार किया। मिस्र में युद्ध बन्द कराने तथा विदेशी सेनाएं हटाने में संघ को पूरी सफलता मिली।

13 lkbi l & साइप्रस में यूनानियों एंव तुर्की के बीच में गृह–युद्ध सी स्थिति हो गयी थी। यूनान और तुर्की दोनों पक्षों का समर्थन करने लगे। 1963 के आरम्भिक महीनों में यहां उपद्रव बहुत बढ़ गये। साइप्रस के राष्ट्रपति ने सुरक्षा परिषद् से शान्ति स्थापित करने की तथा इस टापू की तुर्की के आक्रमण से रक्षा करने की प्रार्थना की। सुरक्षा परिषद् ने इस प्रश्न पर 4 मार्च, 1964 को यहां शान्ति स्थापित करने के लिए संघ की सेना भेजने तथा दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त कराने का प्रस्ताव पास किया। इससे संघ की इस सेना को साइप्रस में कानून और व्यवस्था स्थापित करने में बड़ी सफलता मिली।

14 ;eu –1962 में यमन में क्रान्ति हुई। नयी सरकार मिस्र एवं सोवियत संघ की समर्थक थी। यहां पर क्रान्ति के बाद पड़ोसी राज्य हस्तक्षेप करने लगे। 1963 के पहले तीन महीनों में इस प्रदेश में उग्र युद्ध चलने के कारण स्थिति बड़ी गम्भीर हो गयी। इस विस्फोटक स्थिति को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने राल्फबुन्चे को तथ्यों की जांच करने के लिए भेजा। संघ के प्रयासों से बाह्य शक्तियों ने यमन में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया और शान्ति स्थापित हो गयी। इस घटना के हल करने में संघ का प्रयास अत्यधिक सराहनीय था।

15- vje&btjk;y– 1956 के स्वेज विवाद में युद्ध होने पर संयुक्त राष्ट्र की शान्ति सेना गाजा और मिस्र की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर तैनात हो गयी, ताकि इजरायल और अरब राष्ट्रों में पुनः किसी सशस्त्र संघर्ष का अवसर न आये। 18 मई, 1967 को मिस्र के विदेश मन्त्री डॉ. महमूद ने महासचिव से इस सेना को गाजा पट्टी से शीघ्र हटा लेने को कहा। महासचिव ने इसके उत्तर में कहा कि शान्ति सेना हटाने का परिणाम अच्छा नहीं होगा। लेकिन सेना मिस्र सरकार की सहमति से ही वहां रह सकती थी, अतः सेना को वहां से हट जाने के लिए आदेश जारी कर दिये गये। संयुक्त राष्ट्र शान्ति सेना के हट जाने का परिणाम यह हुआ कि अरब और इजरायल की सेनाएं फिर आमने–सामने हो गयी। इस समय अरब राज्य इजरायल के विरुद्ध अनर्गल प्रचार कर रहे थे, ऐसी स्थिति में इजरायल ने 5 जून, 1967 को अचानक अरब राज्यों पर आक्रमण कर दिया। छः दिनों बाद सुरक्षा परिषद् के प्रयत्नों से जिस समय युद्ध–विराम हुआ, उस समय तक इजरायल की सेना अपने देश के क्षेत्र के चार गुने

क्षेत्र पर अधिकार कर चुकी थी। जहां तक इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने का प्रश्न है, सन् 1948 में इजरायल की आक्रमणकारी कार्यवाहियों की निन्दा की जा चुकी है। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र के विशेष दूत डॉ. गुन्नार यारिंग ने पश्चिम एशिया में शान्ति के लिए अनेक वर्षों तक अकथनीय परिश्रम किया किन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिल सकी।

16- dkxks& कांगो अफ्रीका महाद्वीप में स्थित है। सन् 1960 में बेल्जियम ने इसे स्वतन्त्रता प्रदान की। यहां के छः प्रान्तों में बसी हुई विभिन्न जातियां स्वार्थी और महत्वाकांक्षी नेताओं के बहकावे में आकार स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगीं। इस गृह–युद्ध की–सी स्थिति में अपने नागरिकों की सुरक्ष का तर्क देते हुए बेल्जियम सरकार ने अपनी सेनाएं कांगो में भेज दी। इस पर 12 जुलाई, 1960 को कांगो की सरकार ने संयुक्त राष्ट्र से यह प्रार्थना की कि बेल्जियम के आक्रमण से कांगो की रक्षा के लिए तुरन्त सैनिक सहायता दी जाये। सुरक्षा परिषद् के निर्णय पर संयुक्त राष्ट्र सेना के 10 हजार से कुछ अधिक सैनिक कटंगा को छोड़कर कांगो के सभी प्रान्तों में पहुंच गये। महासचिव हैमरशोल्ड ने स्थिति को गम्भीर देखकर बेल्जियम से अपील की कि वह कटंगा से अपनी सेनाएं वापस बुला ले। 1961 में कांगो की स्थिति का अध्ययन करने और वहां के नेताओं के प्रत्यक्ष बातचीत करने के उद्देश्य से स्वयं महासचिव कांगो के लिए रवाना हुए किन्तु मार्ग में वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उनका देहान्त हो गया। उनके बाद युद्ध–विराम हुआ और कांगो में शान्ति स्थापित हो गयी। कांगो में संयुक्त राष्ट्र का सैनिक उद्देश्य समाप्त हो गया फिर भी नागरिक सहायता का एक महान् सहायता कार्यक्रम चल रहा है।

17 Mkekfudh x.kjkT; – वेस्ट इण्डीज के इस छोटे–से टापू में 25 अप्रैल, 1965 को एकाएक गृह–युद्ध छिड़ गया। विद्रोहियों ने अमरीका समर्थित सरकार को उखाड़कर शासन पर अधिकार जमाने के लिए भीषण युद्ध शुरू कर दिया। अमरीकी नागरिकों की रक्षा के बहाने अमरीका ने अपने 14 हजार सैनिक इस टापू पर भेज दिये। मई, 1965 को सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद् की बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि अमरीका ने डोमोनिकी गणराज्य के आन्तरिक मामले में जो हस्तक्षेप किया है उस पर विचार किया जाये। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना एक मिशन यहां स्थापित किया एवं जब चुनाव के बाद नयी सरकार स्थापित हो गयी तब संयुक्त राष्ट्र मिशन को सन् 1966 में वापस बुला लिया गया। यह संघ की एक महान् सफलता थी।

18 nf{k.kh jkMf'k;k & अफ्रीका की एक ज्वलंत समस्या दक्षिणी रोडेशिया से संकट के रूप में नवम्बर, 1965 में उग्र रूप में प्रकट हुई। 11 नवम्बर, 1965 को इआन स्मिथ की अल्पसंख्यक गोरी सरकार ने एकपक्षीय स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। 13 नवम्बर को महासभा ने एक प्रस्ताव पास करके दक्षिणी रोडेशिया की सरकार के कार्य की घोर निन्दा की तथा सब सदस्य राज्यों से अनुरोध किया कि वे इसके साथ व्यापार करना बन्द कर दें। महासभा ने नवम्बर, 1967 में शक्ति का प्रयोग करने पर बल दिया, किन्तु ब्रिटेन ने ऐसी कार्यवाही नहीं की। संयुक्त राष्ट्र संघ के दबाव के फलस्वरूप 17 अप्रैल, 1980 को भीषण छापामारयुद्ध के बाद रोडेशिया स्वतन्त्र हो गया और जिम्बाब्वे के नाम से संयुक्त राष्ट्र का 153वां सदस्य बन गया।

19- fo;ruke– हिन्दचीन के बारे में 1954 के जेनेवा समझौते को सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं किया जा सका। 1960 से ही वियतनाम संघर्ष में दो महाशक्तियां रूचि लेने लगी और 1964 में तो अमरीका की सैनिक गतिविधियां उग्रतर हो गयी। 1974 तक वियतनाम का संघर्ष चलता रहा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी समस्या को सुलझाने के लिए पहल आवश्य की थी, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। अब वहां से अमरीकी फौजें स्वदेश वापस चली गयी हैं अैर वियतनाम की समस्या वस्तुतः हल हो गयी है। राष्ट्रीय सरकार पुनर्निर्माण के कार्य में संलग्न है।

20- ukbthfj;k& 1960 में नाइजीरिया ने ब्रिटेन से स्वाधीनता प्राप्त की। इसके कुछ ही समय बाद वहां गृह–युद्ध छिड़ गया तथा 1967 में बियाफ्रा का भाग इससे अलग हो गया। बियाफ्रा के स्वतन्त्र राज्य की घोषणा के फलस्वरूप नाइजीरिया में भीषण युद्ध छिड़ गया। संघीय नेताओं ने बियाफ्रा के प्रदेश को चारों ओर से घेरकर वहां के लोगों को भूखा मारने की नीति अपनायी। 11 जनवरी, 1970 को बियाफ्रा के सेनापति के पलायन से गृह–युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु इससे अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी। युद्ध–विध्वस्त बियाफ्रा के पुनर्निर्माण तथा शरणार्थियों की पुनः स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ भरपूर सहयेग दे रहा है।

21- pdkLyksokfd;k ladV–अगस्त, 1968 में चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ और वारसा पैक्ट के अन्य देशों ने सैनिक कार्यवाही करके हंगरी की घटनाओं को फिर से ताजा कर दिया। इस सैनिक कार्यवाही का प्रमुख कारण यह बताया गया कि चेकोस्लोवाकिया के साम्यवादी शासन को प्रतिक्रिया शक्तियों से बचाने के लिए हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया था। यह मामल संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में उठाया गया। सुरक्षा परिषद् के 7 सदस्यों ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें सोवियत संघ की कार्यवाही को एक स्वतन्त्र और सम्प्रभु राष्ट्र पर आक्रमण की संज्ञा देकर, निन्दा की गयी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने यह मांग की कि सोवियत संघ और वारसा पैक्ट के अन्य राष्ट्रों के सैनिकों को तुरन्त वहां से हटा लिया जाय। परन्तु यह प्रस्ताव व्यर्थ सिद्ध हुआ। चूंकि स्वयं चेकोस्लोवाकिया की सरकार ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। चेकोस्लोवाकिया के मसले पर संघ की भूमिका एक मूकदर्शक से अधिक नहीं रही। अन्ततोगत्वा इस संकट का समाधान साम्यवादी देशों का एक आन्तरिक मामला बनकर रह गया।

22- vejhdh cU/kdksa dh lekL;k& 4 नवम्बर, 1979 को इस्लामी उग्रपंथी छात्रों ने तेहरान स्थित अमरीकी दूतावास की घेराबन्दी करके दूतावास के सभी 52 राजनयिक प्रतिनिधियों को बन्दी बना लिया। इन अमरीकी बन्धकों को मुक्त कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने बहुत प्रयास किये, सुरक्षा परिषद् ने बन्धकों को छोड़ने की अपील की, संयुक्त राष्ट्र ने एक 5 सदस्यीय अन्तर्राष्ट्रीय जांच आयोग भी ईरान भेजा, जो वहां 17 दिन तक मूकदर्शक बना रहा। यह जांच आयोग बन्धकों से नहीं मिल सका और वापस लौट आया। महासचिव ने अमरीकी बन्ध्कों की रिहाई पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद् की आपात्कालीन बैठक आमन्त्रित की। दिसम्बर, 1979 में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने सर्वसम्मति से अमरीकी बन्धकों को तुरन्त रिहा करने के आदेश जारी किये किन्तु ईरान ने न्यायालय के क्षेत्राधिकार को मानने से इन्कार करते हुए न्यायालय के आदेशों की उपेक्षा की। अन्त में इस समस्या का हल अल्जीरिया की मध्यस्थता द्वारा अमरीका और ईरान के मध्य बन्धकों की रिहाई से सम्बन्धित एक समझौते द्वारा हुआ। इस समझौते के परिणामस्वरूप 20 जनवरी, 1981 को अमरीकी बन्धकों को रिहा कर दिया गया। यह एक तथ्य है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अमरीकी बन्धकों को मुक्त कराने में सफल नहीं हो सका।

23- vQxkfuLrku ls lkfo;r lsuk dh lukvksa dk gVk;k tkuk& 27 दिसम्बर, 1979 को अफगानिस्तान में एक आन्तरिक क्रान्ति होने पर तत्कालीन राष्ट्रपति हफीजुल्ला अमीन को अपदस्थ कर दिया गया और उनके स्थान पर बबरक करमाल को राष्ट्रपति बनाया गया। इसी समय सोवियत संघ की सेनाओं ने बड़ी संख्या में अफगानिस्तान में प्रवेश किया। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद सोवियत संघ ने पहली बार इतनी बड़ी संख्या में (लगभग 1 लाख) सैनिक दूसरे देश में भेजे थे। संयुक्त राज्य अमरीका ने सुरक्षा परिषद् में इस मामले को उठाया। सोवियत संघ ने अपनी सेनाएं भेजने का समर्थन इस आधार पर किया कि ये सेनाएं अफगान सरकार की प्रार्थना पर उसके साथ सोवियत संघ की मैत्री–सन्धि की शर्तों के अनुसार काबुल सरकार के निमन्त्रण पर भेजी गयी हैं। सुरक्षा परिषद् में इन सेनाओं के वापस लौटाने का प्रस्ताव सोवियत वीटो के कारण पारित नहीं हो सका।

इसके बाद यह प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में 14 जनवरी, 1980 को लाया गया। महासभा ने अपने आपात्कालीन अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित करके मांग की कि अफगानिस्तान से विदेशी सेनाएं तत्काल हटायी जायें। यह प्रस्ताव 104 मतों के बहुमत से महासभा द्वारा स्वीकृत किया गया। इसके विरोध में केवल 18 मत थे और 18 देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया।

अप्रैल, 1988 में संयुक्त राष्ट्र के छः वर्षों के प्रयासों के बाद पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच (14 अप्रैल, 1988) शान्ति समझौता जेनेवा में सम्पन्न हो गया। समझौते पर हस्ताक्षर करने वालों में गारण्टीदाता के रूप में विश्व की दोनों महाशक्तियां भी शामिल थी। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव पेरेज डी क्वयार की उपस्थिति में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, सोवियत संघ और अमरीका के विदेश मन्त्रियों ने समझौते पर हस्ताक्षर किये। समझौते में अफगानिस्तान से नो महीने के भीतर सोवियत सैनिकों की वापसी का प्रावधान था। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार दिसम्बर, 1979 से अप्रैल, 1988 तक अफगानिस्तान में हुए संघर्ष में 15 लाख लोग मारे गये यह भी अनुमान लगाया गया कि मुस्लिम विद्रोहियों के साथ संघर्ष में दस हजार से पन्द्रह हजार के बीच सोवियत सैनिक मारे गये।

24- Qkdy.M fookn& फाकलैण्ड द्वीपसमूह अर्जेण्टाइना के समीप अटलांटिक महासागर में स्थित है। इन पर सन् 1849 से ब्रिटेन का अधिकार चला आ रहा था। इन पर अर्जेण्टाइना अपनी प्रभुसत्ता का दावा करता था। परन्तु इन द्वीपों की जनता अनेक बार अर्जेण्टाइना से अधिमिलन के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रकट कर चुकी थी। 12 अप्रैल, 1982 को अर्जेण्टाइना की सेनाओं ने इन द्वीपों पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया। ब्रिटेन ने फाकलैण्ड द्वीप से अर्जेण्टाइना की सेनाओं को निकालने के लिए उनका परिवेष्टन कर दिया। संयुक्त राष्ट्र महासचिव पेरेज डी क्वयार ने इस विवाद को निपटाने के लिए एक शान्ति योजना बनायी। यद्यपी यह शान्ति प्रयास सफल नहीं हो पाया और 14 जून, 1982 को अर्जेण्टाइना की सेनाओं ने आत्म–समर्पण कर दिया। फाकलैण्ड पर फिर से ब्रिटेन का अधिकार हो गया।

25 xzuMk e vejhdh gLr{ksi& ग्रेनेडा कैरेबियन सागर में एक छोटा–सा द्वीप है। वहां अक्टूबर, 1983 में प्रधानमंत्री मोरिस बिशप की हत्या करके सैनिक शासन की स्थापना कर दी गयी, जिसका समर्थन क्यूबा की सेनाएं कर रही थीं। 25 अक्टूबर, 1983 को अमरीका ने यह घोषणा करते हुए कि ''निर्दोष व्यक्तियों के प्राण बचाने'' और ''विधि का शासन व सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप आवश्यक हो गया है'' अपनी सेनाएं ग्रेनेडा में भेज दीं। विश्व के अधिकांश देशों ने अमरीका के इस कार्य की निन्दा की। 28 अक्टूबर, 1983 को सुरक्षा परिषद् में 15 में से 11 सदस्यों ने अमरीकी आक्रमण की निन्दा करने के प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया। परन्तु अमरीका ने 'वीटो' का प्रयोग करके इसे निष्फल कर दिया। कुछ दिनों बाद में ग्रेनेडा में एक आन्तरिक सरकार की स्थापना करके अमरीकी सेनाएं वहां से हट गयीं।

26- bjku&bjkd ;q)&fojke & 22 सितम्बर, 1980 से ईरान–इराक युद्ध आरम्भ हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता के परिणामस्वरू 9 अगस्त, 1988 को दोनों देशों के बीच अनौपचारिक युद्ध–विराम हो गया। जुलाई, 1987 में सुरक्षा परिषद् ने एक सर्वसम्मत प्रस्ताव (प्रस्ताव संख्या 598) पारित करके ईरान व इराक से अपील की कि वे तुरन्त युद्ध बन्द करें। तब संयुक्त राष्ट्र महासचिव के सक्रिय प्रयत्नों से दोनों पक्षों को युद्ध बन्द करने के लिए राजी किया गया। दोनों देशों की 1200 किमी लम्बी सीमा पर संयुक्त राष्ट्र की 350 सदस्यीय सेना आवश्यक स्थानों पर तैनात कर दी गयी।

27 ukehfc;k dh LorU=rk& नामीबिया 21 मार्च, 1990 को एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया। नामीबीया की स्वतन्त्रता के बारे में 13 दिसम्बर, 1988 को कांगो की राजधानी ब्राजाविले में दक्षिण

अफ्रीका, क्यूबा तथा अंगोला में एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते को सम्पन्न कराने में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मुख्य भूमिका निभाई।

28 vxkyk l D;ckbl lfudk dh okilh & 21 दिसम्बर, 1988 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने अंगोला से 50 हजार क्यूबाई सैनिकों की वापसी की देखरेख के लिए वहां संयुक्त राष्ट्र के पर्यवेक्षकों का दल तैनात करने का सर्वसम्मति से फैसला किया।

29- dor dk bjkdh dCt l eDr djkuk& संयुक्त सुरक्षा परिषद् ने 2 अगस्त, 1990 को कुवैत पर इराकी आक्रमण से लेकर 29 नवम्बर, 1990 तक खाड़ी ंकट पर 12 प्रस्ताव पारित किये । संयुक्त राष्ट्र संघ के झण्डे तले मित्र–राष्टों की सेना ने कुवैत को इराक से मुक्त (1991) कराया।

30 ;xkLykfo;k – भूतपूर्व यूगोस्लाविया में सर्ब, क्रोएट और मुस्लिम समुदायों के बीच आन्तरिक जातीय संघर्ष 1992–95 की दर्दनाक घटना है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारत के ले. जनरल सतीश नाम्बियार के नेतृत्व में 25000 सैनिकों की एक सुदृढ़ शान्ति सेना शान्ति बहाल करने के लिए वहां भेजी। ये सैनिक 25 देशों से लिए गए थे।

बोस्निया में संयुक्त राष्ट्र को कोई खास सफलता नहीं मिली। 14 दिसम्बर, 1995 को बोस्निया समझौते पर पेरिस में हस्ताक्षर हुए। संयुक्त राष्ट्र को पीछे धकेलते हुए बोस्निया में शान्ति स्थापना का दायित्व नाटो ने ग्रहण कर लिया। नाटो बोस्निया में शान्ति स्थापना के लिए 60 हजार सैनिक भेजने के लिए तैयार हो गया, जिसमें 20 हजार अमरीका से लिए जाने थे। पिछले वर्षों में बोस्निया में 2 लाख लोग मारे गए और लाखों बेघर हो गए।

31 lkekfy;k& अफ्रीका देश सोमालिया में पिछले कुछ वर्षों से कई लड़ाकू ग्रुप गृहयुद्ध में लिप्त हैं। 1991 के मध्य में सोमालिया के राष्ट्रपति मोहम्मद सैयदबारे का तख्ता पलटे जाने के बाद गृहयुद्ध और तेज हो गया। इसके साथ ही सोमालिया को भीषण अकाल का सामना भी करना पड़ा। कुछ समय पहले कई देशों, मुख्य रूप से अमरीका से खाद्य सहायता की आपूर्ति शुरू हुई किन्तु जैसे ही खाद्य–सामग्री की खेपें उतारी जाने लगीं, विभिन्न सशस्त्र गिरोहों द्वारा उन्हें लूटना शुरू कर दिया गया और भुखमरी से ग्रस्त लोगों तक खाद्य सामग्री नहीं पहुंच पाई इसलिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा मंजूरी दिये जाने के बाद 9 दिसम्बर, 1992 को, 1700 अमरीकी नौ सैनिक सोमालिया में उतरे। संयुक्त राष्ट्र के अकाल राहत प्रयासों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुल मिलकार 35000 सैनिक भेजने का फैसला किया गया। इन प्रयासों को 'आपरेशन रेस्टोर होप' की संज्ञा दी गई। जनवरी,1993 में संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य संगठन ने 25 हजार टन और अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास ने 20 हजार टन खाद्य सामग्री सोमालिया पहुंचायी।

32- dEckfM;k& संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों से 23 अक्टूबर, 1991 को पेरिस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में कम्बोडिया में संघर्षरत सभी गुटों ने पूर्ण सहमति से शान्ति समझाौते का अनुमोदन कर दिया। जून, 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ की निगरानी में वहां चुनाव सम्पन्न हो गये और देश में शान्ति एवं स्थिरता स्थापित होने की आशा बढ़ी है।

33- l;Dr jk"V&bjkd le>krk & फरवरी, 1998 में खाड़ी क्षेत्र में टकराव और सम्भावित युद्ध का खतरा उस समय टल गया, जब संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान ने स्वयं बगदाद की यात्रा करके इराक में जैविक व रासायनिक हथियारों की जांच को लेकर उत्पन्न गतिरोध को दूर करने के लिए इराक के साथ ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। विवाद की जड़ में साढ़े चार महीने से चल रहा हथियारों की जांच का मामला था। शस्त्रों की जांच के लिए नियुक्त संयुक्त राष्ट्र जांच दल को राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के 8 महलों की जांच की अनुमति इराक ने नहीं दी थी। इस

समझौते से इराक के विरुद्ध सैन्य कार्यवाही का अमरीकी कदम थम गया, यद्यपि इराक पर हमला करने की उसने पूरी तैयार कर ली थी।

34 ycuku e: l;Dr jk"V vUrfje cy& लेबनान में संयुक्त राष्ट्र अन्तरिम बल की अवधि को जनवरी, 2000 के अन्त माह के लिए बढ़ाने की अनिवार्यता पर सुरक्षा परिषद् में 30 जुलाई, 1999 को मतदान हुआ। अपने सर्वसम्मत प्रस्ताव में सुरक्षा परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मान्यता प्राप्त सीमाओं के भीतर लेबनान की प्रादेशिक अखण्डता, सम्प्रभुता और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए अपने दृढ़ समर्थन की पुनः पुष्टि की।

35 fl;jk fy;ku& संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने सियरा लियोन में संयुक्त राष्ट्र मिशन की स्थापना करते हुए 22 अक्टूबर, 1999 को प्रस्ताव संख्या 1270 पारित किया । प्रस्ताव में सियरा लियोन में 6000 सशक्त संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना बल की तैनाती के लिए प्राधिकृत किया गया है। इन शान्ति स्थापकों का पहला दल 29 नवम्बर, 1999 को सियरा लियोन पहुंचा।

36 ckfLu;k& संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने 18 जून, 1999 के अपने प्रस्ताव संख्या 1247 द्वारा यू.एन.एम.आई.वी. की अनिवार्यता को 21 फरवरी, 2000 तक के लिए बढ़ा दिया था। भारत ने बोस्निया एवं हर्जेगोविना में संयुक्त राष्ट्र मिशन के लिए 134 असैनिक पुलिस अधिकारियों का योगदान दिया।

37 dklkok & कोसोवो में संकट का समाधान करने की दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों से एक करार तैयार किया गया, जिसे 10 जून, 1999 के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव संख्या 1244 द्वारा कानूनी रूप प्रदान किया गया जिसके द्वारा यूगोस्लाविया सेनाएं कोसोवों से हटाई जाएंगी ताकि नाटो के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सेनाएं और संयुक्त राष्ट्र के ध्वज के नीचे एक समानान्तर असैनिक अन्तरिम प्रशासन वहां प्रवेश कर सके। कोसोवो से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव में स्पष्ट उल्लेख है कि कोसोवो के लिए राजनीतिक समाधान जी–8 द्वारा निरूपित सिद्धान्तों पर आधारित होगा।

38 iohZ frekj& पूर्वी तिमोर के प्रश्न पर एक प्रमुख सफलता तब हुई जब पूर्वी तिमोर के लिए स्वायत्तता के प्रश्न का निर्णय करने के लिए मताधिकार से सम्बन्धित ब्यौरों से सम्बंधित संयुक्त राष्ट्र महासचिव की उपस्थिति में 5 मई, 1999 को इण्डोनेशिया और पुर्तगाल के विदेश मन्त्रियों ने दो करार सम्पन्न किए।

हत्या तथा मानवीय अपराधों की व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया के उत्तर में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने 15 सितम्बर, 1999 को संकल्प संख्या 1264 पारित किया और पूर्वी तिमोर में बहुराष्ट्रीय शान्ति स्थापना बल तैनात किरने की अनुमति दे दी।

इसके बाद 25 अक्टूबर, 1999 को सुरक्षा परिषद् संकल्प संख्या 1272 (1999) पारित हुआ जिसने पूर्वी तिमोर में संयुक्त राष्ट्र से संक्रमणकालीन प्रशासन की स्थापना की। यह संकल्प यू.एन.टी.ए..ई.टी को पूर्वी तिमोर के प्रशासन की न्यायिक शक्तियों को भी प्रदान करता है।

39 bjkd & संयुक्त राष्ट्र संघ इराक मसले पर एक तरफा कार्रवाई के खिलाफ था। संयुक्त राष्ट्र के सर्वसम्मत प्रस्ताव (नवम्बर, 2002 में पारित प्रस्ताव संख्या 1441) के तहत इराक के जनसंहारी शस्त्रों के जखीरे की जांच चल रही थी। निरीक्षण हैंस ब्लिक्स ने अपनी ताजा रिपोर्ट में कहा था कि इराक सामूहिक विनाश के शस्त्रों को नष्ट कर रहा है और निरीक्षण पूरा होने में कुछ महीने लगे। अभी जांच के वैसे परिणाम नहीं आए थे, जिनसे इराक को कठघरे में खड़ा किया जा सके।

अमरीका संयुक्त राष्ट्रसंघ में अलग–थलग पड़ गया। सुरक्षा परिषद् में प्रस्ताव रखने के लिए आवश्यक नौ वोट भी वह नही जुटा सका। पांच वीटोधारी देशों में तीन अमरीकी कार्यवाही के खिलाफ थे। अमरीका ने बार–बार घोषणा की कि यदि संयुक्त राष्ट्र ने इराक के खिलाफ सैनिक कार्यवाही के उसके प्रस्ताव को मंजूर नहीं किया तो वह अप्रासंगिक हो जाएगा।

सुरक्षा परिषद् में इराक के सन्दर्भ में चली बहस का नाटकीय समापन हुआ, अमरीका ने बहस से बहिर्गन किया। बहस में उठे मुद्दों का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण देना, अमरीका के लिए सम्भव नहीं था।

अमरीका ने संयुक्त राष्ट्र को धता बताते हुए, जिस प्रकार इराक पर आक्रमण किया, उसने यह सिद्ध कर दिया कि अमरीका उन अन्तर्राष्ट्रीय निकायों का सम्मान नहीं करता, जो उसके साम्राज्यवादी मंसूबों के अनुकूल ढलने को तैयार न हों।

वस्तुतः इराक मसले पर संयुक्त राष्ट्र की भूमिका मूक दर्शक बन कर रह गई। अमरीका ने संयुक्त राष्ट्र को दरकिनार कर दिया। इस सन्दर्भ में इसके पूर्व महासचिव बुतरस घाली ने खरी बात कही कि संयुक्त राष्ट्र कुछ बोल पाने में सक्षम नहीं है। अमरीका इसका 'बॉस' है, जब चाहे भुगतान रोक ले।

अमरीका द्वारा इराक के विरुद्ध सैन्य कार्यवाही किए जाने के लगभग 18 माह बाद 15 सितम्बर, 2004 को संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान ने बीबीसी को दिए एक साक्षात्कार में हमले की इस कार्यवाही को अवैध करार दिया। अन्नान ने स्वीकार किया कि अमरीका द्वारा की गई इस सैन्य कार्यवाही से संयुक्त राष्ट्र घोषणा–पत्र का उल्लंघन हुआ है।

40 ycuku e l?k"k fojke & संयुक्त राष्ट्र की पहल पर लेबनान में 14 अगस्त, 2006 को युद्ध विराम लागू हो गया। लेबनान में शान्ति स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने 11 अगस्त को सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव 1701 को मंजूरी दी। लेबनान सरकार और हिज्बुल्ला ने इसे 12 अगस्त को स्वीकार कर लिया और इसके एक दिन बाद इजराइल ने भी इस पर सहमति जता दी।

12 जुलाई, 2006 को हिज्बुल्ला ने इजराइल की सीमा में घुसकर दो इजराइली सैनिकों को अगवा किया, जिसकी प्रतिक्रिया में इजराइल ने दक्षिणी लेबनान पर हमला कर दिया था। दक्षिणी लेबनान पर हिज्बुल्ला का कब्जा है। 33 दिन के युद्ध के बाद लागू युद्ध विराम समझौते के तहत दक्षिणी लेबनान में संयुक्त राष्ट्र की पहल पर शांति सेना की तैनाती की जाएगी।

41- yhfc;k & लीबिया में 41 वर्षों से सत्तारूढ़ राष्ट्रपति कर्नल गद्दाफी के त्यागपत्र की मांग को लेकर विद्रोह पर उतरी जनता के विरुद्ध हिंसक व आक्रामक रूख अपनाने की गद्दाफी की कार्यवाहियों के चलते फरवरी, 2011 में सुरक्षा परिषद ने गद्दाफी शासन के विरुद्ध प्रतिबंध आरोपित किये। सुरक्षा परिषद् ने 19 मार्च, 2011 को लीबिया में सैन्य हस्तक्षेप की अनुमति दी, जिसके तहत् 20 मार्च, 2011 को नाटो की गठबंधन सेना ने वहां हमले शुरू कर दिये।

1-25 l;Dr jk"V dk 'kkfUr LFkkiuk e ;kxnku % eY;kdu

संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वोपरि उद्देश्य है विश्व–शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखना और इसकी मुख्य जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् पर है। यहां पर यह कहना गलत न होगा कि विश्व–शान्ति को खतरे में डालने वाला को भी बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष सभी उभर या पनप सकता है, जब उसे एक या अधिक बड़े राष्ट्रों की सहायता या समर्थन प्राप्त हो। लेकिन ऐसे किसी भी संघर्ष को सुरक्षा परिषद् कैसे रोक या नियन्त्रित कर सकती है, जबकि हर बड़े राष्ट्र अर्थात् अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन को तात्विक या वास्तविक प्रश्नों के निर्णय में निषेधाधिकार (विटो) प्राप्त है?

द्वितीय विश्वयुद्ध के अनन्तर यानि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से 5–6 बड़े संघर्ष या अन्तर्राष्ट्रीय संकट के प्रसंग उत्पन्न हुए हैं– बर्लिन का संकट (1948–49), क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट (1962), हंगरी का संकट (1956), चेकोस्लोवाकिया का संकट (1968) और वियतनाम युद्ध (1968–1973)। हाल के वर्षों में उत्पन्न हुई तीन गम्भीर संकटकालीन स्थितियां हैं : अफगानिस्तान का संकट (1979) पोलैण्ड का संकट (1981–82) और 'ऑपरेशन इराकी फ्रीडम' (मार्च, 2003)। इन सभी में एक–न–एक महाशक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिस्सेदार थी। इसीलए इनमें सुरक्षा परिषद् कोई

असरदार कार्यवाही नहीं कर सकी। मई, 2003 में आखिर सुरक्षा परिषद् ने इराक मसले पर अमरीका के आगे घुटने टेक दिए। इराक पर अमरीका और ब्रिटेन के कब्जे को स्वीकृति दे दी, साथ ही उनके पुनर्निर्माण और शासन व्यवस्था की जिम्मेदारी भी सौंप दी। सिर्फ कोरिया संघर्ष (1950–53) में सुरक्षा परिषद् ने ऐसी कार्यवाही करने का निर्णय किया था। लेकिन जैसा कि सर्वविदित है, सोवियत प्रतिनिधिमण्डल के रहते हुए हांलाकि (उन दिनों वह परिषद् में स्वेच्छा से अनुपस्थित था) यह निर्णय कार्यान्वित होना असम्भव था।

यह सही है कि पिछले 67 वर्षों में कोई महायुद्ध अथवा अमरीका रूस के बीच सीधा फौजी टकराव नहीं हुआ है, लेकिन इसका श्रेय इन दोनों के बीच स्थापित 'नाभिकीय सन्तुलन' और सम्भावित परमाणु युद्ध के भीषण परिणामों के एहसास को है, न कि सुंयुक्त राष्ट्र संघ को।

संयुक्त राष्ट्र संघ की युद्ध निरोधक भूमिका के दन्दर्भ में यह भी याद रखना होगा कि पिछले पांच दशकों में क्षेत्रीय स्तर पर लगभग 150 छोट–बड़े सैन्य संघर्ष हुए है, चन्द उदाहरण हैं–भारत–चीन युद्ध, भारत–पाकिस्तान संघर्ष (चार बार) अरब–इजराईल युद्ध (चार बार), इथियोपिया–सोमालिया संघर्ष वियतनाम–कम्पूचिया संघर्ष, युगाण्डा–तंजानिया संघर्ष और ईरान–इराक युद्ध। इन सबका निपटरार वस्तुतः सम्बद्ध देशों की सीधी वार्ता या दूसरे की मध्यस्थता से हुआ है और उसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की या तो कोई भूमिका नहीं रही या नगण्य रही। विवादों या झगड़ों के शान्तिपूर्ण निपटारे के सिलसिले में भी बहुत कुछ यही स्थिति रही है। भारत के निकटवर्ती दक्षिण एशिया के क्षेत्र को ही लीजिए। इस क्षेत्र में भारत–पाक युद्धों के उपरान्त हुए ताशकंद और शिमला समझौतों के अतिरिक्त तीन बड़े विवादों का समाधान हुआ है–भारत और श्रीलंका के बीच शास्त्री–सिरिमावो समझौता (1964), भारत–पाकिस्तान के बीच कच्छ विवाद का निपटारा (1965–66) और भारत बांग्लादेश के बीच फरक्का समझौता (1977) इसमें से पहले और तीसरे का समाधान सीधी द्विपक्षीय बातचीत से हुआ और कच्छ विवाद का पंच फैसले द्वारा। हां, कश्मीर विवाद कई वर्षों तक सुरक्षा परिषद् की कार्यसूची पर रहा, लेकिन सुलझने के बजाय, उलझता ही गया। हाल ही में पूर्व यूगोस्लाविया (बोस्निया), रवांडा तथा सोमालिया में संयुक्त राष्ट्र को असफलता का मुंह देखना पड़ा और संघ की छवि धूमिल हुई।

उपनिवेशवाद के विघटन के मामले में 14 दिसम्बर, 1960 को संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने 89 मतों से 'उपनिवेशवाद विघटन घोषणा' पारित की। निश्चय ही इस ऐतिहासिक घोषणा के बाद लगभग 50 राष्ट्रों को स्वाधीनता प्राप्त हुई। शायद यह भी स्वीकार करना होगा कि विभिन्न उपनिवशों में स्वाधीनता सेनानियों को इस घोषणा से नया बल और प्रोत्सान मिला। लेकिन जहां तक इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के सीधे व ठोस योगदान का प्रश्न है, औपनिवेशिक समस्याओं के विख्यात अमरीकी विशेषज्ञ रूपर्ट इमरसन का कहना है–''उपनिवेशवाद के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र कोई ठोस कार्यवाही नहीं कर सका है। उपनिवेशवाद विघटन की अधिकांश राजनीति (और कोशिश) संयुक्त राष्ट्र संघ के घेरे में से नहीं गुजरी। प्रायः उपनिवेशवाद विघटन सम्बन्धी सभी कार्यवाहियां उपनिवेश निवासियों के शान्तिपूर्ण या गैर शान्तिपूर्ण प्रयासों (अथवा तज्जनित द्विपक्षीय समझौतों) के फलस्वरूप हुई।''

निःस्त्रीकरण के प्रश्न पर जनवरी, 1946 में लन्दन में हुए महासभा के प्रथम सत्र में विचार–विमर्श हुआ था। उसके बाद प्रायः महासभा के हर वार्षिक सम्मेलन में इस पर विचार होता रहा। इसके अलावा 'आंशिक परीक्षण निरोध सन्धि' (1963) और 'परमाणु अप्रसार सन्धि' (1968) से सम्बंधित विचार–विमर्श में संयुक्त राष्ट्र संघ का सीमित योगदान रहा। लेकिन इन सन्धियों की मुख्य धाराओं पर सहमति महाशक्तियों तथा दूसरे राष्ट्रों की आपसी बातचीत से ही हुई। दोनों 'साल्ट' समझौते (1972 और 1979), आई.एन.एफ सन्धि (1987) एवं स्टार्ट सन्धि (1991) भी अमरीका और सोवियत संघ के बीच सीधी बातचीत फलस्रूप ही हुए।

परन्तु इन सब कमजोरियों के बावजूद यह मानना होगा कि संयुक्त राष्ट्र ने संघर्ष की कई स्थितियों में –जैसे कि कांगो और साइप्रस में–शान्तिरक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसी प्रकार कई अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में –जैसे कि भारत–बांग्लादेश विवाद तथा पश्चिम एशिया संकट में –उसके विचार–विमर्श एवं सलाह–मशविरे के माध्यम से हालात की गहमागहमी को कम करने में 'कूलर' की भूमिका निभायी है। अफगानिस्तान से सोवियत सैनिकों की वापसी के बारे में जेनेवा समझौता (अगस्त, 1988), इराक–ईरान युद्ध विराम समझौता (अगस्त 1988), नामीबिया की स्वतन्त्रता सम्बन्धी समझौता (13 दिसम्बर, 1988) अंगोला से क्यूबाई सैनिकों की वापसी के लिए पर्यवेक्षकों का दल तैनात करना, आदि हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्वपूर्ण उपलब्धियां कही जा सकती हैं। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र की 16 शान्ति सेनाएं विभिन्न क्षेत्रों में तैनात हैं। 1945 से अब तक संघ की देख–रेख में लगभग 172 क्षेत्रीय संघर्षों का निदान शान्तिपूर्ण समझौतों द्वारा किया जा चुका है। अपने 66 वर्ष की कालावधि में कम्बोडिया, नामीबिया, अल साल्वाडोर, मोजाम्बिक जैसे 45 देशों में निष्पक्ष चुनाव करवाकर लोकतन्त्र की स्थापना में संघ ने सहयोग दिया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के तहत् 170 सदस्य देशों में कृषि, उद्योग, शिक्षा और पर्यावरण संरक्षण की लगभग 5000 परियोजनाओं के लिए 1.3 बिलियन डॉलर के बजट द्वारा संघ विकास एवं उन्नयन के कार्य में जुटा हुआ है। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद को समाप्त करने की दिशा में संघ को अभूतपूर्व सफलता मिली है। इसके अलावा, संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय का अपना विशिष्ट वातावरण है। उसके कॉफी हाउसों, लॉउंज और गलियारों में परस्पर विरोधी पक्षों के प्रतिनिधि चाहे–अनचाहे आपस में मिल जाते हैं। इस तरह विरोधियों के बीच संवाद–सम्पर्क पूरी तरह टूटता नहीं है। इन अनौपचारिक सम्पर्क के फलस्वरूप कभी–कभी कुछ शंकाओं का निवारण हो जाता है या तनाव कम हो जाते हैं।

संक्षेप में संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को उग्र होने से रोकने के लिए एक सेफ्टी वाल्व का काम करता है। राल्फ बुन्चे के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख विशेषता यह है कि यह राष्ट्रों को बातचीत में व्यस्त रखता है। वे जितनी अधिक देर तक बात करते रहें, उतना ही अधिक अच्छा है क्योंकि उतने समय युद्ध टल जाता है।

1-26 fl ijh

सिपरी एक जागरूक संस्था है। इसकी स्थापना 1960 के दशक में स्वीडन की संसद द्वारा इस उपलक्ष में की गई थी कि पिछले एक सौ पचास वर्षों में स्वीडन ने किसी युद्ध में भाग नहीं लिया। इसकी स्थापना से लेकर अब तक इसका भरण–पोषण स्वीडन की ससंद द्वारा किया जाता रहा है। इन बातों से ऐसा लगता है कि सिपरी स्वीडन के आन्तरिक मामलों से संबंधित कोई राष्ट्रीय संस्था होगी परन्तु वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। इसकी स्थापना एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। इसकी भाषा अंग्रेजी है तथा इसमें विश्व स्तर को सभी समस्याओं पर कार्य होता है। इसका एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। इसकी भाषा अंग्रेजी है तथा इसमें विश्व स्तर की सभी समस्याओं पर कार्य होता है। इसका एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड है, जिसमें विश्व के अनेक राष्ट्रों के प्रतिनिधि इसके सदस्य हैं। मिश्रित तथ्य यह है कि इस बोर्ड में स्वीडन का मात्र एक प्रतिनिधि होता है, वह भी अध्यक्ष के रूप में। यह बोर्ड अपने निर्णय लेने में सक्षम होता तथा इसके कार्यों में स्वीडन की संसद एवं विदेश विभाग का कोई हस्तक्षेप भी नहीं होता।

संघर्ष, हिंसा के कारण एवं अन्तर्राष्ट्रीय तनाव जैसे विषय सिपरी के शांतिशोध के प्रमुख क्षेत्र हैं। शस्त्र भण्डार, शस्त्र भण्डार, शस्त्र–नियंत्रण एवं निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में सिपरी को विशेष योगदान रहा है। यद्यपि शांति शोध का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है फिर भी इसे कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित रहने के पीछे कारण यही है कि यदि कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है तो शोधकर्ताओं के बीच सूचनाओं एवं प्रतिवादों का

आदान–प्रदान सुचारु रूप से नहीं हो पाता है और उनके शोध कार्यो के ठोस निष्कर्ष निकलने की संभावनाएं भी क्षीणप्रायः हो जाती है। यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि सिपरी के ग्रन्थागार में उपलब्ध पुस्तकें, पाठ्यसामग्री एवं जर्नल्स आदि मात्र उपुर्यक्त विषयों से ही संबंधित हैं। सिपरी द्वारा उपर्युक्त कार्यक्षेत्रों का चुनाव करने के पीछे यह भावना निहित थी कि सकी स्थापना के काल में शस्त्रों की होड. अपनी नरम सीमा पर थी। नित नये अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण एवं उनके भण्डारण का कार्यतीव्रता से चल रहा था। स्वीडन के तत्कालीन निःशस्त्रीकरण मंत्री अलवर मिरडाल का ऐसा मानना था कि उस समय के अन्य अनेक संस्थान इस बात की जानकारी उपलब्ध नहीं करवा पा रहे थे, जिसे जिनेवा शांति वार्ता के लिए आध ाार बनाया जा सके। वे एक ऐसे संस्थान की स्थापना करना चाहती थी, जिससे अध्येता सैन्य बलों को एवं उनके विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न परिणामों को अच्छी तरह से समझते हो तथा दुश्मनों के गंभीर खतरे का हवाला देकर शस्त्रों के गम्भीर एवं विनाशकारी परिणाम संबंधी तथ्य उपलब्ध करवा सकते हों। उन दिनों हालात कुछ ऐसे थे कि एक वर्ग तरह–तरह के तथाकथित दुश्मनों से होने वाले खतरे की बात करके अपनी–अपनी सरकारों के बजट का बड़ा हिस्सा शस्त्र उत्पादन पर लगाने का दबाव दे रहा था। ऐसे में इस वर्गके प्रभावों को निष्फल करने के लिए निःशस्त्रीकरण के पक्ष में तर्कपूर्ण एवं प्रभावकारी ढ़ंग से तथ्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी और यह कार्य सिपरी ने प्रारम्भ किया।

सिपरी का स्पष्ट लक्ष्य है सारे विश्व मे होने वाली सैन्य विकास गतिविधियों का लेखाजोखा रखते हुए उसे रोकने के उपायों पर गहना से विचार करना एवं ऐसे प्रस्ताव सामने लाना, जिससे सैन्य विकास को निरूत्साहित किया जा सके। सिपरी एक ऐसी संस्था है, जो कोई सिद्धान्तों पर नहीं बल्कि तात्कालीन जीवन्त पहलुओं पर अध्ययन एवं शोध करता है। यह एक तटस्थ राष्ट्र में स्थित है तथा इसमें कार्यरत शोध अध्येताओं का चुनाव अलग–अलग राजनीति एवं आर्थिक ढ़ांचे वाले राष्ट्रों से किया जाता है, जो विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों पर निष्पक्ष रूप से वस्तुस्थिति का प्रतिपादन कर सकें और जिनका किसी राष्ट्र या संगठन विशेष के प्रति झुकाव न हो।

सिपरी ने जब 1960 में अपना कार्य प्रारम्भ किया तो शस्त्र नियंत्रण की धारणा विशेषज्ञों के छोटे से समूह तक ही सीमित थी। उनको सिपरी द्वारा प्रकाशित पठन सामग्री भेजी गई। उसके पश्चात् परिस्थितियों में परवर्तन हुआ और अधिकाधिक संख्या में लोग आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों एवं उनके विनाशकारी प्रभावों को समझने लगे और तब सिपरी का दायरा भी बढ़ने लगा। तीन रूपों में प्रकाशित होने वाली "Year Book of World Armament and Disarmament" पुस्तक सिपरी के कार्यों का एक आयाम है। इसकी शोध परियोजनाएं मुख्यतया चार वर्गों में चलायी जाती हैं–

1. सैन्य खर्चे एवं शस्त्र व्यापार का अध्ययन, जिसके अन्तर्गत सारे विश्व में शस्त्र उत्पादन, उसके क्रय–विक्रय के आंकड़ों का अध्ययन किया जाता है।
2. सैन्य टेक्नॉलोजी विशेष रूप से रासायनिक एवं जैविक अस्त्र टेक्नोलॉजी के विकास का अध्ययन।
3. निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियंत्रण कार्यक्रमों का अध्ययन।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आंशिक रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त सैन्य गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभावों का अध्ययन।

विगत 10–15 वर्षों से आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों के उत्पादन, उनके भण्डारण एवं उनके नियंत्रण का मुद्दा सभी अर्न्तर्राष्ट्रीय शांति वार्ताओं का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। विश्व के अन्य अनेक संचार माध्यमों ने इस विषय पर चिन्तनोपरान्त काफी विस्तार से चर्चा की है। इनसे जुड़े सभी पहलुओं पर एक लम्बी बहस चलती रही है। इस बहस का ही परिणाम है कि आज लोग इन आणविक अस्त्र–शस्त्रों के विनाशकारी प्रभावों के प्रति जागरूक हो गये हैं और विश्व के सभी देशों की सरकारों पर इन शस्त्रों को समाप्त करने का दवाब बढ़ता जा रहा है। इस उपलब्धि में सिपरी का योगदान उल्लेखनीय है। इन

परिस्थितियों में सिपरी जैसी संस्थाओं का दायित्व और भी गुरुत्तर हो गया है। उन्हें लोगों तक यह संदेश पहुंचाने का जिम्मा अपने ऊपर लेना होगा कि वर्तमान समय की सबसे प्रमुख आवश्यकता शस्त्र–नियंत्रण एवं आणविक अस्त्र–शस्त्रों को समाप्त करने की है।

vH;kl gsrq iz'u

cgqfodYih; iz'u@,dokD; mÙkj

1. शान्ति स्थापना लीग नामक संस्था का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
2. 1916 में अमरीका का राष्ट्रपति कौन था?
3. राष्ट्र संघ के कितने उद्देश्य हैं?
4. राष्ट्र संघ के अंगों को लिखें।
5. कौर्फू विवाद कब हुआ था?
   (अ) 1923 (ब) 1924 (स) 1925
6. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कब गठित हुआ–
   (अ) 1946 (ब) 1947 (स) 1948
7. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना कब और कहाँ हुई?
8. 1942 में संयुक्त राष्ट्र के प्रारम्भिक सदस्यों की संख्या कितनी थी?
   (अ) 51 (ब) 55 (स) 60
9. UNESCO का पूरा नाम लिखें।
10. सिपरी की स्थापना कब हुई?

y?kqÙkjkRed iz'u

1. राष्ट्र संघ के उद्देश्यों का वर्णन करें।
2. राष्ट्र संघ की असफलता के प्रमुख कारण क्या है?
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का मूल्यांकन करें।
4. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के गठन का वर्णन करें।
5. संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों का वर्णन करें।
6. संयुक्त राष्ट्र का विश्वशांति हेतु योगदान की चर्चा करें।
7. विपरी पर एक लघु टिप्पणी लिखें।

fuca/kkRed iz'u

1. राष्ट्र संघ की स्थापना का इतिहास लिखें।
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एवं अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का मूल्यांकन करें।
3. संयुक्त राष्ट्र स्थापना के इतिहास का वर्णन करें तथा निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में इसके योगदान की चर्चा करें।

bdkbZ&2 ieq[k l?k ds xBu] ;wjksih; l?k] oYMZ VsªM vkxZukbZts'ku] vkfl;ku

lajpuk

2-0 ;wjksih; l?k % iLrkouk

2-1 ,frgkfld fodkl

2-2 efLVªp lfU/k % ,dhÑr ;wjksi dh fn'kk esa ,d dne

2-3 ;wjksih; l?k ds ,frgkfld lafo/kku ij gLrk{kj

2-4 ;wjksih; l?k la/kkj lf/k

2-5 if'pEeh ;wjksi dh lSfud laj{kk

2-6 if'peh ;wjksi ds ,dhdj.k dk iHkko

2-7 iwohZ ;wjksi dk ,dhdj.k

2-8 iwohZ ;wjksi dk lSfud o vkfFkZd ,dhdj.k

2-9 fo'o O;kikj laxBu % iLrkouk

2-10 fo'o O;kikj laxBu % ,frgkfld i"BHkwfe

2-11 fo'o O;kikj laxBu % mís';

2-12 fo'o O;kikj laxBu % lajpuk

2-13 fo'o O;kikj le>kSrk

2-14 fo'o O;kikj laxBu % eY;kadu

2-15 vkfl;ku % iLrkouk

2-16 i"BHkwfe

2-17 vkfl;ku dk fuekZ.k

2-18 vkfl;ku dk mís'; ,oa Lo:i

2-19 vkfl;ku ds dk;Z ,oa Hkwfedk

2-1 ;wjksih; l?k % iLrkouk

यूरोप एक सभ्यता है, एक भौगोलिक इकाई और विचार है। इसे पश्चिमी सभ्यता का हृदय कहा जाता है क्योंकि यहूदीवाद–यूनानी–रोमन–ईसाई परम्पराओं का अभ्युदय यहीं पर हुआ था और जिसका प्रसार यूरोप की सीमाओं से बहुत आगे नई दुनिया, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड तक हुआ था। मानव सभयता के आधुनिक इतिहास में एशिया और अफ्रीका पर यूरोप का प्रभाव अनवरत छाया रहा है। यूरोप का क्षेत्रफल 40 लाख वर्गमील है और यूरोपीयन एशिया सहित जनसंख्या 60 करोड़ से अधिक है। राजनीतिक दृष्टि से महाद्वीप में 47 राष्ट्र राज्य हैं, जिसमें अनेक लुघ राज्य अण्डोर, मोनाको, सेनमेरिनो तथा वेटिकन सिटी जैसे राज्य भी शामिल हैं। सबसे अधिक जनसंख्या वाले तथा प्रभावशाली राज्यों में रूस, जर्मनी, यूनाईटेड किंगडम, फ्रांस, इटली, उक्रेन तथा कजाकिस्तान है। यूरोप के प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में पूर्व यूरोप (रूसी गणराज्य, पोलैण्ड, बायलोरशिया, लिथुआनिया, लाटविया) दक्षिण–पूर्वी

यूरोप (रूमानिया, हंगरी, यूगोस्लाविया, अल्बानिया, बल्गारिया, ग्रीस तथा यूरोपीयन टर्की), स्केण्डेनेवियन देश (नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क तथा फिनलैण्ड), केन्द्रीय यूरोप (जर्मनी, चेक गणराज्य स्लोवाकिया, ऑस्ट्रिया स्विट्जरलैण्ड तथा लिक्टेनस्टेन) पश्चिमी यूरोप (फ्रांस बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स, लक्जमबर्गतथा मोनाको) तथा ब्रिटिश टापू (इंगलैण्ड, उत्तरी आयरलैण्ड, आयरिश गणराज्य) हैं, कतिपय टापू जैसे आइसलैण्ड, माल्टा तथा साइप्रस को भी भौगोलिक और राजनीतिक कारणों से यूरोप के साथ सम्बद्ध माना जाता है। वैचारिक दृष्टि से यूरोप एक विशिष्ट संस्कृति और सभ्यता है, जीवन का एक विशिष्ट प्रकार है, इसी कारण यूरोपीय एकीकरण की विचारधारा के समर्थक कहते हैं कि नस्ल, भाषा और राजनीतिक विविधताओं के बावजूद यूरोप एक है।

2-1 ,frgkfld fodkl

यूरोपीय आर्थिक समुदाय अनेक नामों से जाना जाता है, जैसे, साझा बाजार, यूरोपीय साझा बाजार, 'यूरोपीय संघ' आदि। इसको यूरोपीय आर्थिक समुदाय कहना ही अधिक उचित होगा क्योंकि यही इसका अधिकृत शीर्षक है। आर्थिक समुदाय आर्थिक सहयोग की दृष्टि से केवल महत्वपूर्ण ही नहीं है, वरन् ऐतिहासिक दृष्टि से एक नए मोड़ का सूचक है।

1 जनवरी, 1958 को एक सन्धि द्वारा यूरोपीय आर्थिक समुदाय की स्थापना हुई, प्रारम्भ में इसके छः राष्ट्र–फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स, लक्जमबर्ग, जर्मन संघीय गणराज्य व इटली सदस्य थे। बाद में ब्रिटेन, आयरलैण्ड, डेनमार्क और नार्वे भी सन्धि में शामिल हुए, परन्तु नार्वे उससे हट गया। 1981 में ग्रीस तथा 1986 में स्पेन और पुर्तगाल इसके सदस्य बन गये। जनवरी 1995 में आस्ट्रिया, फिनलैण्ड तथा स्वीडन को यूरोपीय संघ का सदस्य नियुक्त किया गया। इस तरह संघ की सदस्य संख्या 12 से बढ़कर 15 हो गई। मई 2004 में 10 नये राष्ट्रों को शामिल करने के बाद यूरोपीय संघ की सदस्य संख्या 25 हो गई, जिन राज्यों ने संघ की सदस्यता ग्रहण की, वे हैं –हंगरी, चेक गणतंत्र, एस्टोनिया, लाटविया, लिथुआनिया स्लोवेनिया?, पोलैण्ड, स्लोवाकिया, माल्टा तथा साइप्रस जनतंत्र संघ में सम्मिलित होने वाले सात राज्य ऐसे हैं, जो पूर्व में साम्यवाद शासन के अधीन रह चुके हैं। जनवरी 2007 में बल्गारिया और रोमानिया के सदस्या बन जाने से अब संघ की सदस्या संख्या 27 हो गई है।

रोम की सन्धि के राजनीतिक आधार और प्रभाव के होते हुए भी कुछ लोग यह अनुभव करते हैं कि आर्थिक समुदाय शुद्ध आर्थिक ही है। इसका एक उद्देश्य आर्थिक संघ का निर्माण है, जिसके द्वारा सभी सदस्य देशों में रहन–सहन के स्तर में वृद्धि की जा सकती है। ''इस यूरोपीय समुदाय की यह महत्वाकांक्षा थी कि 1992 तक पूरा पश्चिमी यूरोप एक एकात्मक बाजार के रूप में विकसित होगा। राष्ट्रों की वर्तमान सीमाओं को आर्थिक विपणन की दृष्टि से समाप्त कर दिया जाएगा। संयुक्त राज्य अमेरिका की तर्ज पर यूरोपीय साझा बाजार को एक सीमा तक मुक्त एकात्मक बाजार के रूप में परिणत कर दिया जाएगा।'' कुछ लोगों का विचार है कि इससे आर्थिक समुदाय के विषय में सही दृष्टिकोण नहीं बन पाता है। डैन्यू ने सही ही लिखा है कि सामान्य दृष्टि से यह एक आर्थिक सन्धि है लेकिन इसका राजनीतिक पहलू अधिक प्रभावशाली है। हेलिस्टाईन तो इसकी तुलना तीन अवस्था वाले राकेट से करते हैं, जिसमें पहली अवस्था तटकर संघ, दूसरी अवस्था आर्थिक संघ और तीसरी अवस्था राजनीतिक संघ की है। यह कहना तर्कसंगत ही होगा की स्थापना को प्रोत्साहन मिला।

उपर्युक्त कारणों को आर्थिक समुदाय की स्थापना की दृष्टि से प्रोत्साहन कारक कह सकते हैं। लेकिन इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी थे। छः देशों का सामूहिक सीमा और समान आधार पर आर्थिक और सामाजिक विकास हुआ है। राजनीतिक सिद्धान्तों की समानता एक अन्य सहायक कारण

था, इसके अलावा अनेक भावनाएं और उददेश्य थे। यूरोप की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और राष्ट्रीय आधार पर यूरोपीय सभ्यता का पुनर्जागरण सम्भव नहीं है। राजनीतिक स्पर्द्धा से न केवल राष्ट्रीय संकट आते हैं वरन् यह यूरोपीय सभ्यता के लिए भी घातक सिद्ध होनी है। इस प्रकार की कुछ और भी बाातें थीं जिनके कारण आर्थिक समुदाय की स्थापना को बल मिला।

24 मार्च, 1957 को यूरोपीय आर्थिक समुदाय की संधि पर रोम में हस्ताक्षर हुए थे और 1 जनवरी, 1958 से यह सन्धि लागू की गयी। आर्थिक समुदाय का क्षैत्रफल लगभग 45.77 हजार वर्गमील, जनसंख्या 16.76 करोड़ तथा कुल राष्ट्रीय आय 16.41 करोड़ डॉलर थी।

संधि के अनुच्छेद 2 में इसके उद्देश्य निहित हैं। समुदाय के उदेश्य एक साझाा बाजार के निर्माण के माध्यम से तथा आर्थिक नीतियों में समानता के द्वारा पूरे समुदाय में आर्थिक क्रियाओं का समरस विकास, सतत् और सन्तुलित प्रसार, बढ़ता हुआ स्थायित्व तथा रहन–सहन के स्तर में तीव्र वृद्धि और सदस्य देशों में निकट के संबंध स्थापित करना है। 'दि फैक्ट्स' के अनुसार समुदाय के निर्माण के उद्देश्य निम्न हैं–(1) उन सभी विवादों को जिन्होंने यूरोप को विभाजित कर रखा था, सदैव के लिए समाप्त कर देना। (2) यूरोप की प्रतिष्ठा को स्थापित करने और आर्थिक शक्ति तथा सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल भूमिका अदा करना। (3) संयुक्त कार्यवाही के द्वारा यूरोप के लोगों के कार्य करने की स्थिति और रहन–सहन के स्तर पर सुधार (4) अव्यावहारिक और पुराने व्यवधानों को जिनके फलस्वरूप यूरोप छोटे–छोटे बाजारों में विभाजित था, समाप्त करना। 5. तकनीकी विकास के साथ बड़े पैमाने के उत्पादन को अधिकांश उद्योगों में लागू करना। (6) एक भावी यूरोप के संयुक्त राष्ट्रों का आधार प्रस्तुत करना।

सन्धि के अनुच्छेद 3 में समुदाय की क्रियाओं का वर्णन है। इसके अनुसार सन्धि की शर्तों और समयावधि के अन्तर्गत

निम्न प्रमुख कार्य होंगे–(1) सदस्य देशों में वस्तुओं के आयात एवं निर्यात से तटकर शुल्क और मात्रात्मक प्रतिबन्धों को समाप्त करना। इनके अतिरिक्त अन्य व्यवधानों को भी समाप्त करना। (2) गैर–सदस्यों के प्रति एक सामान्य तटकर तथा एक सामान्य व्यापारिक नीति अपनाना। (3) सदस्य देशों के अन्तर्गत व्यक्ति, सेवा एवं पूंजी की गतशीलता सम्बन्धी कठिनाई और व्यवधानों को समाप्त करना। (4) एक सामान्य कृषि नीति को अपनाना। (5) एक सामान्य यातायात नीति को अपनाना। (6) एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना, जिसके कारण साझा बाजार में स्पर्द्धा का स्वरूप विकृत न हो। (7) उन व्यवस्थाओं को अपनाना, जिनके द्वारा सदस्यों की आर्थिक नीतियों में समन्वय हो सके तथा भुगतान असन्तुतन को दूर किया जा सके।

सन्धि के अनुच्छेत 4 के अनुसार समुदाय के निम्न संगठन हैं – महासभा, परिषद्, आयोग तथा न्याय सभा। महासभा के सदस्य समुदाय के सदस्यों के प्रतिनिधि हैं। इसमें कोयला और इस्पात समुदाय, परमाणु शक्ति समुदाय तथा आर्थिक समुदाय के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। परिषद् में सभी सदस्य देशों के एक–एक प्रतिनिधी रहते हैं। प्रत्येक सदस्य सरकार अपने प्रतिनिधि की नियुक्ति करती है। यह समुदाय का मुख्य कार्यकारी अंग है और सदस्य देशों की आर्थिक नीतियों में समन्वय करता है। आयोग, समुदाय का सबसे महत्वपूर्ण प्रशासकीय अंग है। न्याय सभा के सात सदस्य होते हैं, जो सन्धि की व्याख्या करते हैं।

1 जनवरी 1983 से डेनमार्क, ग्रीस, आयरलैण्ड तथा इंग्लैण्ड भी आर्थिक समुदाय के सदस्य हो गए। अब इसका क्षैत्रफल 5 लाख 91 हजार वर्गमील हो गया। कुल जनसंख्या बढकर 22.3 करोड़ हो गयी, जो रूस या अमरीका की जनसंख्या से अधिक है। विश्व का यह एक प्रमुख आयात तथा निर्यात करने वाला समुदाय है। यद्यपि यह 'सुपर पावर' नहीं है, फिर भी इसकी आर्थिक शक्ति के कारण इसका प्रभाव बहुत अधिक है।

1948 में आर्थिक समुदाय के देशों का विश्व व्यापार में विशेष महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। विश्व आयात तथा निर्यात में इसका प्रतिशत केवल 17.5 तथा 12.1 था। समुदाय की स्थापना के समय यह बढकर 22.3 तथा 23.9 हो गया था। समुदाय की स्थापना के साथ ही विदेशी व्यापार में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। इस वृद्धि का अनुमान इसी से हो सकता है कि विश्व व्यापार में समुदाय का प्रतिशत बढता ही गया। 1965 में समुदाय के आयात तथा निर्यात 1958 की तुलना में दुगुने से अधिक हो गऐ थे। विश्व के आयात तथा निर्ाात में क्रमशः इनका प्रतिशत 28 तथा 29 था। 1968 के बाद के आंकड़ों में 'ए' सदस्यों का व्यापार भी सम्मिलित है। अब विश्व व्यापार में आर्थिक समुदाय विश्व में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह उल्लेखनीय है कि 1948 में आर्थिक समुदाय के कुल व्यापार का प्रतिशत विकासोन्मुख देशों से कम था और अब इनका व्यापार विकासोन्मुख देशों से कहीं अधिक हो चुका है।

आर्थिक समुदाय के सदस्यों के मध्य आन्तरिक व्यापार कर–मुक्त हो गया है। इसके अतिरिक्त, आर्थिक समुदाय में श्रम, पूंजी एवं सेवाओं की आन्तरिक गतिशीलता में काफी वृद्धि हुई है। समुदाय का कोई भी व्यक्ति किसी भी देश में बिना किसी भेदभाव के रोजगार प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार पूंजी–प्रवाह पर से भी प्रतिबन्ध हटा लिए गए हैं।

सन् 1983 में यूरोपीय समुदाय की स्थापना को 25 वर्ष पूरे हुए। इन 25 वर्षो में समुदाय की मुख्य सफलताओं की चर्चा करते हुए साझा बाजार आयोग के अध्यक्ष गैस्टन थोर्न ने कहा, ''पहली सफलता तो यही है कि फ्रांस और जर्मनी के बीच वास्तव में फिर मैत्री स्थापित हो गयी है। आज के पश्चिमी यूरोप में न केवल युद्ध जैसी कोई बात ही उठती है, अपितु समुदाय के सदस्य देशों के बीच किसी युद्ध की कल्पना भी कठिन है। दूसरी सफलता यह है कि छिन्न–विच्छिन्न यूरोप में आज हम एक अपेक्षाकृत एकीकृत क्षेत्र, एक ऐसी संयुक्त मण्डी बना पाए हैं, जिसमें लगभग 30 करोड़ व्यक्ति रहते हैं। इन्हें व्यापार में एकाधिकारवाद विरोधी नीति का लाभ भी मिल रहा है। हमने कृषि और विकास के लिए समान नीतियों और विनियोजित कार्यक्रमों की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है। इन बुनियादी कामों के अलावा अब हमने संसार के अन्य देशों के प्रति अपनी साझा व्यापार नीति अपनाने और अपने लिए एक यूरो'–मुद्रा प्रणाली शुरू करने के क्षेत्र में भी कदम बढाए हैं। राजनीतिक सहयोग के क्षेत्र में भी पिछले दस–बारह वर्षों में विदेश नीति सहित सभी प्रकार के मामलों में सदस्य देशों की सरकारों के बीच पहले की अपेक्षा अधिक निकट सहयोग रहा है। हमें यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि अन्य देश भी यूरोपीय आर्थिक समुदाय के प्रति आकृष्ट होते जा रहे हैं। हमारा संगठन एक तरह से लोकतन्त्रीय आदर्श का प्रतीक बन गया है।''

2-2 efLVªp lfU/k % ,dhd`r ;wjksi dh fn'kk esa ,d dne

20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक ने निश्चय ही एक युगान्तकारी संक्रमण को रेखांकित किया। यूरोप के इहितास व भूगोल एक निर्णायक करवट लेने लगे। सोवियत संघ के अवसान के साथ यूरोपीय संघ उद्‌भव की प्रक्रिया में परिलक्षित हुआ। 11 दिसम्बर, 1991 को नीदरलैण्ड्स के मेस्ट्रिच नगर में 12 सदस्यीय यूरोपीय समुदाय ने यूरोपीय मौद्रिक संघ के अनुबन्ध पर सभी सदस्य देशों के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए, जिसके तहत इन देशों में समान मुद्रा का चलन होगा। साथ ही इस सन्धि में यह प्रावधान भी किया गया कि सदस्य देश एकसमान श्रमिक कानून लागू करेंगे। सन्धि के अनुसार समान मुद्रा के साथ–साथ 1 जनवारी, 1999 तक एक यूरोपीय केन्द्रीय बैंक की स्थापना भी की जाएगी। सन्धि में घनिष्ठ सहयोग के लिए यूरोपीय संघ की स्थापना का प्रावधान है।

1 जनवरी, 1999 से यूरो की औपचारिक शुरूआत एक ऐतिहासिक घटना है। बारह मुद्राओं को संयुक्त कर एक मुद्रा का रूप देना कई तरह से विलक्षण है। 1 जनवरी, 2002 से यूरोपीय संघ के 15

में से 12 सदस्य देशों ने अपने यहां साझा मुद्रा यूरो का चलन किया। इस दिन यूरोपीय आर्थिक और मौद्रिक संघ के 12 देशों ने अपनी–अपनी मुदाओं को संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने के लिए भेजते हुए, साझा मुद्रा यूरो को व्यावहारिक रूप से अपना लिया। यूरोपीय संघ के दो अन्य देश – माल्टा व साइप्रस ने भी 1 जनवरी, 2008 से यूरोपी की एकीकृत मुद्रा–यूरोप को अपना लिया, जिससे यूरो मुद्रा वाले देशों की कुल संख्या अब 15 हो गई है। साझा मुद्रा के चलन से यूरोपीय एकीकरण की प्रक्रिया नये सिरे से निखरी।

uhl f'k[kj dk ifj.kke

यूरोपीय संघ के 15 सदस्य राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों और सरकारों के प्रमुखों की यूरोपीय समिति का शिखर सम्मेलन फ्रांस स्थित नीस में 4 दिन के वार्तालाप के बाद 11 दिसम्बर 2000 को समाप्त हुआ। यूरोपीय संघ के इतिहास में यह अब तक का सबसे विशाल शिखर सम्मेलन था।

यूरोपीय संघ के विस्तार की प्रक्रिया में 16 अप्रैल, 2003 को एथेंस में यूरोपीय संघ में शामिल होने के लिए 10 नए राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए। इनमें से अधिकतर पूर्व साम्यवादी देश हैं। पोलैण्ड, हंगरी, स्लोवेनिया, लिथुआनिया, चेक गणराज्य, एस्तोनिया, लाटविया साइप्रस और माल्टा मई, 2004 में यूरोपीय संघ के विधिवत् सदस्य बन गए। इस विस्तार के बाद की सदस्य संख्या 25 और जनसंख्या 45 करोड़ हो गयी है। 11.5 बिलियन डॉलर से अधिक के घरेलू उत्पाद के आकार वाला यूरोपीय संघ प्रतिवर्ष 5 बिलियन डॉलर से अधिक का आयात करता है। इस प्रकार आकार की दृष्टि से यह समूह संयुक्त राज्य अमरीका से भी बड़ा है। यूरोपीय संघ के 15 देशों द्वारा 'यूरो' के रूप में सामूहिक मुद्रा अपना लिए जाने से इन क्षेत्र के लगभग सभी बड़े देश (ब्रिटेन को छोड़कर) अब एक–दूसरे के साथ अधिक नजदीक हैं।

नए सदस्य कुछ कठिनाइयां लेकर आये हैं। वे देश आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर हैं, इन देशों की गरीबी का भार यूरोपीय संघ को उठाना पड़ेगा। अभी तक ब्रिटेन और स्वीडन 'यूरो मुद्रा संघ' के सदस्य नहीं बने हैं। इस मुद्दे पर यूरोपीय संघ के टूट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया था, इसीलिए 'यूरोपीय मुद्रा संघ' की सदस्यता को अनिवार्य नहीं वरन् स्वैच्छिक बनाया गया। यूरोपीय रक्षा शक्ति का गठन तथा नाटो के साथ इसके सम्बंधों को परिभाषित करना पुनः एक कठिन एंव संवेदनशील मुद्दा है।

नीस शिखर वार्ता का एक लक्ष्य था–मत शक्ति का युक्तिसंगत पुनिर्निर्धारण तथा मतदान प्रक्रिया का सरलीकरण। मतशक्ति का युक्तिसंगत पुनर्निर्धारण सम्भव नहीं हुआ तथा न सरलीकरण हो पाया। जर्मनी को जनसंख्याधारित मतशक्ति प्राप्त नहीं हुई, फ्रांस इसमें सबसे बड़ी बाधा बना। इस समय इस संघ का मुख्यालय ब्रूसेल्स (बेल्जियम) में है और यूनान इसका वर्तमान अध्यक्ष है। जनवरी, 2007 में रोमानिया और बुल्गारिया को भी यूरोपीय संघ की सदस्यता प्रदान कर दी गई, जिससे यूरोपीय संघ के सदस्यों की संख्या 27 हो गयी।

2-3 ;wjksih; la?k dk ,frgkfld lafo/kku ij gLrk{kj

29 अक्टूबर, 2004 को 25 सदस्यी यूरोपीय संघ के पहले संविधान के मसौदे पर यूरोप के राजनेताओं ने हस्ताक्षर किये। इस संविधान पर रोक के कैपिटोलाईन हिल स्थित उसी ऐतिहासिक कैपीटल हॉल में हस्ताक्षर किये जहां 1957 में 6 देशों ने यूरोपीय समुदाय की स्थापना संबंधी संधि पर हस्ताक्षर किये थे।

यूरोपीय संघ के 25 सदस्य राष्ट्रों के अतिरिक्त चार अन्य राष्ट्रों – रूमानिया, बुल्गारिया, टर्की व क्रोशिय के नेता भी इस समारोह में उपस्थित थे। ये चारों राष्ट्र यूरोपीय संघ की सदस्यता के दावेदार हैं। तथापि जनवरी, 2007 में बुल्गारिया और रोमानिया को ही सदस्यता प्रदान की गई। संविधान को

सदस्य राष्ट्रों की संसदों के अनुमोदन के पश्चात् सन् 2007 तक लागू करने की योजना थी। किन्तु यूरोप की राजनीतिक एकता के मार्ग में एक बड़ा अवरोध 29 मई, 2005 को उस समय उत्पन्न हुआ जब यूरोपीय संघ के संविधान को जनमत संग्रह में फ्रांस की जनता ने ठुकरा दिया। इसके बाद नीदरलैण्ड्स की जनता ने भी 1 जून, 2005 को आयोजित जनमत संग्रह में संविधान का अनुमोदन नहीं किया। उल्लेखनीय है कि फ्रांस और नीदरलैण्ड्स की यूरोपीय संघ में अग्रणी भूमिका है। वहां की जनता द्वारा संघ के संविधान का अस्वीकार करना सबसे कठिन घड़ी यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने माना। जून, 2005 के अन्त तक यूरोपीय संघ के 10 सदस्य देश इसके संविधान का अनुमोदन कर चुके थे।

2-4 ;jkih; l?k l/kkj lf/k

13 दिसम्बर, 2007 को 27 सदस्यीय यूरोपीय संघ के सदस्यों ने संघ की निर्णय प्रक्रिया सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण संधि पर लिस्बन में हस्ताक्षर किये। लिस्बन संधि के नाम से चर्चित यह ऐतिहासिक यूरोपीय संघ सुधार संधि संघ के उस प्रस्तावित संविधान के स्थान पर लाई गई, जिसे फ्रांस व नीदरलैण्ड में 2005 में जनमत संग्रह में खारिज कर दिया गया था। यह संधि 1 दिसम्बर 2009, से लागू हो गई है।

लिस्बन संधि में 6–6 माह की चक्रीय अध्यक्षता के स्थान पर 2.5–2.5 वर्ष के कार्यकाल वाले अध्यक्ष का प्रावधान किया गया है। यूरोपीय संसद में सदस्य राष्ट्रों को मतों का आवंटन अब इन राष्ट्रों की जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा। सदस्य राष्ट्रों की साझा विदेश नीति एंव सुरक्षा नीति सुनिश्चित करने के लिए विदेशी मामलों के प्रमुख का पद अधिक प्रभावी करने का प्रावधान संधि में किया गया है। यूरोपीय संघ की कार्यकारिणी–यूरोपीय आयोग में सदस्यों की संख्या 27 से घटाकर 17 करने तथा आयोग में सदस्यों का चुनाव 5–5 वर्ष के कार्यकाल हेतु चक्रक्रमानुसार करने का प्रावधान इसमें किया गया है।

fu"d"k

चर्चिल एक स्वप्निल मुहावरे का प्रयोग किया करते थे, वह मुहावरा था – 'संयुक्त राज्य यूरोप'। यह मुहावरा अभी स्वप्न ही है, किन्तु इसके बीज क्रमशः प्रकट हो रहे हैं। चर्चिल ने ही विवेचन भी किया था कि हम संयुक्त राज्य यूरोप नाम की कोई 'मशीन' नहीं बनाना चाहते वरन् हम एक 'पौधे' के समान क्रमशः विकसित होना चाहते हैं।

इस विकास क्रम को हम सहज ही देख सकते हैं। पांचवें दशक में बना यूरोपीय समुदाय, पड़ोसियों के साथ एक सद्व्यवहारी 'आर्थिक क्लब' से अधिक कुछ नहीं था, 1985 में वह एक साझा बाजार के रूप में आकारित हुआ। 6 वर्षों की सुदीर्घ बहस के बाद 11 दिसम्बर, 1991 को मेस्ट्रिच में मुद्रा संघ बनने के अनुबन्ध तक पहुंचा।

जब यूरो मुद्रा पूरी तरह प्रभाव में आ जाएगी, तब यूरोपीय अर्थव्यवस्था का प्रकार गुणात्मक रूप से बदल जाएगा। 'एक मुद्रा' एवं 'साझा सुरक्षा' पर आम सहमति किसी–न–किसी केन्द्रीय सत्ता का निर्माण करेगी। बिना सत्ता के पूरे यूरोपीय महाद्वीप में एक मुद्रा का नियमन सम्भव नहीं रहेगा। 'साझा सुरक्षा' पर आम सहमति नाटो के अस्तित्व को चुनौती दे रही है। 21वीं शताब्दी का द्वितीय दशक यूरोप के लिए निर्णायक संक्रान्ति का काल है।

2-5 if'peh ;jki dh lfud lj{kk

पश्चिमी यूरोप की सैनिक सुरक्षा की समस्या अत्यन्त पेचीदी रही है। पश्चिमी यूरोपीय देशों की सुरक्षा का आधार सोवियत संघ और उनके मध्य अमरीकी फौजों की उपस्थिति एवं अमरीकी आश्वासन

रहे हैं। फ्रासीसियों का यह मानना है कि सोवियत आक्रमण के समय अमरीकी आश्वासन अविश्वसनीय सिद्ध हो सके हैं, इसलिए यूरोपियन सुरक्षा के लिए यूरोपियन देशों को स्वयं आत्म–निर्भर होना चाहिए। शीत–युद्ध के आतंक ने पश्चिमी यूरोप के देशों को एकीकृत सुरक्षात्मक प्रयत्नों की आवश्यकता महसूस करायी थी, जिससे सैन्य सन्धियों का जाल–सा बिछ गया। द्वितीय महायुद्ध के बाद पश्चिमी याूरोप की सैनिक सुरक्षा की दृष्टि से अग्रलिखित संगठन प्रमुख रहे :–

1- Mddl lfU/k ¼**Dunkirk Treaty**½& यह ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के मध्य 4 मार्च, 1947 को 50 वर्ष के लिए की गयी थी। यह जर्मन आक्रमण के विरुद्ध एक–दूसरे की सहायता करने की सैनिक सन्धि है। ब्रिटेन तथा फ्रांस ने यह निश्चय किया कि जर्मनी द्वारा आक्रमण करने पर, जर्मन द्वारा आक्रमण को प्रोत्साहित करने की नीति स्वीकार करने पर एवं संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जर्मनी के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही न करने पर दोनों देश एक दूसरे को सैनिक तथा अन्य प्रकार की सहायता उपलब्ध करेंगे। इस सन्धि के द्वारा दोनों ही देशों ने एक–दूसरे को यह भी आश्वासन दिया है कि वे दोनों एक–दूसरे को निरन्तर आर्थिक सहयोग तथा सहायता करेंगे।

2- cqlYl lfU/k ¼**Brussels Treaty**½& पश्चिमी यूरोप में सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, फ्रांस, लक्जमबर्ग और हॉलैण्ड ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सहयोग और सामूहिक सुरक्षा की इस सन्धि पर बेल्जियम नगर में हस्ताक्षर किए। इस सन्धि का मुख्य ध्येय नागरिकों के मूलभूत अधिकारों में विश्वास की पुष्टि, संयुक्त राष्ट्र के आदर्शों का पालन, जनतन्त्र एवं स्वतन्त्रता को स्थायी बनाए रखने की दिशा में प्रयत्न, आपसी आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों की स्थापना, यूरोपीयन आर्थिक पुनर्गठन में सहायेग देना, आक्रामक युद्ध के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा में सहयोग देना है। इस संन्धि की चौथी धारा में कहा गया है कि इस पर हस्ताक्षर करने वालों में से किसी देश पर यदि यूरोप में सैनिक आक्रमण होता है तो अन्य देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 51 के अनुसार अपनी सम्पूर्ण सैनिक तथा अन्य सहायता आक्रमण का शिकार बने देश को प्रदान करेंगे।

ब्रुसेल्स सन्धि का सर्वोच्च अंग एक परामर्शदात्री परिषद् है जो पांचों सदस्य राज्यों के विदेश मन्त्रियों से मिलकर बनी है। इस सुरक्षा संगठन के दो अंग हैं–उच्चतर निर्देशन तथा कमाण्ड संगठन। आर्थिक कार्यों के नियोजन के लिए एक वित्त तथा अर्थ समिति है। 1954 के पेरिस के समझौतों से पश्चिमी जर्मनी और इटली भी इसमें सम्मिलित हो गए और इस संगठन का नया नाम पश्चिमी यूरोपियन संघ रखा गया।

3- ukVk & ¼**The North Atlantic Treaty Organization-NATO**½ & नाटो संगठन का जन्म दो आशंकाओं से हुआ है–सोवियत साम्राज्यवाद का भय और सोवियत आक्रमण के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ से पर्याप्त सुरक्षा न पा सकने की सम्भावना। पश्चिमी यूरोप में सोवियत संघ के आक्रमण को रोकने के उद्देश्य से 4 अप्रैल, 1949 को वाशिंगटन में उत्तर एटलाण्टिक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। यह संगठन 1948 में बनाए गए बेनीलक्स नामक उस समझौते का ही विकसित रूप था, जिसमें बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स व लक्जबर्ग सम्मिलित थे तथा बाद में जिसमें इंग्लैण्ड और फ्रांस भी सम्मिलित हो गए थे। आजकल नाटो गुट में कुल मिलकार 28 देश हैं– बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, आइस, इटली, लक्जमबर्ग, हॉलैण्ड, नार्वे, पुर्तगाल, ब्रिटेन, और अमरीका (ये 12 देश मूल गुट के सदस्य थे, जिन्होंने 4 अप्रैल, 1949 को वाशिंगटन में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए)। यूनान व तुर्की 1952 में शामिल हुए, 1974 में साइप्रस के मुद्दे को लेकर यूनान ने नाटो की सदस्याता छोड दी लेकिन अक्टूबर, 1980 में वह पुनः उसमें शामिल हो गया और पश्चिमी जर्मनी 1954 में शामिल हुआ। 30 मई, 1981 को स्पेन नाटो का 16वां सदस्य बन गया। 1990 में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण के बाद एकीकृत जर्मनी को

इसकी सदस्यता मिल गई। 1997 में हंगरी, पौलेण्ड एवं चेक गणराज्यों को नाटो का सदस्य बना लिया गया। परिणामतः नाटो की सदस्य संख्या 19 हो गई। 7 मार्च, 2004 को रूमानिया, बुल्गारिया, स्लोवाकिया, लिथुआनिया, लाटविया, स्टोनिया और स्लोवेनिया की सदस्यता ग्रहण करने के साथ ही नाटो की सदस्य संख्या 19 से बढ़कर 26 हो गई। नाटो की 60वीं वर्षगांठ पर आयोजित फ्रांस के स्ट्रासबर्ग शिखर सम्मेलन में (4 अप्रैल, 2009) दो नए सदस्यों अल्बानिया व क्रोएशिया ने पहली बार पूर्ण सदस्य की हैसियत से भाग लिया। इन्हें मिलाकर नाटो की कुल सदस्य संख्या अब 28 हो गई है। इसके अतिरिक्त फ्रांस की भी पूर्ण सदस्य के रूप में नाटो में वापसी स्ट्रासबर्ग शिखर सम्मेलन में हुई। मई, 2002 में एक महत्वपूर्ण घटना तब घटी, जब अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी रूस को नाटो में प्रमुख सहायोगी का दर्जा दिया। भारत और पाकिस्तान को भी पार्टनरशि फार पीस (PFP) का दर्जा देने की कवायद हो रही है। कतर, जार्डन, मिस्र, ट्यूनीशिया जैसे देश भी नाटो की ओर मुखातिब हैं। नाटो का मुख्यालय बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स में हैं तथा जार्ज रॉबर्टसन (यू.के.) इसके वर्तमान महासचिव हैं।

इस सन्धि संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं : (1) सोवियत संघ अथवा अन्य साम्यवादी देशों द्वारा आक्रमण किए जाने पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से अपनी रक्षा करना, (2) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार पारस्परिक विवादों का शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करना तथा (3) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति सम्बन्धी विवादों को दूर करना और पारस्परिक आर्थिक नीति को प्रोत्साहन देना।

इस सन्धि के पांचवें अनुच्छेद में कहा गया है कि ''यूरोप या उत्तरी अमरीका पर या इनके किसी प्रदेश पर आक्रमण सभी सदस्य देशों पर आक्रमण समझा जायेगा और ऐसी स्थिति में सभी सदस्य राष्ट्र उत्तरी अटलाण्टिक क्षेत्र में शान्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक समझी जाने वाली कार्यवाही करेंगे, जिसमें सशस्त्र बल का प्रयोग भी शामिल है।'' सन्धि के अनुच्छेद 3 के अनुसार, ''इस सन्धि के उद्देश्यों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए, सदस्य राष्ट्र निरन्तर आत्म–निर्भरता तथा पारस्परिक सहायता द्वारा, अलग–अलग और संयुक्त रूप से सशस्त्र आक्रमण का प्रतिरोध करने के उद्देश्य से अपनी व्यक्तिगत एवं सामूहिक क्षमता को बनाए रखने और उसे विकसित करने का प्रयत्न करेंगे।'' इसकी अन्य धाराओं में सन्धिकर्ताओं ने आर्थिक सहयोग का (धारा 2 में) वर्णन किया है। यह सन्धि 20 वर्ष के लिए है (धारा 13) और इसमें बाद में अन्य राज्यों के सम्मिलित होने की व्यवस्था भी है (धारा 10)। इस सन्धि के दायित्व इतने स्पष्ट हैं कि आक्रमण की दशा में प्रत्येक सदस्य को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता है। नाटो के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य एक कड़ी के रूप में जुड़ गया है। सबसे महत्वपूर्ण संस्था तो सर्वोच्च परिषद् है, जो इन समस्त राज्यों की ओर से स्वतन्त्र और अन्तिम निर्णय ले सकती है।

'ylpj के अनुसार नाटो सन्धि के तीन मनोवैज्ञानिक प्रभाव हैं – iFke] यह सोवियत संघ को चेतावनी थी कि यदि उसने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले किसी देश पर आक्रमण किया तो संयुक्त राष्ट्रसंघ अमरीका एक तटस्थ निरीक्षक मात्र नहीं रहेगा और तत्काल ही इन देशों को सहायता देगा। f}rh;] अपने मूल रूप में इस सन्धि द्वारा द्वितीय महायुद्ध से जीर्ण–शीर्ण यूरोपीय देशों को सैन्य सुरक्षा का आश्वासन देकर अमरीका ने इन देशों को ऐसा सुरक्षा क्षेत्र प्रदान किया है, जिसके नीचे वे निर्भय होकर अपनी आर्थिक और सैनिक विकास कार्यक्रम को पूरा कर सकते हैं। r`rh;, इस सन्धि का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव संयुक्त राज्य अमरीका के नागरिकों के लिए है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने दीर्घकाल तक पृथक्करण की नीति का पालन किया है तथा पिछले दोनों महायुद्धों में भी वह पहले तटस्थ रहा था। इस सन्धि का सक्रिय सदस्य होने के नाते अमेरीका को एकदम युद्ध में भाग लेने के लिए उद्यत रहना होगा'।

ukVks संगठन की सर्वोच्च सत्ता कौंसिल में सन्निहित है। इसकी वर्ष में दो या तीन बार बैठकें होती हैं, जिनमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का कोई उपयुक्त मंत्री भाग लेता है। साधारणतः, भाग लेने वाले

मन्त्रियों का सम्बन्ध या तो उनके देश के विदेश मन्त्रालय से होता है या रक्षा मन्त्रालय से! इसका प्रमुख कार्यालय पेरिस में स्थित है। इसके सभापति प्रतिवर्ष बारी–बारी से विभिन्न देशों के मन्त्री होते हैं। इस संगठन का महामंत्री कौंसिल का उपाध्यक्ष भी होता है और वह स्थायी प्रतिनिधियों की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है।

1952 में एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय की भी स्थापना की गयी, जिसका एक मुख्य सचिव होता है। मुख्य सचिव की नियुक्ति कौंसिल के द्वारा होती है और वह अपने कार्यों के लिए इसी के प्रति उत्तरदायी है। ब्रिटेन के लॉर्ड इस्मे इस संगठन के प्रथम महामंत्री हुए।

पिछले छः दशकों से नाटो पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा व्यवस्था की एक सुदृढ़ इकाई रहा है। पूर्वी यूरोप में वारसा सन्धि संगठन की उपस्थिति ने उसकी अहमियत को कभी कम नहीं होने दिया। पिछले कुछ वर्षों से यह अहसास जरूर हुआ था कि नाटो के सदस्य राष्ट्र अपना–अपना राग अलापने लगे थे, हाल ही में फ्रांस ने नाटो के 29 वर्ष पुराने सैनिक बहिष्कार को समाप्त करने का निश्चय किया और वह बोस्निया में नाटो सेनाओं को अपना अंशदान देने के लिए तैयार हो गया था। 1966 में तत्कालीन फ्रेंच राष्ट्रपति चार्ल्स द गाल ने फ्रांस को नाटो की सैनिक कमान से अलग कर लिया था।

अमेरीका ने पूर्वी यूरोप के तीन देशों–पोलैण्ड, हंगरी और चेक गणतंत्र को नाटो में शामिल कर लिया है। ये तीनों राष्ट्र शीत युद्ध के दौरान सोवियत संघ के प्रभाव क्षेत्र में थे। रूस इस विचार का विरोधी है। अप्रैल 1997 में हेलसिंकी शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति क्लिंटन ने रूसी नेता येल्तसिन को मनाने का प्रयास किया पर विफल रहे। रूस नाटो के विस्तार को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा समझता है। चेक, पोलैण्ड और हंगरी के नाटो में शामिल हो जाने से इस संगठन की सीमा रूस की सीमा को छूने लगी है। रूस इसे अपनी पश्चिम द्वारा घेराबंदी समझता है। पूर्व सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव के अनुसार ''नाटो के पूर्व की और फैलाव के बड़े गंभीर परिणाम निकल सकते हैं और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी देशों की यह पहली बड़ी भूल है।'' पश्चिमी समीक्षक भी स्वीकार करते हैं कि नाटो के विस्तार का मतलब है कि सैनिक संतुलन रूस के प्रतिकूल हो जाए।

यूगोस्लाविया के सन्दर्भ में अमरीका ने जिस तरह से नाटो का झौक दिया, अनेक नाटो देश भी इसे गलत मानते हैं लेकिन आंग्ल–अमरीकी गठबन्धन के सामने उनकी बोलने की हिम्मत नहीं हुई। यूगोस्लाविया गृह–युद्ध को समाप्त करना, बोस्निया में सैनिक अभियान चलाना, कोसोवो में जातीय नरसंहार को रोकना, नाटो की वे उपलब्धियां गिनाई गयी है, जो बर्लिन की दीवार गिरने के बाद हासिल की गई थीं।

24 से 26 अप्रैल, 1999 को वाशिंगटन में नाटो की 50वीं वर्षगांठ मनाने के लिए 19 औपचारिक सदस्यों के साथ–साथ 23 देशों ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन में सबसे खतरनाक प्रस्ताव था–नवीन युद्धनीति अवधारणा (New Strategic Concept)। नवीन युद्धनीति अवधारणा के आधार पर अब नाटो विश्व में कहीं भी युद्ध का डंका बजा सकता है।

फरवरी, 2011 के अन्त में नाटो के निर्देशन में विश्व के विभिन्न भागों में निम्नांकित चार मिशन कार्यरत थे–प्रथम, सबसे पुराना सैनिक मिशन 'ऑपरेशन एक्टिव, एण्डीवर' है, जो सितम्बर, 2001 से भूमध्यसागर व आस–पास के क्षेत्रों में आंतकवादी गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए चलाया जा रहा है। दूसरा, प्रमुख व सबसे बड़ा सैनिक मिशन अप्रैल, 2003 से अफगानिस्तान में संचालित है। नाटो के निर्देशन में गठित अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा सहायता सेना वर्तमान में अफगानिस्तान में तैनात है। इस मिशन का उद्देश्य अफगानिस्तान में तालिबान आतंकवादियों का सफाया कर, वहां राजनीतिक स्थिरता व प्रजातंत्र की स्थापना करना है। तीसरा, मिशन जून, 1999 से संचालित कोसोवो शान्ति मिशन है, जो संयुक्त राष्ट्र की अनुमति से संचालित है। इसका प्रमुख उद्देश्य नए स्वतन्त्र व नाटो

के सदस्य राज्य कोसोवो को सुरक्षा प्रदान करना है। चतुर्थ, वर्तमान में संचालित चौथा मिशन अगस्त, 2009 से अदन की खाड़ी क्षेत्र में संचालित मिशन है। इस मिशन का उद्देश्य इस क्षेत्र के समुद्री मार्गों में समुद्री डकैती की घटनाओं को रोकना है।

नाटो का 22वां शिखर सम्मेलन 19–20 नवम्बर, 2010 को पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन में संपन्न हुआ। अफगानिस्तान में तैनात 'नाटो' सेनाओं की वापसी के संबंध में बातचीत के लिए अफगान राष्ट्रपति हामिद करजई इस सम्मेलन में आमंत्रित किये गये थे। सम्मेलन में बनी सहमति के तहत अफगानिस्तान से नाटो सेनाएं चरणबद्ध तरीके से 2014 तक हटेंगी। सम्मेलन में किया गया एक अन्य महत्वपूर्ण फैसला नाटो के यूरोप में मिसाइल सुरक्षा कवच से संबंधित था, जिसे ईरान के संभावित आक्रमण से निपटने की नाटो की राजनीति माना जा रहा है।

नाटो के पास 14 लाख नियमित सेना है और प्रतिवर्ष यह एक अरब 24 करोड़ डॉलर खर्च करता है। इसका खर्च संयुक्त राज्य अमेरिका उठाता है।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं है कि नाटो की स्थापना अन्तर्राष्टीय सम्बंधों के इतिहास में एक अत्यन्त हमत्वपूर्ण घटना है। i.Fke] इसने लगभग सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप को एक सुरक्षा संगठन के अन्तर्गत ला दिया। f}rh;] इसने अपने सदस्यों के मध्य अत्यधिक घनिष्ठ सहयोग की स्थापना की। विश्व के इतिहास में पहली बार पश्चिमी यूरोप की शक्तियों ने अपनी कुछ सेनाओं को स्थायी रूप से एक अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य संगठन की अधीनता में रखना स्वीकार किया।

एक तरफ नाटो की सदस्य संख्या बढ़ रही है, तो दूसरी ओर उसके बजट में भी वृद्धि हो रही है। शीतयुद्ध के बाद की दुनिया में नाटो एकमात्र ताकतवर सैन्य गठबन्धन है। अपने मूल उद्देश्यों के अतिरिक्त आज नाटो की सेना यूरोप से बाहर भी तैनात है। अफगानिस्तान में नाटो रिस्पोन्स फोर्स तैनात है और अब इराक में भी उसकी भूमिका के लिए अमेरिका प्रयत्नशील है। नाटो के करीब 47000 सैनिक अफगानिस्तान में तैनात हैं, जिनका आधार भार अमेरिका के कंधों पर है, जिसके 19000 सैनिक अफगानिस्तान में नाटो के झंडे तले मौजूद हैं।

आज विश्व भर में चौधराहट करने वाला नाटो अमरीका के हाथों में खेलने वाला एक खतरनाक सैनिक संगठन बन गया है। आज नाटो न तो राष्ट्रीय सम्प्रभुता की परवाह करता है, न अन्तर्राष्ट्रीय कानून और संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मान कर रहा है। आज नाटो की सैनिक कार्यवाहियों का क्षेत्र यूरोप व उत्तरी अटलाण्टिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है इसका विस्तार एशिया, पूर्वी यूरोप व हिन्द महासागर क्षत्र में भी हो गया है। वर्तमान में यह संगठन पूर्व यूरोप में अपने विस्तार, मध्य पूर्व अफगानिस्तान, कोसोवो आदि में अपने सैनिक मिशनों तथा नई सामरिक धारणाओं को अपनाने के साथ ही एक वैश्विक पुलिसमैन का रूप धारण करता जा रहा है।

4- ;jksfi;u izfrj{kk lenk; ¼**The European Defence Community - EDC**½& यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय की स्थापना उस समय हुई जबकि अमरीका ने यह महसूस किया कि पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा केवल उस समय तक सम्भव हो सकती है जबकि उसका संगठन पश्चिमी जर्मनी को केन्द्र बिन्दु मानकर किया जाए। इससे यह समस्या उठ खड़ी हुई कि विचाराधीन राजनीतिक तथा सैनिक व्यवस्था में पश्चिमी जर्मनी को किसी भी सैनिक संगठन में किस प्रकार स्थान दिया जाए? फ्रांस का कहना था कि यदि जर्मनी के लोगों को पुनः शस्त्र धारण करने हैं तो उन्हें एक यूरोपियन सेना का अंग बनकर ऐसा करना चाहिए। अमरीका के अनुसार पश्चिमी जर्मनी सोवियत संघ तथा पश्चिमी यूरोप के मध्य एक अभेद्य दीवार के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसके अतिरिक्त, जर्मनी की विशाल औद्योगिक शक्ति तथा जनशक्ति सोवियत संघ की ओर से सम्भावित आक्रमणों को रोकने तथा उनका सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली सैनिक दल के स्थान में महती योगदान दे

सकती थी। परन्तु अमेरीका के यूरोपियन मित्र–राष्ट्र इन तर्कों के बावजूद एक पृथक् जर्मन सेना के संगठन के लिए तैयार न थे। उनके मत में पुनः शस्त्रीकृत जर्मनी साम्यवादी रूस की अपेक्षा अधिक खतरनाक था।

प्लेविन योजना के आधार पर 25 मई, 1952 को बोन में 6 राष्ट्रों (फ्रांस, इटली, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स तथा लक्जमबर्ग) ने यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय की सन्धि पर हस्ताक्षर किए। इस सन्धि के अनुसार सन्धिकर्ता राज्यों की सब सेनाओं को मिलाकर, नाटो की कमान में एक यूरोपियन सेना का अंग बनाना था। सदस्य राज्य अपने समुद्र–पार के प्रदेशों की रक्षा के लिए तथा कोरिया युद्ध जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों में यंयुक्त राष्ट्र संघ की सहायत के लिए पृथक् सेनाएं रख सकते थे। इस समुदाय को सदस्य–राज्यों के युद्धोद्योगों पर भी नियन्त्रण का अधिकार दिया गया था।

यूरोप के राजनीतिक एकीकरण के लिए यह बड़ी महत्वपूर्ण योजना थी तथा इसे वास्तविक संघ का पूर्वरूप समझा जा रहा था। इसका लक्ष्य यह था कि सारे यूरोप की एक सामान्य सेना, एक सामान्य सैनिक बजट तथा राष्ट्रीय राज्यों से ऊपर उठा हुआ एक राजनीतिक संगठन हो। इस प्रकार जर्मनी अपने नियन्त्रण में कोई राष्ट्रीय सेना नहीं रख सकेगा। उससे आक्रमण की आशंका नहीं रहेगी और समूचा यूरोप एकीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम बढ़ा सकेगा।

अमेरिका ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों पर इस बात का दबाव डाला कि वे अपने–अपने देशों के विधानमण्डलों से इसकी पुष्टि करवाएं। परन्तु इस सन्धि ने यूरोप के जनसाधारण में तीव्र विरोध की भावनाओं को जन्म दिया। 1953 में जर्मनी संसद ने तो इस सन्धि को स्वीकार कर लिया, किन्तु फ्रांस में ऐसा नहीं हो सका। अमेरिका के विदेश सचिव जॉन फॉस्टर डलेस ने यह धमकी भी दी कि ''यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय की सफलता पर अमरीका को यूरोप के प्रति अपनी नीति पर पीड़ाजनक पुनर्विचार करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।'' इस धमकी के बावजूद 30 अगस्त, 1954 को फ्रांसीसी व्यवस्थापिका ने ई.डी.सी सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य था कि आरम्भ में फ्रांस ने इस प्रतिरक्षा का प्रस्ताव किया था और बाद में उसी ने इसकी अन्त्येष्टि की।

5- if'peh ;jksfi;u l?k ¼**Western European Union**½& अक्टूबर, 1954 में लन्दन में होने वाले एक सम्मेलन में पश्चिमी यूरोपियन संघ का निर्माण हुआ। इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि पश्चिमी जर्मनी पर मित्र–राष्ट्रों का सैनिक अधिकार समाप्त कर दिया जाए, उसे नाटो में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया जाए तथा इसके बदले में पश्चिमी जर्मनी ने यह स्वीकार किया कि अपने शस्त्रास्त्र के उत्पादन पर स्वेच्छापूर्वक नियन्त्रण करेगा। यह यूरोपियन प्रतिरक्षा समुदाय की अपेक्षा कम अधिकारों वाली योजना थी। इसमें सारे यूरोप की एक सेना बनाने का विचार छोड़ दिया गया और नाटो की अध्यक्षता में राष्ट्रीय सेनाओं को मान लिया गया। इससे यूरोप के राजनीतिक दृष्टि से वस्तुतः एक होने की आशा की सम्भावना समाप्त हो गयी। अब प.यू.सं. का एक ही काम रहा गया है कि वह शस्त्रास्त्र नियन्त्रण की देखभाल करे और वह भी प्रधान रूप से जर्मनी की सैनिक प्रभुता को रोकने के लिए।

2-6 if'peh ;jksi dk ,dhdj.k dk iHkko

पश्चिमी यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण तथा सैनिक व राजनीतिक एकीकरण से वहां के निवासियों के जीवन–स्तर में अभूतपूर्व सुधार हुआ। यूरोपियन देशों में निराशा के वातावरण का अन्त हुआ और एक नवीन चेतना का जन्म हुआ। पश्चिमी यूरोप का आर्थिक और राजनीतिक एकीकरण अमरीकी नेतृत्व में होने के कारण इसकी प्रतिक्रिया सोवियत संघ पर हुई। सोवियत संघ ने प्रतिक्रियास्वरूप पूर्वी यूरोप के देशों पर अपना नियन्त्रण और भी अधिक कठोर बना दिया। इससे सोवियत अमरीकी सम्बन्धों में कटुता आयी और शीत–युद्ध की शुरूआत हुई।

2-7 iloh ;jki dk ,dhdj.k

पूर्वी यूरोप से अभिप्राय सामान्यतः उस क्षेत्र से है, जो उत्तर में स्टेटिन से लेकर दक्षिण में ट्रीस्टे तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र के सीमान्त फिनलैण्ड, सोवियत संघ और तुर्की के सीमान्तों से मिलते हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड, चेकोस्लावाकिया, हंगरी, यूगोस्लाविया, रूमानिया, बुल्गारिया और अल्बानिया के राज्य शामिल किए जाते है। पूर्वी यूरोप के इन समाजवादी राज्यों का क्षेत्रफल 8 लाख वर्ग किलोमीटर है और उनमें लगभग 12 करोड़ लोग निवास करते हैं।

पूर्वी यूरोप के देशों को साधारणतः सोवियत संघ के पिछलग्गू देशों के नाम से पुकारा जाता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद इन देशों में साम्यवादी शासन की स्थापना में सोवियत संघ ने उल्लेखनीय सहायत दी थी। स्टालिन का यह विश्वास था कि सोवियत संघ की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उसकी पश्चिमी सीमा पर स्थित पूर्व–यूरोपीय राज्यों में सोवियत रूस के प्रति सद्भाव व मैत्री रखने वाली सरकारें स्थापित की जाएं। सौभाग्यवश युद्धोत्तर परिस्थितियां उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल मिलीं। जिस समय युद्ध बन्द हुआ रूसी लाल सेनाएं मध्य यूरोप तक अपना अधिकार किए बैठी थी। पूर्वी यूरोप के सभी देशों को जर्मनी की दासता से उन्होंने ही मुक्ति दिलायी थी। इन देशों की साम्यवादी पार्टियों ने ही जर्मनी के विरुद्ध लड़े जाने वाले छापामार संघर्षों का नेतृत्व किया था। साम्यवादी रूस के प्रति इन राज्यों में अपार सहानुभूति थी। अतः स्टालिन ने इस सद्भावना का लाभ उठाकर चतुराई से इन राज्यों में साम्यवादी शासन की स्थापना के सफल प्रयास किए।

द्वितीय महायुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देशों में 'सोवियतीकरण' की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। सोवियत सेनाओं ने जिन क्षेत्रों को मुक्त कराया था वहां उन्होंने मजदूर वर्ग की सत्ता पर अधिकार स्थापित करने में सहायता की थी ताकि स्थिति के सामान्य होने पर वहां क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जा सकें। पूर्वी यूरोप में सोवियतीकरण की प्रक्रिया विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न प्रकारों से व्यक्त हुई।

2-8 iloh ;jki dk lfud ,o vkfFkd ,dhdj.k

1- okjlk iDV ;k iloh ;jkih; lfU/k lxBu ¼**Warsaw Pact or East European Security Pact**½&जब पश्चिम जर्मनी भी मई, 1955 को नाटो का सदस्य बना लिया गया और पश्चिमी राष्ट्रों ने जर्मनी का पुनः शस्त्रीकरण कर दिया तो इसमें सोवियत संघ तथा अन्य पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था। पश्चिमी शक्तियों ने नाटो, सीटो, सेण्टो द्वारा सोवियत संघ के इर्द–गिर्द घेरे की स्थिति पैदा कर दी थी। अतः यह स्वाभाविक था कि सोवियत संघ सैनिक गठबन्धनों का उत्तर सैनिक गठबन्धन से देता।

साम्यवादी राष्ट्रों का एक सम्मेलन 11 से 14 मई, 1955 को वारसा में बुलाया गया। इस सम्मेलन में सोवियत संघ और पूर्व यूरोप के सात राष्ट्रों–अल्बानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, हंगरी, पोलैण्ड तथा रूमानिया ने भाग लिया। यूगोस्लाविया ने इसमें भाग नहीं लिया। चीन के प्रतिनिध ने इस सम्मेलन में एक प्रेक्षक के रूप में भाग लिया। 14 मई, 1955 को सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रों ने मित्रता एवं पारस्परिक सहयोग की एक 20 वर्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसे ^iloh ;jkih; lfU/k lxBu* अथवा ^okjlk lfU/k* कहते है। इस सन्धि की भूमिका में यूरोप में सामूहिक सुरक्षा की पद्धति के स्थापित करने का बल दिया गया और यह कहा गया कि पश्चिमी यूरोप के सन्धि–निर्माण से तथा पश्चिमी जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण से यह आवश्यक हो गया कि वे अपनी सुरक्षा सुदृढ़ करें और यूरोप में शान्ति स्थापित रखें।

इस पैक्ट की मुख्य व्यवस्था धारा 3 में है। इसके अनुसार यदि किसी सदस्य पर सशस्त्र सैनिक आक्रमण होता है तो अन्य देश उसकी सैनिक सहायता करेंगे। इसके लिए धारा 5 में एक 'संयुक्त

सैनिक कमान' बनायी गयी। सैनिक सहयोग के अतिरिक्त वारसा सन्धि हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों में आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सहयोग की व्यवस्था भी करती है। इसमें इस बात की भी व्यवस्था है कि सन्धिकर्ता राष्ट्र पारस्परिक सम्बन्धों में शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिमय साधनों से सुलझाने का प्रयास करेंगे।

वारसा सन्धि का मुख्य अंग राजनीतिक परामर्शदात्री समिति है। आवश्यकता पड़ने पर यह सहायक अंगों की स्थापना कर सकती है। प्रत्येक सदस्य राज्य का एक–एक प्रतिनिध राजनीतिक परामर्शदात्री समिति का सदस्य होता है। इसकी बैठक वर्ष में दो बार होती है। दूसरे कार्यों में सहायता करने के लिए सचिवालय है, जिसका सर्वोच्च पदाधिकारी महासचिव होता है।

आगे चलकर सारसा संगठन में सात सदस्य रह गए। vYckfu;k इस संगठन का सदस्य नहीं रहा। 27 अप्रैल, 1985 के एक निर्णय द्वारा 30 वर्षीय वारसा पैक्ट सन्धि के काल का 20 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया।

अपने मूल रूप में वारसा पैक्ट नाटो सन्धि का ही प्रतिरूप कहा जा सकता है। नाटों तथा वारसा पैक्ट में दो अन्तर है। iFke] वारसा पैक्ट विश्व के सभी देशों के लिए खुला था जबकि नाटो में नए सदस्यों की भर्ती सभी पूर्ववर्ती सदस्यों की सर्व–सम्मति से ही सम्भव है। nwljk अन्तर यह है कि वारसा पैक्ट एक अस्थायी सन्धि थी, जो केवल उसी समय तक थी जब तक सम्पूर्ण यूरोप में 'एक सामूहिक सुरक्षा समूह' की स्थापना नहीं हो जाती।

वारसा पैक्ट नाटो के विरुद्ध साम्यवादी देशों का सैन्य संगठन था। इसमें सभी देशो को समानता के अधिकार प्राप्त थे तथापि यह स्पष्ट था कि सोवियत संघ ही मुख्य शक्ति–केन्द्र था तथा अन्य राज्यों की स्थिति उपग्रही राज्यों के समान थी। वारसा पैक्ट में सोवियत संघ की स्थिति नाटो से संयुक्त राज्य अमेरिका से भी अधिक प्रभावशाली थी। वारसा पैक्ट से यह लाभ अवश्य हुआ कि सोवियत संघ को इन देशों में हस्तक्षेप करने का कानूनी अधिकार प्राप्त हो गया। हंगरी, चेकोस्लोवाकिया और पौलण्ड में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप की व्याख्या इसी परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है।

1989–90 में पूर्वी यूरोप में स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की बहार आयी। पूर्वी यूरोप में हुई राजनीतिक उथल–पुथल एवं शीत युद्ध के अन्त की प्रक्रिया के साथ। जुलाई 1991 को वारसा पैक्ट समाप्त कर दिया गया।

2- ikjLifjd vkfFkd lgk;rk dh ifj"kn ¼**Council for Mutual Economic Assistance - CMEA**½ & इस संगठन की स्थापना अप्रैल, 1949 में की गयी। इसके संस्थापक सदस्य थे– बुल्गारिया, पोलैण्ड, हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया तथा सोवियत संघ। 1950 में अल्बानिया और पूर्वी जर्मनी ने भी इस संगठन की सदस्यता ग्रहण कर ली। 1962 में मंगोलियाई गणराज्य तथा 1964 में यूगोस्लाविया के सथ सी.एम.ई.ए. के संबंध स्थापित हो गए।

इस संगठन में सभी सदस्य राष्ट्रों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता था। इसकी सदस्यता ऐसे प्रत्येक देश के लिए खुली हुई थी। जो उसके मूलभूत सिद्धान्तों में आस्था रखता हो तथा जो सदस्यता में निहित उत्तरदायित्वों को पूरा करने को तैयार हो। पिछले तीस वर्षों में इस संगठन के माध्यम से पूर्वी यूरोप के देशो तथा मंगोलिया और सोवियत संघ के बीच आर्थिक क्षेत्र में बहुत सहयोग हुआ और इस सहयोग से सभी सदस्य लाभान्वित हुए। यह एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन था, जिसमें आठ समाजावादी देश सम्मिलित थे और जिनकी जनसंख्या लगभग 34 करोड़ थी, जो कि कुल संसार की जनसंख्या का 10 प्रतिशत थी। 1970 के बाद सी.एम.इ.ए. के सदस्य राज्यों के आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया बहुत अधिक तेज हुई थी। 1971 में इन देशों की राष्ट्रीय आय में 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इसी काल में पश्चिम से सबसे अधिक औद्योगीकृत देश में यह वृद्धि 6.3 प्रतिशत से अधिक नहीं थी।

जनसंख्या की दृष्टि से इन देशों में संसार की कुल जनसंख्या का दसवां भाग निवास करता था, परन्तु ये देश विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का एक–तिहाई पैदा करते थे।

3- dkfeuQkWe ¼**Communist Information Bureau**½& सितम्बर 1947 में सोवियत संघ, बुल्गारिया, हंगरी, रूमानिया, पौलेण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, फ्रांस और इटली के साम्यवादी दलों के प्रतिनिधी पौलेण्ड की राजधानी वारसा में एकत्रित हुई, जहां उन्होंने बेलग्रेड में एक 'साम्यवाद सूचना कार्यालय' खेलने का निश्चय किया। कॉमिनफॉर्म का उद्देश्य यूरोप में सामान्य साम्यवादी नीतियों को क्रियान्वित व समायोजित करना था। वह पूरी तरह सोवियत संघ के नियंत्रण में था। कॉमिनफॉर्म के माध यम से पूर्वी–यूरोपीय राज्यों की साम्यवादी सरकारों को संगठित करने और साम्यवादी कार्य–पद्धति में दीक्षित करने में स्टालिन को पर्याप्त सफलता मिली। काफी बड़ी संख्या में रूसी इन्जीनियर, तकनीकी कर्मचारी और सेना प्रशिक्षक उन देशों के पुनर्निर्माण कार्य में सहायता देने के लिए भेजे गए।

iwohZ ;wjksi dk ,dhdj.k dk izHkko

द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देशों का जो आर्थिक एकीकरण हुआ, उससे इन देशों की आर्थक शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि हुई। पूर्व यूरोप के इस एकीकरण का विश्व राजनीति के ऊपर एक व्यापक प्रभाव पड़ा। विश्व संगठन में ये देश सामान्यतः एक ही प्रकार से मतदान करते थे। समाजवादी देशों की यह संगठित शक्ति पश्चिम की साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी।

पिछले कुछ वर्षों से समाजवादी देशों की एकता में दरारें दिखायी देने लगीं। पोलैण्ड, हंगरी, और चेकोस्लोवाकिया में जो कुछ हुआ, उसे इसी सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता है। चीन के समर्थक अल्बानिया को वारसा सन्धि से निकाल दिया गया, रूमानिया अपनी भूमि से रूसी फौजें हटाना चाहता था। रूमानिया ने गुटनिपेक्ष आन्दोलन की सदस्यता ग्रहण कर ली। चेकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड में विरोध की ज्वालाएं उभरने लगी।

fu"d"kZ

यूरोपीय संघ ने यह संकल्प कर रखा है कि इस दशक में यूरोप एक राष्ट्र सीमाओं से मुक्त एकात्मक बाजार अर्थात् आर्थिक व मौद्रिक संघ बन जाए। यूरोपीय संघ के देशों की यह महत्वाकांक्षा है कि वे 'संयुक्त राज्य अमरीका' के समान 'संयुक्त राज्य यूरोप' जैसी किसी इकाई का निर्माण कर लें। यूरोपीय संघ की स्थापना तथा साझा बाजार एवं यूरोपीय संसद की योजना के बाद मौद्रिक संघ एक महत्वपूर्ण कदम है। वस्तुतः 'यूरोपीय कम्युनिटी' के गर्भ में 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ यूरोप' का सपना निश्चित रूप से पल रहा है।

2-9 fo'o O;kikj laxBu ¼ izLrkouk

विश्व व्यापार संगठन उरुग्वे दौर की बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं की समाप्ति के परिणामस्वरूप 1.1.95 से लागू हुआ था। भारत 1947 में गैट का तथा 1995 में विश्व व्यापार संगठन, दोनों का संस्थापक सदस्य था। दिसम्बर 2011 की स्थिति के अनुसार विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता 155 है। दिसम्बर 2011 में रुस विश्व व्यापार संगठन का 155वां सदस्य बना है। विश्व व्यापार संगठन के आदेश पत्र (मैन्डेट) में वस्तुओं का व्यापार सेवाओं का व्यापार, व्यापार से सम्बन्धित निवेश उपाय तथा व्यापार से सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिक शामिल हैं।

विश्व व्यापार संगठन का मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन जिसमें सभी सदस्य देशों के व्यापार मन्त्री शामिल होते हैं, डब्ल्यू.टी.ओ. का उच्चतम नीति निर्माण करने वाला निकाय है, जिसकी प्रत्येक 2 वर्ष में कम से

कम एक बैठक होती है। इस अन्तराल में इसके कार्य महापरिषद द्वारा किए जाते हैं, जिसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। महापरिषद् के कार्य में तीन क्षेत्रीय परिषदें, अर्थात् वस्तु व्यापार परिषद्, सेवा व्यापार परिषद् तथा व्यापार से जुड़े बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के पहलुओं (ट्रिप्स) से संबंधित परिषद् और बड़ी संख्या में समितियां, कार्यकारी समूह/पार्टियां तथा अन्य निकाय जो विशिष्ट करारों या विषय सम्बन्धी कार्य देखते हैं, सहायता करते हैं। इन सभी निकायों की सहायता सचिवालय करता है जिसके प्रमुख विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक होते हैं। विभिन्न करारों के अन्तर्गत महापरिषद को सौंपे गए ऐसे कार्यों के अतिरिक्त, महापरिषद विवाद निपटान निकाय (डी.एम.बी.) तथा व्यापार नीति समीक्षा निकाय (टी.पी.आर.बी.) के रूप में भी कार्य करती है।

2-10 fo'o 0;kikj lxBu % ,frgkfld i"BHkfe

'प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी करार' (गैट) हवाना चार्टर की राख से विकसित हुआ। विश्व में 1930 के दशक और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान व्यापार को कठोर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था अतः सम्बद्ध राष्ट्रों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उदार विश्व व्यापार व्यवस्था अपनाने की सोची। इस दृष्टि से 1947–48 के शीतकाल में हवाना में व्यापार और रोजगार का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 53 देशों ने भाग लिया और एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन गठित करने हेतु एक चार्टर पर हस्ताक्षर किए, परन्तु अमरीकी कांग्रेस ने हवाना चार्टर का कभी समर्थन नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन अस्तित्व में नहीं आया। इसके साथ–साथ 23 देश जेनेवा में व्यापार रियायतों के लिए व्यापक टैरिफ बातचीत जारी रखने के लिए सहमत हो गए, जिन्हें 'गैट' में शामिल किया गया। इस करार (गैट) पर 30 अक्टूबर, 1947 को हस्ताक्षर किए गए और जब अन्य देशों ने भी इस पर हस्ताक्षर कर दिए 1 जनवरी, 1948 को''प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य करार'' (गैट) लागू कर दिया गया।

गैट एक बहुपक्षीय सन्धि थी जिस पर लगभग 111 देशों के हस्ताक्षर हो गए थे। गैट न तो कोई संगठन था और न ही न्यायालय। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार नियमों की एक संहिता वाली और व्यापार उदारीकरण की कार्य प्रणालीयुक्त यह एक निर्णय लेने वाला मंच था। यह एक मंच (Platform) था जहां अनुबन्ध करने वाले विभिन्न देश अपनी व्यापार समस्याओं पर बातचीत करने, उनका हल ढूंढ़ने तथा अपने व्याार को बढ़ाने की सम्भावनाओं पर वार्ता करने के लिए समय–समय पर एकत्र होते थे।

1947 से गैट के अन्तर्गत विश्व व्यापार वार्ताओं के सात दौर (सम्मेलन) आयोजित किए गए और आठवां दौर पंटा डेल एस्टे (उरुग्वे) सितम्बर 1986 में शुरू हुआ। उरुग्वे दौर के गैट विचार विमर्श 15 अग्रैल, 1994 को मराकेश (मोरक्को) में समाप्त हो गए। भारत सहित 123 देशों के मंत्रियों ने अंतिम एक्ट पर हस्ताक्षर किए। इस अन्तिम एक्ट में 'विश्व व्यापार संगठन' (WTO) के गठन और कार्यप्रणाली का समावेश है। वास्तव में 'विश्व व्यापार संगठन' समझौता उरुग्वे समझौते ही हैं जिनके द्वारा प्रारम्भिक 'गैट' अब 'विश्व व्यापार संगठन' का ही एक भाग बन गया है। जो 1 जनवरी 1995 से लागू हुआ।

विश्व व्यापार संगठन 'गैट' का उत्तराधिकारी है। गैट एक मंच था जहां सदस्य देश समय–समय पर एकत्रित होते थे और विश्व व्यापार की समस्याओं पर वार्तालाप करते थे और उनको सुलझाते थे, परन्तु विश्व व्यापार संगठन एक सुव्यवस्थित और स्थायी विश्व व्यापार की संस्था है जिसकी एक कानूनी हैसियत है और यह विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समकक्ष महत्त्वपूर्ण है। 1 जनवरी, 1995 को इसके केवल 77 सदस्य थे जिनकी संख्या वर्तमान में 155 तक पहुंच गई है।

xV rFkk fo'o 0;kikj lxBu e vUrj

विश्व व्यापार संगठन 'गैट का विस्तार नहीं है, परन्तु उसका उत्तराधिकारी है। उसने गैट को पूर्णतः प्रतिस्थापित कर दिया है। तथापि दोनों में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण अन्तर है :

iFke] गैट की कोई कानूनी हैसियत नहीं थी जबकि विश्व व्यापार संगठन को कानूनी दर्जा प्राप्त है। इसका जन्म अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के अन्तर्गत हुआ है जिसकी पुष्टि सदस्य देशों की सरकारों और उनके विधानमण्डलों ने की हैं। द्वितीय, गैट केवल चयनात्मक बहुपक्षीय समझौतों के बारे में नियमों और प्रणालियों का समूह था– अलग–अलग विषयों पर अलग–अलग समझौते थे जो सदस्यों के लिए बाध्यकारी नहीं थे। कोई भी सदस्य किसी भी समझौते में सम्मिलित होने से इन्कार कर सकता था, जबकि जो समझौते विश्व व्यापार संगठन के अंग बन चुके हैं, वह स्थायी हैं और सभी सदस्यों पर बाध्यकारी हैं। किसी सदस्य द्वारा उनका उल्लंघन करने पर उसके विरूद्ध कार्यवाही की जा सकती है। तृतीय, गैट के अन्तर्गत विवाद निपटाना प्रणाली विलम्बकारी थी और उसके फैसले बाध्यकारी भी नहीं थे जबकि विश्व व्यापार संगठन की विवाद निपटान प्राणी स्वचालित, शीघ्रगामी तथा सदस्यों पर पूर्णतः लागू है। चतुर्थ, गैट एक ऐसा मंच था जहां सदस्य देश व्यापारा समस्याओं पर विचार करने और उन्हें हल करने के लिए दशक में केवल एक बार मिलते थे जबकि व्यक्ति विश्व व्यापार संगठन सुस्थापित, नियमबद्ध विश्व व्यापार संगठन है जहां निर्णय समयबद्ध होते हैं। पंचम, गैट के नियम केवल वस्तुओं के व्यापार पर ही लागू होते थे जबकि विश्व व्यापार संगठन के अन्तगर्त केवल वस्तुओं तथा सेवाओं का व्यापार ही नहीं आता, वरन् बौद्धिक सम्पदा अधिकार सम्बन्धी विषय तथा अन्य कई और समझौते भी आते हैं। षष्ट, गैट का एक लघु कार्यालय था जिसे एक डाइरेक्टर जनरल देखता था, जबकि विश्व व्यापार संगठन का एक विशाल कार्यालय और विराट नौकरशाही तन्त्र है।

2-11 fo'o 0;kikj lxBu % mn~n';

विश्व व्यापार संगठन के स्थापन समझौते की प्रस्तावना में निम्नांकित उद्देश्य अंकित हैं–

1. व्यापार और वित्तीय गतिविधियों को इस प्रकार चलाया जाए जिससे पूर्ण रोजगार सुनिश्चित हो, वास्तविक आय और प्रभावी मांग में लगातार वृद्धि द्वारा रहन–सहन के स्तर में सुधार हो तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का प्रसार हो।
2. विश्व में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग सतत विकास की दृष्टि से करना ताकि पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण हो सके।
3. ऐसे सकारात्मक प्रयत्न करना जिससे विकासशील देश, विशेषतः निम्नतम विकसित देश अपने आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि में उचित भाग पा सकें।
4. टैरिफ और व्यापार की रूकावटों को दूर करते हुए, व्यापार सम्बन्धों में पक्षपाती आचरण को हटाकर पारस्परिक और परस्पर लाभकारी व्यवस्थाएं उपलब्ध कराना।
5. गैट में शामिल और उरुग्वे दौर की सभी बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं के फलस्वरूप अधिक स्थायी एवं व्यवहार्य बहुपक्षीय संगठित व्यापार प्रणाली को विकसित करना।

2-12 fo'o 0;kikj lxBu % dk;Z

विश्व व्यापार संगठन के निम्नांकित कार्य हैः

1. यह द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के कार्यान्वयन, प्रबन्धन और संचालन को सरल बनाता है।

2. यह नागरिक विमानन, सरकारी खरीददारी, दुग्धोत्पाद व्यापार और गोमांस सम्बन्धी बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के कार्यान्वयन, प्रशासन और परिचालन के लिए उचित ढांचे का प्रबन्ध करता है।

3. यह सदस्यों के लिए मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन द्वारा स्वीकृत समझौतों सम्बन्धी, बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धी वार्ताओं तथा इसके द्वारा किए गए निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए एक मंच प्रस्तुत करता है।

4. यह सदस्य देशों के व्यापार सम्बन्धी विवाद हल करने में मदद करता है।

5. अपने सदस्य देशों की राष्ट्रीय व्यापार नीतियों की निगरानी करता हैं।

6. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं वित्तीय नीति निर्धारण से जुड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग करना।

2-13 fo'o 0;kikj lxBu % lajpuk

विश्व व्यापार संगठन की संरचना में निम्नांकित अंग प्रमुख हैं–

1- efU=Lrjh; lEesyu (Ministerial Conference)– विश्व व्यापार संगठन का सर्वोच्च नीति निर्माता अंग, मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन है जिसमें सब सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कम से कम दो वर्ष में एक बार मिलते हैं। यह संगठन की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को चलाता है। यह किसी भी बहुपक्षीय समझौते के अन्तर्गत सभी मामलों पर निर्णय लेता है।

2- lkekU; ifj"kn (General Council) संगठन के प्रशासनिक कार्य संचालन के लिए एक 'सामान्य परिषद है जिसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का एक स्थायी प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामान्यतः महीने में एक बार जेनेवा में होती है। यह झगड़ा निपटान संस्था और व्यापार नीति पुनरावलोकन संस्था के रूप में भी कार्य करता है जिनके उलग–अलग अपने अध्यक्ष हैं।

3- lfpoky; (Secretariat) संगठन के सचिवालय का मुखिया डायरेक्टर जनरल (Director General) होता है। मन्त्रीय सम्मेलन डायरेक्टर जनरल का चयन करता है। उसका कार्यकाल 4 वर्ष का होता है। वह बजट, वित्त और प्रशासन समिति को वार्षिक बजट के अनुमान और वित्तीय विवरण देता है और सामान्य परिषद की अन्तिम स्वीकृति के लिए अनुशंसा करता है।

2-14 fo'o 0;kikj le>kSrk

परम्परागत रूप से गैट केवल वस्तुओं के व्यापार (Trade in goods) से सम्बन्धित नियम ही बनाता रहा है जिनमें मुख्यतः निर्मित माल ही सम्मिलित था, कृषि इसके कार्यक्षेत्र से बाहर थी, किन्तु उरुग्वे वार्ता के दौर में परम्परा से हटकर वार्ता क्षैत्र में विस्तार किया गया तथा पहली बार वार्ता सूची में चार नए क्षेत्रों को शामिल किया गया–(1) व्यापार से सम्बन्धित निवेश उपाय (Trade Related Aspects of Investment Measures- TRIMS), (2) बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पहलुओं से सम्बन्धित व्यापार (Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights-TRIP), (3) सेवाओं में व्यापार (Trade in Service), तथा (4) कृषि (Agriculture)। गैट वार्ता की सूची में यह क्षेत्र विकसित देशों के दबाव में शामिल किए गए। विकासशील देशों का विचार था कि गैट केवल अब तक के परम्परागत क्षेत्र में ही नियम बनाने तक अपनी कार्यवाही सीमित रखे। वार्ता सूची के विस्तार के विषय में विकसित देशों (उत्तर) के अपने तर्क थे। उनके अनुसार व्यापार से सम्बन्धित निवेश उपायों (TRIMs) को वार्ता सूची में रखा जाना चाहिए, क्योंकि विकासशील देश (दक्षिण) विदेशी निवेश को नियन्त्रित करने की नीतियां बनाते हैं जिससे विदेशी कम्पनियों को स्वतन्त्रता से व्यापार करने में बाधा पड़ती है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों विशेषकर पेटेन्ट, कॉपीराइट तथा ट्रेडमार्क के सम्बन्ध में विकसित देशों का कहना था कि विकासशील देशों में उपर्युक्त अधिकारों के अपर्याप्त संरक्षण के कारण जाली तथा चोरी के व्यापार का प्रचलन हुआ है और

वैध व्यापार को क्षति पहुंची है, अतः बौद्धिक सम्पदा, अधिकार से सम्बन्धित व्यापार पहलुओं (TRIPs) को वार्ता सूची में शामिल किया जाना चाहिए। विकासशील देशों (दक्षिण) ने ऐसे प्रस्तावों का कड़ा विरोध किया।

उरुग्वे चक्र में पांच वर्ष के वार्ता दौर के पश्चात् भी किसी सर्वसम्मत परिणाम पर पहुंचने में असफल होने पर गैट के महानिदेशक आर्थर डुंकेल (Arthur Dunkel) ने 20 दिसम्बर, 1991 को 108 सदस्यीय गैट के भावी स्वरूप पर 500 पृष्ठ के अपने प्रस्ताव रखे। सदस्य राष्ट्रों को सहमति के लिए पहले 13 जनवरी, 1992 तक का समय दिया गया, बाद में इस समय सीमा को 17 अप्रैल, 1992 तक बढ़ा दिया गया।

विकासशील देशों (दक्षिण) की दृष्टि में डुंकेल प्रस्तावों का सर्वाधिक ऋणात्मक पहलू यह है कि यह केवल व्यापार तक ही सीमित नहीं है, इनमें कृषि सब्सिडी, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (पेटेन्ट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क आदि) विदेशी निवेश उपायों तथा सेवाओं को भी शामिल कर लिया गया। इन प्रस्तावों में विकासशील देशों (दक्षिण) की मांगों तथा आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, केवल विकसित देशों के व्यापार विस्तार तथा हितों को ही आगे बढ़ाने की चेष्टा की गई।

डुंकेल प्रस्तावों में सर्वाधिक विरोध पेटेन्ट अधिकारों के सम्बन्ध में था जिनमें पेटेन्ट प्राप्तकर्ताओं के अधिकारों में वृद्धि और उनके दायित्वों एवं वैधानिक बन्धनों में कमी की गई। कृषि के क्षेत्र में पेटेन्ट अधिकार लागू करने की सिफारिश की गई जिसके लागू हो जाने की दिशा में विकासशील देशों को विकसित देशों से कृषि सम्बन्धी तकनीक खरीदने के लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा।

उरुग्वे चक्र की वार्ताओं के दौर में विकासशील देशों ने अपने व्यावसायिक हितों की ओर ध्यान आकर्षित किया तथा प्रशुल्क कटौती एवं विकसित देशों के प्रतिबन्धात्मक व्यवहार के विरूद्ध इन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की। दुर्भाग्यवश उरुग्वे दौर के विभिन्न सम्मेलनों में इन राष्ट्रों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार ही हुआ और विकसित औद्योगिक राष्ट्रों के हितों का ही गैट के अन्तर्गत वर्चस्व स्वीकार किया गया।

उरुग्वे दौर की बहुपक्षीय वार्ताओं तथा डुंकेल प्रस्तावों के परिणामों पर आधारित विश्व व्यापार संगठन के मूलभूत समझौते में निम्नांकित बातें शामिल हैं :

- वस्तुओं में व्यापार के बहुपक्षीय समझौते।
- सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता।
- बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी समझौता।
- विवादों के निपटान से सम्बन्धित नियमों और प्रक्रियाओं का समझौता।
- बहुपार्श्विक व्यापार समझौते।
- व्यापार नीति पुनरावलोकन तन्त्र।

संक्षेप में, इसके केन्द्र में लगभग 60 डब्ल्यू.टी.ओ (WTO) समझौते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य एवं व्यापार नीति के लि कानूनी आधारभूत नियमों का काम करते हैं।

fo'o 0;kikj lxBu % efU=Lrjh; lEeyu

यह सर्वविदित है कि विश्व व्यापार संगठन में नीति निर्धारण हेतु सर्वोच्च अधिकार प्राप्त निकाय 'मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन' (Ministerial Conference) है। मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन का आयोजन प्रायः प्रत्येक दो वर्ष बाद होता है। अब तक सात मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन आयोजित किए जा चुके है।

fo'o O;kikj laxBu% efU=Lrjh; lEesyu

lEesyu	le; ¼o"kZ½	LFkku
पहला	9—13 दिसम्बर, 1996	सिंगापुर
दूसरा	18—20 मई, 1998	जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड)
तीसरा	30 नवम्बर—3 दिसम्बर, 1999	सिएटल
चौथा	9—14 नवम्बर, 2001	दोहा (कतर)
पांचवां	10—14 सितम्बर, 2003	कानकुन (मैक्सिको)
छठा	13—18 दिसम्बर, 2005	हांगकांग (चीन)
सातवां	30 नवम्बर—3 दिसम्बर, 2009	जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड)

iFke efU=Lrjh; lEesyu & flaxkiqj ¼9 ls 13 fnlEcj] 1996½

विश्व व्यापार संगठन का पहला मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 9 से 13 दिसम्बर, 1996 को सिंगापुर में हुआ। सम्मेलन में विचारणीय प्रमुख मुद्दों में श्रम मानकों, निवेश तथा प्रतिस्पर्द्धा को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के विषय सम्मिलित किए गए थे। इसके अतिरिक्त टेक्सटाइल तथा सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विषयों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी विचारणीय मुद्दों में शामिल था। भारत सहित विकासशील देश जहां श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के विरोध में थे वहीं अमेरिका सहित विकासित राष्ट्र इन्हें जोड़ने के पक्ष में थे। भीतर का कहना था कि श्रम मानक विश्व व्यापार संगठन के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की विषयवस्तु है। निवेश संबंधी मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने का भी भारत ने विरोध किया । इस सम्मेलन के घोषणा पत्र में श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) का विषय स्वीकार किया गया तथा स्पष्ट किया गया कि विकासशील राष्ट्रों के व्यापार को प्रतिबन्धित करने के लिए श्रम मानकों का प्रयोग नहीं किया जाएगा। विकासशील देशों की यह एक बड़ी उपलब्धि थी।

f}rh; efU=Lrjh; lEesyu & tsusok ¼18 ls 20 ebZ] 1998½

18 से 20 मई, 1998 को जेनेवा में विश्व व्यापार संगठन का दूसरा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें 132 देशों के वाणिज्य मन्त्रियों ने भाग लिया। भारत ने सम्मेलन में इस बात पर बल दिया कि उदारीकरण के अनुसरण में जो विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व के लिए जरूरी हो गया है, अपने आप में एक समाधान नहीं है, बल्कि इससे त्वरित विकास के मुख्य लक्ष्यों, विकासशील देशों के वर्तमान तथा सम्भावित संसाधनों का कल्याण और उत्तम लाभ मिलना चाहिए। इस दिशा में भारत ने विकासशील देशों की हित चिन्ताओं को उजागर करने तथा विश्व व्यापार संगठन की कार्य—सूची के सभी पहलुओं में विकासशील देशों को विशेष और विशिष्ट महत्व देने का सुनिश्चिय करने के लिए सम्भावित तरीकों से सम्बद्ध प्रस्ताव तथा उनका कार्यान्वयन पेश किया। भारत ने क्षेत्रीय व्यापारिक गुटों के फैलाव का विरोध करते हुए इसे विकासशील देशों के साथ भेदभावपूर्ण वाला बताया।

r`rh; efU=Lrjh; lEesyu & fl,Vy ¼30 uoEcj ls 3 fnlEcj] 1999½

30 नवम्बर से 3 दिसम्बर, 1999 को अमेरिका के सिएटल नगर में विश्व व्यापार संगठन का तीसरा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें 135 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन को लोगों के प्रदर्शन एवं विरोध का सामना करना पड़ा। प्रदर्शनकारियों का आरोप था कि मानवाधिकार से लेकर पर्यावरण

संरक्षण तक के अनेक मुद्दों पर नागरिक समाज के विचारों की यह संगठन अनदेखी कर रहा है। सम्मेलन की कार्य सूची में श्रम मानकों जैसे गैट– व्यापारिक मुद्दों के समावेश का भारत सहित विकासशील देशों ने कड़ा विरोध किया। इसके अतिरिक्त बाजार पहुंच (Market Access), कृषि सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी समझौते, आदि विवादास्पद मुद्दों पर सदस्य आम सहमति पर नहीं पहंच सके। बायो–टेक्नोलॉजी को वार्ता में शामिल किए जाने के अमरीकी प्रयास का भी विरोध हुआ।

सिएटल सम्मेलन सफल नहीं माना जा सकता, क्योंकि कोई साझा घोषणापत्र जारी नहीं किया जा सका। अमेरिका श्रम एवं पर्यावरण मानकों को विश्वव्यापार संगठन की कार्य–सूची में शामिल करना चाहता था जबकि भारत एवं अन्य विकासशील देश इस प्रयास का विरोध करते हुए कह रहे थे कि श्रम मानकों पर अमेरिका इसलिए जोर दे रहा है, ताकि विकासशील देशों के बने सस्ते मालों से प्रतिस्पर्द्धा में उत्तर के अमीर देशों को बचाया जा सके। भारत ने यूरो–अमरीकी मन्सूबों को कठघरे में खड़ा किया तथा विकासशील देशों की आवाज का नेतृत्व किया।

लगभग 75 विकासशील देशों ने पहली बार विश्व व्यापार संगठन को ज्ञापन दिए। सभी देशों में चल रहे स्वदेशी आन्दोलन ने अपनी–अपनी सरकारों को सावधान व सचेत किया था, अमीर देशों के आगे न झुकने का उन पर जबरदस्त दबाव बनाया था। फलतः विकासशील देश अमरीकी हेकड़ी के खिलाफ एकजुट थे।

prFk efU=Lrjh; lEesyu & nkgk ¼9 ls 14 uoEcj] 2001½

विश्व व्यापार संगठन के चौथे मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन का आयोजन 9 से 14 नवम्बर, 2001 तक दोहा (कतर) में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में 142 सदस्य देशों, 28 प्रेक्षक देशों और 48 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने भाग लिया। चीन और ताइवान को सर्वसम्मति से इसका सदस्य बना लिए जाने के बाद संगठन के सदस्य देशों की संख्या 146 हो गई।

सम्मेलन के समापन पर 14 नवम्बर को दोहा मन्त्रिस्तरीय घोषणा पारित की गई थी। इसके अलावा, ट्रिप्स करार और लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी घोषणा और क्रियान्वयन सम्बन्धी मुद्दों और चिन्ताओं पर लिया गया निर्णय सम्मेलन के उल्लेखनीय परिणाम रहे थे। सम्मेलन की मुख्य–मुख्य बातें संक्षेप में निम्नानुसर है :

fVIIl ykd LokLF;

ट्रिप्स लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी मन्त्रिस्तरीय घोषणा का दोहा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणामों में से एक परिणाम रहा है। इस घोषणा–पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि ट्रिप्स करार की व्याख्या और उसका क्रियान्वयन इस ढंग से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए जो लोक स्वास्थ्य की रक्षा करने और सभी के लिए औषधियों की पहुंच को बढावा देने के डब्ल्यू.टी.ओ. सदस्यों के अधिकार का समर्थनकारी हो। इस घोषणा पत्र में अनिवार्य लाइसेंस और समानान्तर आयात के बारे में ट्रिप्स करार में उपलब्ध लोचशीलता स्पष्ट की गई है और यह उल्लेख किया गया है कि सरकारों के पास अनिवार्य लाइसेंस प्रदान करने के आधार निर्धारित करने, त्वरित आधार पर अनिवार्य लाइसेंस प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय आपातकाल और अत्यधिक तात्कालिकता की अन्य परिस्थितियों का निर्धारण करने और समानान्तर आयात की अपनी खुद की प्रणाली विकसित करने की स्वतन्त्रता होगी। इस घोषणा–पत्र से लोक स्वास्थ्य की समस्याओं के सन्दर्भ में ट्रिप्स करार की ओर अधिक लोचशील व्याख्या की जा सकेगी।

fØ;kUo;u lEcU/kh enn

क्रियान्वयन सम्बन्धी मुद्दों और चिन्ताओं के बारे में जो निर्णय लिया गया है उसमें तैंतालीस क्रियान्वयन सम्बन्धी मुद्दों का निराकरण किया गया है। जिन निर्णयों से हमें महत्त्वपूर्ण लाभ मिले हैं उनमें शामिल हैं :

- नए एस.पी.एस. और टी.बी.टी. उपायों के अनुपालन के लिए छः माह की अधिक समयावधि।
- ट्रिप्स करार के अर्न्तगत अनुपालन से इतर शिकायतों के बारे में दो वर्ष का अधिस्थगन काल।
- जांच प्राधिकारियों द्वारा 365 दिनों के भीतर श्रृंखलाबद्ध पाटनरोधी जांच की शुरूआत पर विशेष सावधानी बरतते हुए जांच करना।
- जब किसी आयातक सदस्य के सीमा शुल्क प्रशासन के पास घोषित मूल्य की सत्यता अथवा यथार्थता के बारे में सन्देह होने का कोई समुचित आधार हो तो सदस्यों द्वारा निर्यात मूल्य के बारे में सूचना प्रस्तुत करने समेत सहयोग और सहायता प्रदान करना।
- शराब तथा स्पिरिट को छोड़कर, अन्य उत्पादों के लिए अनुच्छेद 23 में दिए गए भौगोलिक संकेतकों की सुरक्षा का उच्चतर स्तर प्रदान करने के मुद्दे पर कार्यान्वयन सम्बन्धी मुद्दों के समाधान की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में ट्रिप्स परिषद द्वारा विस्तार किया जाएगा।
- वस्त्र उत्पादों के लिए कोटा स्तर में उत्तरोत्तर बढ़ोतरी करने के मुद्दे पर मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में सक्रिय रूप से चर्चा की गई तथापि, इस पर सहमति नहीं हो सकी और अब इसकी जांच वस्तु व्यापार परिषद द्वारा की जाएगी।

इस बात पर सहमति हुई कि कार्यान्वयन सम्बन्धी सभी अन्य प्रमुख मुद्दों के सम्बन्ध में होने वाली वार्ताएं दोहा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन द्वारा शुरू की गई डब्ल्यू.टी.ओ. की कार्य योजना का एक अभिन्न अंग होगी।

df"k

कृषि में चल रही वार्ताओं का उद्देश्य निर्यात इमदादों के सभी रूपों में कमी करना होगा, ताकि विकसित देशों द्वारा दिए जा रहे व्यापार विकृतकारी घरेलू समर्थन में भारी कमी तथा इसे धीरे–धीरे समाप्त किया जा सके। विकासशील देशों के लिए विशेष तथा अधिमानी व्यवहार इन वार्ताओं का एक अभिन्न अंग होगा ताकि वे खाद्य सुराक्षा एंव ग्रामीण विकास सहित अपनी विकासात्मक आवश्यकताओं का भलीभांति ध्यान रख सकें। इन वार्ताओं के परिणामस्वरूप भारत जैसे विकासशील देशों को आवश्यक लोचशीलता बनाए रखने की अनुमति के साथ–साथ कृषिजन्य उत्पादों के लिए अधिक बाजार पहुंच उपलब्ध होगी।

lok,

मन्त्रिस्तरीय घोषणा–पत्र में यह अधिदेश है कि ये वार्ताएं मार्च 2001 में पारित वार्ताकारी दिशा–निर्देशों एवं प्रक्रिया (एनजीपी) के आधार पर की जाएंगी। यह एनजीपी मोटे तौर पर भारत तथा 22 अन्य विकासशील देशों के प्रस्ताव पर आधारित है और इसमें विकासशील देशों के लिए उचित लोचशीलता तथा वार्ता की मुख्य पद्धति के रूप में अनुरोध–प्रस्ताव पद्धति की प्रमुखता को स्वीकार किया गया है। मन्त्रिस्तरीय घोषणा–पत्र में प्राकृतिक व्यक्तियों की आवाजाही से सम्बन्धित प्रस्ताव की स्वीकृति का स्वागत किया गया है, क्योंकि यह भारत के लिए एक प्रमुख हित का मुद्दा है।

0;kikj ,o i;koj.k

पर्यावरण के बारे में यह निर्णय लिया गया था कि मौजूदा डब्ल्यू.टी.ओ. नियमों तथा बहुपक्षीय पर्यावरण करार (एम.ई.ए.) के बीच सम्बन्ध पर वार्ता की शुरूआत की जाए जो सन्दर्भाधीन एम.ई.ए. के

पक्षों के बीच ऐसे मौजूदा डब्ल्यू.टी.ओ. नियमों की प्रयोज्यता एम.ई.ए. सचिवालय तथा डब्ल्यू.टी.ओ. के बीच सूचना के आदान–प्रदान की प्रक्रिया तथा पर्यावरणिक वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए बाजार पहुंच क्षेत्र तक सीमित हो। पर्यावरणिक वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए बाजार पहुंच सम्बन्धी वार्ताएं कृषि उत्पादों के लिए बाजार पहुंच संबंधी वार्ताओं में भी शामिल होंगी। डब्ल्यू.टी.ओ. की व्यापार एवं पर्यावरण समिति (सीटीई) से यह कहा गया कि वह बाजार पहुंच सम्बन्धी पर्यावरणिक उपायों के प्रभाव, ट्रिप्स करार के संगत उपबन्धों तथा लैबेलिंग के मुद्दों पर विशेष ध्यान देते हुए अपनी कार्यसूची की सभी मदों पर कार्यवाही करे। ट्रिप्स करार तथा बाजार पहुंच पर पर्यावरणिक उपायों के प्रभाव की मदों को भारत के प्रस्ताव पर विशेष ध्यान देने के लिए शामिल किया गया था। सीटीई पांचवें मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

flxkij enn

व्यापार एवं निवेश, व्यापार एवं प्रतिस्पर्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता जैसे सिंगापुर मुद्दों पर कार्यवाही करना अध्ययन प्रक्रिया में जारी रहेगा। इस बात पर भी सहमति हुई कि इन विषयों से सम्बन्धित वार्ताएं पांचवें मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन के बाद उस सम्मेलन में स्पष्ट एकमत के द्वारा लिए गए निर्णय के आधार पर ही शुरू की जा सकेंगी।

xj&df"k mRiknk d fy, cktkj igp lEcU/kh okrk,

बाजार पहुंच सम्बन्धी वार्ताओं से हमारे उत्पादों के लिए विकसित देशों से अधिक बाजार पहुंच उपलब्ध होगी जिनमें विशेष रूप से विकासशील देशों के निर्यात हित के उत्पादों पर लागू उच्चतम टैरिफ सीमाओं, उच्च टैरिफ दरों तथा टैरिफ की बढ़ोतरी में कमी करने या उन्हें समाप्त करने का मद्दा शामिल होगा और इनमें विकासशील देशों की विशेष जरूरतों एवं हितों को पूर्ण रूप से ध्यान में रखा जाएगा।

fu;e

यह निर्णय लिया गया है कि पाटनरोधी तथा इमदाद करार सम्बन्धी वार्ताएं शुरू की जाएं ताकि इसमें अन्तनिर्हित विधानों को स्पष्ट किया जा सके और उनमें सुधार किया जा सके। इन विषयों से सम्बन्धित कार्यान्वयन के बकाया मुद्दों पर चर्चा करना इन वार्ताओं का एक अभिन्न अंग होगा।

fo'k"k rFkk vf/kekuh 0;ogkj

इन वार्ताओं में विकासशील देशों के लिए विशेष तथा अधिमानी व्यवहार के सिद्धान्त का पूर्ण रूप से ध्यान रखा जाएगा। इस बात पर भी सहमति हुई है कि डब्ल्यू.टी.ओ. के सभी एस.एण्ड डी. प्रावधानों की समीक्षा की जाएगी ताकि उन्हें सुदृढ़ किया जा सके तथा उन्हें और अधिक स्पष्ट प्रभावपूर्ण तथा प्रचालनात्मक बनाया जा सके।

Je

घोषणा पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि प्रमुख श्रम मानकों के मुद्दे का निराकरण करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन उचित मंच है।

fookn fuiVkjk le>krk

घोषण पत्र में विवाद निपटान समझौते में सुधार एवं उसके स्पष्टीकरण के बारे में वार्ताओं का भी प्रावधान है।

dk;Z ;kstuk

इन वार्ताओं को दिनांक 1.1.2005 तक पूरा कर लिए जाने का प्रस्ताव रखा। वार्ताओं के निष्कर्ष को एकल वचनपत्र के भाग के रूप में माना जाएगा। वार्ताओं का पर्यवेक्षण व्यापार वार्ता समिति द्वारा किया जाएगा। कार्ययोजना के जिन मुद्दों पर वार्ताएं नहीं की जाएंगी उन पर महापरिषद के समग्र पर्यवेक्षण में विचार किया जाएगा।

दोहा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन के एजेण्डे को स्वीकार किया जाना विकासशील राष्ट्रों के बजाय यूरोपीय संघ एवं अमरीका के लिए ही अधिक लाभदायक माना जा रहा है। इस मामले में भारत की आपत्ति चार सिंगापुर मुद्दों को लेकर थी। इनमें विदेशी निवेश व प्रतिस्पर्द्धा नीति के सम्बन्ध में नए वैश्विक नियमों के निर्धारण, सरकारी परियोजनाओं के लिए सामान की खरीद में विदेशी कम्पनियों को अवसर प्रदान करने तथा व्यापारिक नियमों को सरल बनाने के मुद्दे शामिल थे। मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में स्वीकार किए गए दोहा घोषणा पत्र को भारत ने अपनी सहमति तभी प्रदान की जब सम्मेलन के अध्यक्ष ने यह स्पष्ट घोषणा की कि उपर्युक्त चारों विवादित मुद्दों पर सदस्य राष्ट्रों की सहमति हो जाने पर ही पांचवें मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन के लिए बातचीत होगी।'दोहा डेवलपमेण्ट एजेण्डे' पर बातचीत 2005 तक पूरी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

दोहा सम्मेलन में भारत के नेतृत्व में विकासशील राष्ट्रों को एक बड़ी सफलता जनस्वास्थ्य सम्बन्धी औषधियों के उत्पादन एवं अधिग्रहण के मामले में मिली है। एच.आइ.वी. ⁄ एड्स, टी.बी. व मलेरिया, आदि रोगों से जन सामान्य की सुरक्षा के लिए औषधियों के उत्पादन के मामले में विश्व व्यापार संगठन के ट्रिप्स (TRIPs) एवं पेटेण्ट सम्बन्धी नियम अब आड़े नहीं आ सकेंगे। जनस्वास्थ्य सम्बन्धी इस प्राव॰ ाान को दोहा घोषणा पत्र में शामिल किया जाना विकासशील राष्ट्रों की एक बड़ी विजय के रूप में देखा जा रहा है।

ikpok efU=Lrjh; lEesyu & dkudqu ¼10 ls 14 flrEcj] 2003½

विश्व व्यापार संगठन का पांचवा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन कानकुन (मैक्सिको) में 10 से 14 सितम्बर, 2003 को विकसित तथा विकासशील देशों के बीच भारी मतभेदों के कारण विफल हो गया। सम्मेलन में पूरी दुनिया में कृषि का परिदृश्य बदलने के लिए 146 देशों के व्यापार व वाणिज्य मन्त्रियों के बीच गहन बातचीत चली।

इस बात में किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि बिना किसी नतीजे पर पहुंचे इस सम्मेलन की समाप्ति का विकासशील देशों ने स्वागत किया है। दूसरी ओर कानकुन में अलग–थलग पड़ गए यूरोपीय आयोग के व्यापार आयुक्त पास्कलन लेमी ने अपनी भड़ास निकालते हुए कहा कि विश्व व्यापार संगठन संकीर्ण सोच वाला संगठन बनकर रह गया है और इसके निर्णय लेने के तौर–तरीकों में फेरबदल की जरूरत है। कानकुन की असफलता से अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि राबर्ट जोएलिक ने भी निराशा व्यक्ति की। विकसित देशों की झुंझलाहट स्वाभाविक है। यद्यपि विकसित देशों ने वार्ता को अपने पक्ष में मोड़ने और विकासशील देशों में फूट डालने के लिए भी सारे हथकण्डे अपनाए, किन्तु वे कृषि क्षेत्र में सफल नहीं हो पाए। अमेरिकी और यूरोपीय चालों को धता बताते हुए भारत की अगुवाई में ब्राजील, चीन और दक्षिण अफ्रीका सहित 21 विकासशील देशों ने कृषि पर भारी सब्सिडी के खिलाफ विकसित देशों की नीति विरोध में अपनी बात बहुत तर्कसंगत और मुखर रूप से सामने रखी। इससे पूर्व भी सिएटल बैठक में विकासशील देशों ने अपनी आवाज उठाई थी, किन्तुत कानकुन में पहली बार उनकी आवाज असरदार साबित हुई और सम्पन्न राष्ट्रों का एकाधिकार टूटा। कानकुन बैठक का एक और सकारात्मक पक्ष है। पहले विकसित देश अपनी चतुराई से अपने हितों को सर्वोपरि रखने वाले निर्णय

पारित कराने में सफल हो जाते थे। इस बार एक सन्तुलन की स्थिति देखने को मिली और विकसित देशों को विकासशील देशों के हितों के सामने झुकने को बाध्य होना पड़ा। सम्पन्नता के मामले में एक–दूसरे से समान होने के कारण धनी देशों में अकसर एक राय होती है। वहीं विकास के विभिन्न स्तरों पर होने के कारण विकासशील देशों के हित और उनकी वरीयता अलग हुआ करती है, इसलिए प्रायः वे किसी साझा मुद्दे पर एकमत नहीं हो पाते। पहली बार कानकुन में बड़े विकासशील देशों ने साझा भूमि तैयार की और अपने हितों को ऊपर रखा।

वास्तव में विश्व अर्थव्यवस्था की भलाई के नाम पर विकसित देश निर्धन राष्ट्रों का शोषण करने वाली नीतियां बनाना चाहते हैं। आयात–निर्यात नीतियों से लेकर कृषि क्षेत्र में सम्पन्न राष्ट्र ऐसी नीतियां व शर्तें थोपना चाहते हैं, जिन्हें यदि माना गया तो विकासशील देशों के विकास द्वार बन्द होने का खतरा है। बहुत दिनों से विकसित देश दुनिया के अन्य विकासशील देशों को जबर्दस्ती व्यापार सन्धियों की कड़वी खुराक निगलने को विवश कर रहे थे। कानकुन की विफलता से उनकी इस मनोवृति पर रोक लगेगी। कानकुन का जो मसौदा बनाया गया था, उसमें विकासशील देशों के हितों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। कृषि सब्सिडी खत्म करने के अलावा कृषि उत्पादों की बाजार पहुंच के मामले में भी यह मसौदा विकासशील देशों के लिए काफी कठोर था। साथ ही विकासशील देशों में शुल्क दरों में कटौती के जिस त्रिस्तरीय पैकेज की पेशकश की गई, उसके कारण कृषि शुल्क दरों में भारी कटौती करनी पड़ती। कृषि क्षेत्र पर निर्भरता के कारण विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर इससे बुरा असर पड़ता। पश्चिमी जगत को यह बताना बहुत जरूरी था कि जब तक कृषि पर एक निश्चित समयावधि के भीतर सभी देश सब्सिडी खत्म नहीं करते हैं, तो किसी तरह की भावी वार्ता या उसके परिणाम तक पहुंचने की आशा व्यर्थ है। उरूग्वे दौरे के बाद के दस वर्षों में अमेरिका और यूरोपीय महासंघ में कृषि सब्सिडी में कमी आने के बजाय और अधिक वृद्धि ही हुई है। इस अन्तराल में दोनों की कुल कृषि सब्सिडी 180 अरब डॉलर से बढ़कर 300 अरब डॉलर हो गई। विकासशील देशों को मुक्त व्यापार और खुले बाजार के लिए बाध्य करने के कारण तीसरी दुनिया के लाखों किसान भुखमरी के कगार पर पहुंच गए हैं।

कानकुन मसौदा स्वीकृत हो जाने का अर्थ था कि विकसित देश कृषि पर सब्सिडी जारी रखते, वे निर्यात पर सब्सिडी खत्म करने की प्रतिबद्धता से छूट जाते, कहीं विकासशील देशों पर और अधिक आर्थिक शुल्क लगाया जाता। जी–21 के देशों की अपूर्व एकता के कारण अमेरिका और यूरोपीय महासंघ अपनी मनमानी करने में विफल रहे। भारतीय वाणिज्य मंत्री अरूण जेटली का यह कहना अक्षरशः सत्य है कि एक खोटे सौदे से अच्छा है कि कोई सौदा ही न हो। बहुपक्षीय व्यापार आपसी लेन–देन पर ही टिका है। पश्चिम की कृषि को भारी सब्सिडी दिया जाना उन्मुक्त व्यापार की सबसे बड़ी बाधा है। सबकी उन्नति और प्रगति के समान अवसर के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता का होना आवश्यक है। साझा हितों की रक्षा की उम्मीद अब जिनेवा बैठक पर ही टिकी हुई है, किन्तु भविष्य की वार्ताएं सिएटल और कानकुन के रास्ते न जाएं, इसके लिए विकसित देशों की अपनी हठधर्मिता का त्याग कर वैश्विक अर्थव्यवस्था के हितों को सर्वोपरि रखना होगा।

इस सम्मेलन में नेपाल और कम्बोडिया को सदस्यता प्रदान की गई। इस प्रकार विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों की कुल संख्या 148 हो गई।

NBk efU=Lrjh; lEesyu&gkxdkx ¼phu½ ¼13&18 fnlEcj] 2005½

13 से 18 दिसम्बर, 2005 तक सम्पन्न विश्व व्यापार संगठन के हांगकांग मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में सदस्य देशों के 300 से अधिक मन्त्री तथा उनके साथ 6000 से अधिक अधिकारियों ने भाग लिया। अमरीका के प्रतिनिधिमण्डल में 356 व्यक्ति थे जबकि यूरोपीय संघ ने 832 सदस्यों वाला प्रतिनिधिमण्डल

भेजा। कानकुन में यह संख्या क्रमशः 212 और 651 थी। दूसरी तरफ सबसे पिछड़े विकासशील देशों में 48 एसे देश थे जिनके प्रतिनिधिमण्डल में दस से भी कम सदस्य थे।

सम्मेलन के अन्तिम दिन सदस्य देशों में एक मसौदे पर सहमति बनी। सम्मेलन में सहमति बनना आवश्यक था क्योंकि कानकुन में हुआ पिछला सम्मेलन विफल रहा था। इसलिए ले–देकर मध्य मार्ग निकाला गया। विकसित देश अपने आग्रह कम करने और कुछ रियायतें देने हेतु तैयार हुए। कृषि क्षेत्र को राजसहायता खत्म करने के साथ औद्योगिक वस्तुओं पर तटकर में कमी पर सहमति बनी और सबसे पिछड़े देशों को सहायता देने का वादा किया गया।

gkxdkx ?kks"k.kk i= ds iew[k fcUnq fuEukfdr gS %

- कृषि निर्यात छूट 2013 तक खत्म करेंगे।
- निर्धन देशों को विकास पैकेज।
- समझौते की शर्तें 30 अप्रैल, 2006 तक तय कर ली जाएगी।
- अल्पविकसित देशों के लिए कोटा शुल्क निर्यात एसडीसी पैकेज।
- विकासशील देशों को कृषि योजनाओं पर होने वाले सरकारी खर्च में कटौती जरूरी नहीं।
- कृषि योजनाएं विश्व व्यापार संगठन की परिधि से बाहर।
- औद्योगिक शुल्कों में कटौती के लिए स्विस फॉमूला बढ़ाने का प्रस्ताव।
- श्रम प्रधान उद्योगों की वस्तुओं पर विकसित देशों में ऊंचे शुल्कों को खत्म करने का प्रस्ताव।
- सेवा क्षेत्र में बाजार खोलने की विवशता या दबाव की आशंका नहीं।
- सेवा निर्यात के लिए आर्थिक आवश्यकता की जांच सम्बन्धी शर्त कम करने या खत्म करने के निर्देश।

हांगकांग में विकासशील देशों की एकजुटता बहुत काम आई। भारत समेत विकासशील देशों के लिए राहत की बात यह है कि कुछ कृषि उत्पादों को विशिष्ट उत्पाद (एसपी) में शामिल करने के साथ ही इनके लिए विशेष सुरक्षा उपायों को मसौदे में शामिल कर लिया गया। इससे विकासशील देश भाव गिरने पर सुरक्षात्मक उपाय कर सकेंगे।

सम्मेलन में खासकर कृषि क्षेत्र में राजसहायता खत्म करने पर सबसे ज्यादा खींचतान हुई। अमरीका अपने कपास किसानों को राजसहायता बन्द करने की घोषणा पर मजबूर हुआ। अमरीका की कपास राजसहायता को विश्व व्यापार संगठन अनुचित ठहरा चुका है। अमरीका में निर्यातकों को दी जाने वाली कर छूट तथा अत्यधिक आयात पर डम्पिंग शुल्क लगाने की घोषणा भी विश्व व्यापार के सिद्धान्तों के खिलाफ है। कृषि को राजसहायता के मामले में तो यूरोपीय संघ अमरीका से ज्यादा दोषी है। किसानों और पशुपालकों को दी जाने वाली राजसहायता का अनुमान इस तथ्य से लगता है कि विश्व के एक सौ विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति आय से भी ज्यादा धन यूरोपीय समुदाय में एक गाय पर खर्च होता है। यही कारण है कि अमरीका तो कपास राजसहायता खत्म करने को तैयार हो गया लेकिन यूरोपीय देशों ने कृषि क्षेत्र को राजसहायता खत्म करने के लिए वर्ष 2010 तक की अवधि को कम माना। अन्ततः 2013 तक कृषि राजसहायता खत्म करने पर सहमति बनी।

lkrok efU=Lrjh; lEesyu&tsuok ¼fLoV~tjys.M½ ¼30 uoEcj&3 fnlEcj] 2009½

विश्व व्यापार संगठन का 7वां मत्रिस्तरीय सम्मेलन 30 नवम्बर से 3 दिसम्बर, 2009 को जेनेवा में संपन्न हुआ। सम्मेलन का मुख्य विषय 'विश्व व्यापार संगठन, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली और वर्तमान वैश्विक आर्थिक परिवेश'' रखा गया। सम्मेलन में 153 देशों के प्रतिनिधि तथा 53 पर्यवेक्षक देशों साथ–साथ 3000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में डब्ल्यूटीओ के मुक्त व्यापार एजेन्डे को आगे बढ़ाने में सहायक कई महत्त्वपूर्ण निष्कार्ष सामने आए। सम्मेलन में जोर देकर कहा गया कि मुक्त व्यापार से रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा विकास दर को गति मिल सकती है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी से भलीभांति निपटा जा सकता है। डब्ल्यूटीओ के महानिदेशक पास्कल लामी ने जोर देकर कहा कि नए अन्तर्राष्ट्रीय व्यपारिक समझौते से सभी 153 सदस्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं को विकास सम्बन्धी गतिशीलता तथा भविष्य के आर्थिक झटकों से बचने में मदद भी मिल सकती है। अतः मुक्त व्यापार समझौते को सर्वोच्च सूची में रखना चाहिए।

वस्तुतः डब्ल्यूटीओ के इस मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में दोहा दौर की वार्ताओं को पूर्णता की ओर ले जाना, आर्थिक सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाना एवं बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की कार्यप्रणाली को कारगर बनाना सुनिश्चित किया गया। इन तीनों निष्कर्षों को व्यावहारिक रूप देना कोई सरल कार्य नहीं है। दोहा दौर की व्यापार वार्ता को वर्ष 2010 के अन्त तक पूरा करना एक चुनौतिपूर्ण कार्य रहा। गौरतलब है कि आठ वर्ष पहले कतर की राजधानी दोहा में डब्ल्यूटीओ की व्यापार वार्ता शुरू की गई थी और उसे वर्ष 2004 में समाप्त होना था, लेकिन उस वार्ता में उठे कई जटिल व्यापार मुद्दों पर तभी से विचार–विमर्श किया जा रहा है। इसमें सभी देशों से अपने बाजारों को एक–दूसरे के लिए खोलने की बात भी कही गयी। परन्तु अमरिका और यूरोपीय समुदाय (ईयू) की स्वार्थपूर्ण गुटबन्दी ने कृषि एवं औद्योगिक टैरिफ कटौती के लिए फार्मूले पर सहमति नहीं होने दी।

अब भी अमरीका और दूसरे विकसित देश अपनी समृद्धि के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहते। वे अपने किसानों और छोटे उद्योगों को संरक्षण और सब्सिडी जारी रखना चाहते हैं लेकिन भारत के कृषि बाजार को खोलने की मांग कर रहे हैं। यदि हम पिछले 15 वर्षों में डब्ल्यूटीओ के अन्तर्गत विकासशील देशों को प्राप्त लाभों का मूल्यांकन करें, तो पता चलता है कि विश्व के विकासशील देशों को सार्थक लाभ प्राप्त नहीं हुआ हैं।

जहां तक वैश्विक आर्थिक सुधार आगे बढ़ाने और बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की कार्यप्रणाली को कारगर बनाने का प्रशन है, यह स्पष्ट है कि विकसित देश आर्थिक सुधारों एवं कारगर बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था से पीछे हट रहे हैं। यह विडम्बना ही है कि कल तक जो विकसित देश संरक्षण रहित वैश्वीकरण की बुनियाद को मजबूत करने की बात कर रहे थे, आज वे ही विकसित देश अपने डूबते हुए उद्योग, व्यापार एवं रोजगार बचाने के लिए संरक्षणवादी कदम उठाकर वैश्वीकरण को खोखला करते हुए दिखाई दे रहे हैं। भारत को भी दोहा दौर की व्यापार वार्ता को गति देने पर ध्यान देना होगा। निश्चित रूप से विकसित देशों द्वारा सर्विस सेक्टर, आउटसोर्सिंग, वित्तीय सेवाओं और भारतीय युवाओं के अप्रवास पर उदार रवैया अपनाए जाने पर भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी लाभ होगा। किसानों के हितों एवं संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए भारत को अन्य व्यापार शर्तों पर कुछ नरमी लाते हुए दोहा वार्ता को आगे बढ़ाने के लिए अपने कदमों को आगे बढ़ाना चाहिए। हम आशा करें कि जेनेवा में आयोजित डब्ल्यूटीओ के इस मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन से एक ओर आर्थिक सुधार, बहुपक्षीय व्यापार, वित्तीय स्थिरता और वैश्विक मन्दी से निपटने के प्रयासों को सही दिशा मिलेगी, वहीं दूसरी ओर विकसित देश विकासशील देशों की खुशहाली सम्बन्धी अपने व्यापारिक वादों को निभाने के लिए जवाबदेह वैश्वीकरण की डगर पर आगे बढ़ेंगे।

2-15 fo'o 0;kikj lxBu % eY;kdu

विश्व व्यापार संगठन के आविर्भाव ने नई विश्व व्यवस्था के अभ्युदय की सम्भावनाओं को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया है। विश्व आर्थिक व्यवस्था को पहली बार एक औपचारिक सुसंगठित कानूनी सुरक्षा चक्र प्राप्त हुआ है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे निकायों को जहां सदस्य देशों के

आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने सम्बन्धी उस प्रकार का कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं है जैसा विश्व व्यापार संगठन को उरुग्वे चक्र समझौते के परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ है।

विश्व व्यापार संगठन की भूमिका को देखते हुए विभिन्न सदस्य देश अपनी संवैधानिक व्यवस्थाओं के प्रावधानों में धीरे–धीरे परिवर्तन लाने लगे हैं। विभिन्न राष्ट्र व्यापार समझौते के प्रावधानों के अनुरूप अपनी आर्थिक नीतियों को बदलने का प्रयास कर रहे हैं। यही कारण है कि हमारे देश के सीमा शुल्क कानून, पेटेण्ट कानून तथा बीच कानून इत्यादि में उरुग्वे चक्र के समझौते के अनुरूप परिवर्तन किए जा रहे हैं। अब विभिन्न देशों की सरकारें यह निर्णय लेने को स्वतन्त्र नहीं होंगी कि नागरिकों के किन समूहों को, अर्थव्यवस्था के किन हिस्सों को तथा देश के किन क्षेत्रों को अनुदान देकर उनकी तरक्की के मार्ग प्रशस्त किए जाएं। आर्थिक सहायता और अनुदान की मात्रा और उनके स्वरूप का निर्धारण राष्ट्रीय सरकार अपनी स्वेच्छा और विकास की आवश्यकताओं से नहीं कर सकती, उसे 'विश्व व्यापार संगठन' के प्रावधानों के अन्तर्गत चलना होगा।

विश्व व्यापार संगठन के समर्थक इसके निम्नांकित 10 लाभ (10 Benefits of the WTO Trading System) गिनाते हैं :

1. यह व्यवस्था शान्ति के प्रसार में सहायक है।
2. इसके माध्यम से विवादों का सृजनात्मक हल खोजा जाता है।
3. इसके नियम सभी के जीवन को सहज बनाते हैं।
4. मुक्त बाजार जीवन निर्वाह को सस्ता बनाता है।
5. यह उत्पादों और गुणवत्ता के विकल्प उपलब्ध कराता है।
6. व्यापार को प्रोत्साहन देने से आय बढ़ती है।
7. व्यापार संवृद्धि आर्थिक विकास दर बढ़ती है।
8. इसके मूल सिद्धान्त जीवन को दक्ष बनाते हैं।
9. यह सरकारों को लाबिइंग से संरक्षण प्रदान करते हैं।
10. इसकी व्यवस्था अच्छे शासन को प्रोत्साहित करती है।

आलोचकों के अनुसार विश्व व्यापार संगठन एक असाधारण और अपूर्व संगठन है। यह विश्व व्यापार के पुलिसमैन की भूमिका अदा करता है। यह एक ऐसा मंच है जो तथाकथित नियम आधारित व्यवस्था के तहत किसी भी और प्रत्येक व्यापारिक मामले पर विचार कर सकता है और अपनी विवाद निपटान प्रणाली के तहत जवाबी कदम उठा सकता है। यह एक विकराल व्यवस्था है जिसको विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने हथियार के रूप में कायम किया है।

विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत जिस अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो रहा है उसमें बहुराष्ट्रीय निगमों के अधिकार और कार्यक्षेत्र की असीमित बढ़ोतरी अन्तर्निहित है। परम्परागत 'गैट' प्रावध ानों में बहुराष्ट्रीय निगमों पर विकासशील देशों ने कई ढंग से प्रतिबन्ध लगा रखे थे यही कारण है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने टोक्यो चक्र वाले गैट को उरुग्वे चक्र वाले विश्व व्यापार संगठन में बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आलोचकों के अनुसार विश्व व्यापार संगठन का निर्माण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए विश्व विजय का प्रतीक है। कहने के लिए तो विश्व व्यापार संगठन की स्थापना बहुपक्षीय सिद्धान्त के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए की गई है, लेकिन हकीकत यह है कि यह संगठन सामूहिक और अलग–अलग तौर पर विकासशील देशों के अर्थतन्त्र, समाज और राजनीति पर प्रभुत्व जमाने का माध्यम है।

विश्व के 49 पिछड़े देशों में विश्व की 10.7 प्रतिशत आबादी रहती है, परन्तु विश्व के कुल उत्पादन में उनका हिस्सा सिर्फ 0.5 प्रतिशत है और विश्व व्यापार संगठन के पक्ष में दलीलों के बावजूद विश्व व्यापार में उनका हिस्सा गिरता गया है और आज 0.4 प्रतिशत के बराबर है।

2-16 vkfl;ku % iLrkouk

द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद क्षेत्रीय सहयोग के संगठनों की भरमार रही है। इन क्षेत्रीय संगठनों की स्थाना के उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान करना अथवा क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था को पुख्ता करना है। कतिपय विचारकों की मान्यता है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों में समानता रखने वाले देशों का पारस्परिक संगठन विश्वव्यापी संगठन की अपेक्षा शान्ति बनाए रखने की दिशा में अधिक सफल हो सकता है। क्षेत्री संगठनों के माध्यम से स्वतन्त्र एवं सम्प्रभु राष्ट्र क्षेत्रीय हितों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद निर्मित क्षेत्रीय संगठनों को मोटे रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रथम, वे संगठन जो सैनिक सन्धि की भांति है, जैसे, नाटो, सेण्टो, सीटो, वारसा पैक्ट, आदि। द्वितीय, वे संगठन जिनका उद्देश्य आर्थिक विकास, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और जनकल्याण के क्षेत्र में कार्य करना है। ऐसे संगठनों में अरब लीग, आसियान, सार्क, आदि प्रमुख है। आसियान और सार्क एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के अनुठे प्रयास हैं। आसियान' दक्षिण–पूर्वी एश्यिा में तथा 'सार्क' दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के लिए कार्यरत संगठन है।

2-17 vkfl;ku % i"BHkwfe

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से दक्षिण–पूर्वी एशिया, संसार के सर्वाधिक विस्फोटक और महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत खीन के दक्षिण में तथा भारतीय उपमहाद्वीप के पूरब में स्थित देश बर्मा (म्यांमार), थाईलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्पूचिया, वियतनाम, फिलिपीन्स, आदि सम्मिलित किए जाते हैं।द्वितीय महायुद्ध के बाद यह क्षेत्र विश्व राजनीति में महव्तपूर्ण भूमिका निभारहा है तथा पश्चिमी एशिया के समान ही महाशक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इस क्षेत्र में तीन आधारभूत परिवर्तन दृष्टिगत हुए हैं : प्रथम, यूरोपीय प्रभुत्व का क्रमशः अवसान होना, द्वितीय, यहां के देशों का स्वतन्त्र होना, एंव तृतीय, चीन के प्रभाव की इस क्षेत्र में वृद्धि होना ।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 'दक्षिण–पूर्वी एशिया' एक नया शब्द है जिसका प्रयोग द्वितीय महायुद्ध; से पूर्व नहीं होता था। इस शब्द के प्रचलन का तात्कालिक कारण अगस्त 1953 में क्यूबेक सम्मेलन के द्वारा एडमिरल माउण्टबैटन की अधीनता में 'दक्षिण–पूर्वी एशिया कमाण्ड' की स्थापना था। प्रारम्भ में यह उद्बोधन उन देशों के लिए था जो भारत के पूरब और चीन के दक्षिण–पश्चिम में स्थित हैं जिनकी संख्या छः थी। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त नए सम्प्रभु राष्ट्रों के उदय से इससंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। आज अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के दस राष्ट्र–म्यांमार, ब्रूनेई, इण्डोनेशिय, कम्पूचिया, लाओस, मलेशिय, फिलिपाइन, संगापुर, थाईलैण्ड तथा वियतनाम इस क्षेत्र में स्थित हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण–पूर्वी एशिया का कई कारणो से बड़ा महत्व रहा हैः प्रथम, यह क्षेत्र सामरिक और भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। यह हिन्द महासागर को प्रशान्त महासागर से मिलाने वाले समुद्री मार्ग पर स्थित है और एशिया व ऑस्ट्रेलया के मध्य तक प्राकृतिक पुल का सा कार्य करता है। द्वितीय, आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत समृद्ध है। चावल, टिन, रबड़ और पेट्रोल यहां प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। म्यांमार, थाईलैण्ड और हिन्दचीन मं अन्न का विशाल उपजाऊ क्षेत्र है जिसे एशिया का 'चावल का कटोरा' कहा जाता है। मलाया में इतना अधिक टिन और रबड़

है कि वह अकेल संसार की आवश्यकात पूर्ति कर सकता है। इण्डोनेशिया, सारावाक और उत्तरी ब्रनेई में तेल की विशाल भण्डार हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से इस क्षेत्र की विशिष्टता का कारण यहां प्रभुता पाने के लिए साम्यवादी चीन का प्रबल प्रयास तथा इसे रोकने के लिए पश्चिमी शक्तियों के प्रयत्न हैं। यहां केसभी देशों में चीनियों की बहुत बड़ी संख्या निवास करती है और चीन इनके माध्यम से सभी देशों में अपना मनचाहा साम्यवादी शासन स्थापित करना चाहता है। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद यहां शक्ति शून्यता की स्थिति उत्पन्न होने लगी। ब्रिटेन द्वारा द.पू. एशिया से अपनी सैनिक छावनियां और अड्डे हटाने की घोषणा से इस क्षेत्र के देशों की सुरक्षा का प्रश्न उपस्थिति हुआ। अमरीका और चीन ब्रिटेन का स्थान लेने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु उनकी विस्तारवादी नीति से द.पू. एशिया के राष्ट्र सशंकित एवं चिन्तित होने लगे। इस स्थिति का प्रतिकार करने के लिए दो सुझाव दिए गए : प्रथम, द.पू. एशिया को 'तटस्थ क्षेत्र' बना दिया जाए और चीन सहित सभी देश इसकी तटस्थता को बनाए रखने की गारण्टी दें। दूसरा, आर्थिक सहयोग को बढ़ावा दिया जाए। यहां के सभी राष्ट्र एक–दूसरे के साथ सहयोग करते हुए अपना आर्थिक संगठन इतना सुदृढ़ बनायें कि कोई भी आक्रमणकारी यहां किसी भी देश को हानि नहीं पहुंचा सके।

nf{k.k iwoh ,f'k;k ^{k=h; lg;kx* dh vkj

दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्रीय सहयोग को पुख्ता करने के लिए द्वितीय महायुद्ध के बाद अनवरत प्रयत्न किए जाते रहे हैं। द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'इकाफे' (ECAFE) की स्थानपा कर इस एशियाई भू भाग की आर्थिक विकास की समस्याओं को रेखांकित कर दिया थ। 1954 में सीटो (SEATO) की स्थाना से इस क्षेत्र की सामूहिक सुरक्षा एवं आर्थिक साधनों के लिए विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया। किन्तु सीटो एक सैनिक सन्धि का निर्माण करने वाला संगठन था जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रलिया पाकिस्तान, अमरीका, आदि देश भी भागीदार थे। वी.के. कृष्णमेमन के शब्दों में, ''सिटो सुरक्षा का क्षेत्रीय संगठन नहीं है, अपितु ऐसे विदेशी लोगों का संगठन है जिन्हें इस क्षेत्र में अपने न्यस्त स्वार्थों की रक्षा करनी है।'' आगे चलकर 'कोलम्बो योजना' ने नकनीकी–सांस्कृतिक सहयोग के लिए जमीन तैयार की और 1959 में 'आसा' (AQssociation of South-East Asian States) के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार की गयी। 1967–68 में ब्रिटेन ने स्वेज के पूरब से अपनी सेनाओं का वापस बुला लेने की घोषणा की और चनी में महान् सांस्कृतिक क्रान्ति के विस्फोट के साथ इस क्षेत्र में अपने सामरिक हितों के लिए पश्चिमी शक्तियां व्यग्र होने लगीं।

2-18 vkfl;ku dk fuekZ.k

'एसियन' या 'आसियान' का पूरा नाम 'दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ' (Association of South-East Asian Nations-ASEAN) है। यह इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड का एक प्रादेशिक संगठन है। 1967 में दक्षिण–पूर्वी एशिया के पांच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से 'आसियान' नामक असैनिक संगठन का निर्माण किया और 8 अगस्त 1967 को बैंकाका में एक सन्धि ा–पत्र पर हस्ताक्षर कर इसके निर्माण की औपचारिक घोषणा की। बाद में 1984 में ब्रूनेई भी इसका सदस्य बना। प्रारम्भ में वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया तथा म्यांमार को प्रेक्षक का दर्जा प्रदा किया गया थ्ज्ञा। 1995 में वियतनाम को तथा 30 अप्रैल 1999 को कम्बोडिया का पूर्ण सदस्यता प्रदान कर दी गई इसके साथ ही आसियान की सदस्य संख्या अब 10 हो गई है। आसियान के मौजूदा 10 सदस्य राष्ट्रों में इण्डोनेशिय, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ब्रूनेई, वियतनाम, लाओस, म्यांमार एवं कम्बोडिया सम्मिलित हैं। आसियान देशों ने भारत को अपना आंकिशक सहयोगी बना यिा है। 24 जुलाई, 1996 को

भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बना लिया गया है। रूस और चीन को भी पवूर्ण संवाद सहभागी का स्तर प्रदान किया गया है।

आसियान का केन्द्रीय सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया) में है और उसका अध्यक्ष महासचिव होता है। महासचिव का पद प्रति दो वर्ष के लिए प्रत्येक देश को जाता है और देश के चुनाव का आधार अकारादि क्रम है। सचिवालय के ब्यूरो निदेशकों तथा अन्य पदों की भर्ती तीन वर्ष बाद होती है।

आसियान के शिखर सम्मेलन सार्ककी भांति अधिक नहीं हुए हैं। पहला शिखर सम्मेलन 1976 में बाली (इण्डोनेशिया) में आयोजित हुआ। 1987 में मनीला में सम्पन्न तीसरे शिखर सम्मेलन में तय किया गया कि प्रति पांच वर्ष बाद शिखर सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। परिणामस्वरूप 1942 में सिंगापुर में चौथा शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में तय किया गया कि तीन वर्ष में एक सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। वर्ष 2001 में यह निर्णय लिया गया कि आसियान शिखर सम्मेलन वर्ष में बा बार अवश्य आयेजित कियाजाय दिसम्बर 2008 में आसियान चार्टर अस्तित्व में आया, जिसके अन्तर्गत वर्ष में दो बार आसियान शिखर बैठक आयोजित किये जाने का प्रावधान किया गया।

2-19 vkfl;ku dk Lo:i ,oa mn~n';

आसियान के दसों सदस्य राष्ट्रों में विभिन्न भाषा, धर्म, जाति, संस्क1ति, खान–पान, रहन–सहन वाले लोग विास करते हैं, इन देशें की औपनिवेशिक विरासत, ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन मूल्यों में भिन्नता है तथापि उनमें कतिपय चुनौतियों काक सामना करने की साझी समझा भी है। इन देशों के सम्मुख जनसंख्या विस्टोट, निर्धनता, आर्थिक शोषण, सुरक्षा आदि की समान चुनौतियां हैं जिन्होंने इन्हें क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग पर चलने के लिए विवश कर दिया है।

आसियान के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य है द.पू. एशिया में आर्थिक प्रगति का त्वरित करना और उसके आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखना। मोटे तौर पर इसके निर्माण का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में परस्पर–सहायता करना तथा सामूहिक सहयोग से विभन्न साझी समस्याओं को हल ढूंढना है जो इसके निर्माण को समय आसियान घोषणा में स्पष्ट रूप से लिखित हैं। इसका ध्येय इस क्षेत्र में एक साझाा बाजार तैयार करना और सदस्य देशोंके बीच व्यापार को बढ़ावा देना है। 14 दिसम्बर, 1987 को आसियान का तीसार शिखर सम्मेलन मनीला में हुआ। दो दिवसीय शिखर सम्मेलपन के अन्त में आसियान देशों ने अपासी व्यापार बढ़ाने हेतु चार समझौतों पर हस्ताक्षर किए।

आसियान क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग पर बल देने वाला संगठन है, इसका स्वरूप कदापि सैनिक नहीं है। सदस्य राष्ट्र 'सामूहिक सुरक्षा' जैसी किसी कठोर एंव अनिवार्य शर्त से बंधे हुए नहीं हैं। यह किसी महाशक्ति से प्रोत्साहित, प्रवर्तित एवं सम्बद्ध नहीं है। इसकी सदस्याता उन सभी दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों के लिए खुली है जो इसके लक्ष्यों से सहमत हैं।

2-20 vkfl;ku dk dk;Z ,oa Hkfedk

आसियान के कार्यों का क्षेत्र काफी व्यपाक है। यह आज समस्त राजीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृ1तिक, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में कार्यरत है।इसके सदस्य देश अपनी वैयक्ति कार्य प्रणालियों को क्षेत्रीय संगइन द्वरासुलझाने के लिए प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से सम्बन्धित स्थायी समिति ने अनेक परियोजनाएं बनायी हैं। जिनका उद्देश्य जनसंख्या नियन्त्रण एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन, दवाइयों के निर्माण पर नियन्त्रए, शैक्षणिक, खेल, सामाजिक कल्याण एवं राष्ट्रीय व्यवस्था में संयुक्त कार्य–प्रणाली को महत्व देना है। 1969 में संचार व्यवस्था एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ने के लिए एक समझौता

किया गया जिसके अन्तर्गत आसियान के सदस्य देश रेडियो एवं दूरदर्शन के माध्यम से एकदूसरे के कार्यक्रमोंका परस्पर आदान–प्रदान करते हैं। पर्यटन के क्षेत्र में आसियान ने अपना एक सामूहिक संगठन 'आसियण्टा' स्थापित किया है जो बिना 'वीसा' के सदस्य राष्ट्रों में पर्यटन की सुविधा प्रदान करता है। आसियान देशों ने 1971 मं हवाई सेवाओं के व्यापारिक अधिकारों की रक्षा एंव 1972 में फंसे जहाज की सहायता पहुंचाने के सम्बन्धित समझौते पर हस्ताक्षर किए। आसियान ने खाद्य सामग्री के उत्पादन में प्राथमिकता देने के लिए किसानों को अर्वाचीन तकनिीकी शिक्षा देने के कुछ कदम उठाए हैं जो विशेषकर गन्न, चावाल तथा पशुपालन में सहायक होते हैं।

प्राथमिकता के आधार पर सीमित वस्तुओं के 'स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र' (साझा बाजार) स्थापित करने के लिए भी आसियान देश प्रयत्नशील हैं। आसियान देशों में आपसी निर्यात एवं आयात उनके सीमिति बाजार का विस्तार तथा विदेशी मुद्रा की बचत करेगा। इसके अतिरिक्त, आसियान वाणिज्य व उद्योग संघो के महासंघ के एजेण्डा पर मुख्य निर्यातकों में आसियान देशों के संयुक्त बाजार एवं व्यपार का लक्ष्य रखा जा चुका है।

1976 में पारस्परिक सहयोग को बढ़ो के सन्दर्भ में निम्नांकि तीन सुझाव रखे गए (1) बाहरी आयात कम करके सदस्य राष्ट्र पारस्परिक व्यापार को महत्व देंगे, (2) अधिशेष, खाद्य एवं ऊर्जा शक्ति वाले राष्ट्र इन क्षेत्रों में अभाव सेपीड़ित आसियान देशों को मदद देंगे तथा (3) आसियान के देश व्यपार को अधिकाधिक क्षेत्रीय बनाने का प्रयास करेंगे।

बाली शिखर सम्मेलन में ही आसियान राष्ट्रों के प्रधानों ने क्षेत्रीय सहयोग में आसियान की भूमिका पर एक ठोस रूपरेखा प्रस्तुत की। एक घोषणा एवं समझौते में इण्डोनेशिया एवं फिलिपीन्स के राष्ट्रपति और सिंगापुर, मलेशिया एवं थाईलैण्ड के प्रधानमन्त्रियों ने यह घोषणा की कि आसियान का कार्य सिर्फ आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मामलों तक ही सीमित रहेगा तथा उसमें 'सुरक्षा' को सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

जनवरी 1992 में चौथे शिखर सम्मेलन (सिंगापुर) में 'आसियान' ने नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग की जिसमें विकासशील और विकसित देशों के बीच कोई भेदभाव न रहे। आसियान देशों के नेताओं ने अपना एक अलग मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने का प्रस्ताव भी रखा। सम्मेलन के अन्त में जारी घोषणा–पत्र में दक्षिण–पूर्वी एशिया को शान्ति क्षेत्र बनाने पर जोर दिया गया। इससे पूर्व एशिया को सदस्य देशों के बीच क्षेत्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए करों में कमी के बारे में एक समझौता हुआ। इस समझौते को सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, फिलिपीन्स और ब्रूनेई के वित्त मन्त्रियों ने मिलकर तैयार किया था। इसमें साझा प्रभावी का योजना बनाने की बात कही गयी है। इसका मकसद दक्षिण–पूर्व एशिया में 15 सालों के अन्दर एक मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाया जाना है।

आसियान संगठन के देशों ने उन 15 उत्पादों की सूची भी तैयार कर ली है जिनमें मुक्त व्यापार क्षेत्र के अन्तर्गत, समान तटकर योजना के तहत लाया जाएगा। इसमें तेल, सीमेण्ट, रसायन उर्वरक, प्लास्टिक, लुग्दी और रबड़ का सामान शामिल है। इन वस्तुओं पर तटकर में कमी लाई जाएगी।

पूंजी बाजार में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए सदस्य देश पूंजी और विशेष संसाधनों की स्वतन्त्र आवाजाही प्रोत्साहित करेंगे। 'आसियान' ने कृषि उत्पादन के व्यापार को बढ़ावा देने के लिए भी संयुक्त प्रयास करने का फैसला किया है।

दिसम्बर 1995 में आयोजित पांचवें शिखर सम्मेलन (थाईलैण्ड) में शिखर नेताओं ने सन् 2003 तक आसियान को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने का फैसला किया। आसियान के शिखर सम्मेलन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण निर्णय बौद्धिक सम्पदा से सम्बन्धित समझौता है। इस समझौते से समूह के सदस्य देशों को विश्वास है कि वे विदेशी निवेश को आकर्षित करने में कामयाब होंगे तथा साथ ही तकनीक के हस्तान्तरण

पर भी जोर दे सकेंगे। एक अन्य समझौता नाभिकीय शस्त्रों को रखने, उनका उत्पादन करने अथवा इन्हें प्राप्त करने को प्रतिबन्धित रखने के सिलसिले में भी सम्पन्न हुआ। समझौते के तहत उत्तर में म्यांमार एवं वियतनाम तथा दक्षिण में फिलिपीन्स व इण्डोनेशिया तक एक नाभिकीय शस्त्रविहीन क्षेत्र बनाने की व्यवस्था है।

आसियान का छठा शिखर सम्मेलन 15–16 दिसम्बर, 1998 को इनोई (वियतनाम) में सम्पन्न हुआ। दो दिन चले इस शिखर सम्मेलन में दक्षिण–पूर्व एशिया में स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र (ASEAN Free Trade Area - AFTA) को पूर्व निर्धारित समय सीमा से पहले ही प्रभावी करने पर सहमति रही। संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया कि आसियान के छः पुराने सदस्य ब्रूनेई, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर व थाईलैण्ड क्ष्ज्ञेत्र में पूर्ण स्वतंत्र व्यापार के लक्ष्य को पूर्व निर्धारित सन् 2003 के स्थान पर 2002 तक ही प्राप्त कर लेंगे। आसियान के पूर्व निर्धारित ''विजन–2020'' की दिशा में पहले व्यावहारिक कदम के रूप में 1999–2004 ई. की अवधि के लिए स्वीकृत इस 'हनोई कार्य योजना' के तहत क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण, व्यापार उदारीकरण व वित्तीय सहयोग वृद्धि के लिए विभिन्न उपाय निर्धारित किए गए हैं।

नवम्बर 1999 में सम्पन्न आसियान नेताओं के सम्मेलन में इस बात पर विशेष रूप से बल दिया गया है कि आसियान देशों को एक समूह के रूप में वित्तीय व आर्थिक सहयोग के लिए गम्भीरता से प्रयास करने चाहिए। इस सन्दर्भ में चीन–आसियन सम्बंधों का विस्तार इस सम्मेलन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। चीन, कोरियाव जापान के सकारात्मक रुख बना रहा तो क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग इस भाग में नया मोड़ ले सकता है।

जुलाई 2000 में आसियान का 33वां मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन बैंकाक में सम्पन्न हुआ। बैठक का मुख्य मुद्दा था विश्व व्यापार संगठन में विकासशील देशों के हितों की रक्षा कैसे की जाए? आई.एम.एफ. तथा विश्व बैंक की नाराजगी के भय से इस प्रश्न पर खुलकर चर्चा नहीं हुई। चीन को विश्व व्यापार संघ का सदस्य बनाए जाने की अनुशंसा की गई।

नवम्बर 2001 में बादर सेरी बेगावन (ब्रूनेई) में सम्पन्न आसियान शिखर सम्मेलन में भारत के साथ आसियान की नियमित शिखर बैठक करने का निर्णय लिया गया। दस सदस्यीय आसियान अभी तक तीन गैर आसियान सदस्यों (चीन, द. कोरिया तथा जापान) के साथ ही नियमित शिखर बैठक करता रहा है। भारत अभी तक आसियान का वार्ता भागीदार होने के साथ–साथ 'आसियान रीजनल फोरम' का सदस्य रहा है। शिखर सम्मेलन में लिए गए निर्णय के तहत भारत व आसियान की शिखर बैठक 'आसियान + 1' के प्रारूप पर होगी।

दस सदस्यीय आसियान (दखिण–पूर्व एशिया देशों का संगठन) देशों का 9वां शिखर सम्मेलन 7–8 अक्टूबर, 2003 को बाली (इण्डोनेशिया) में आयोजित हुआ। इसमें सभी दस सदस्य देशों के शिखर नेताओं के अलावा भारतीय प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी, चीन के प्रधानमन्त्री वेन जियाबाओ, जापान के प्रधानमन्त्री जुनीचीरो कोइनुमी और दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति रोह यू ल्यून ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन इण्डोनेशिया की राष्ट्रपति मेघावती सुकर्णपुत्री ने किया। इस सम्मेलन में लगभग सभी नेताओं ने परस्पर सहयोग एवं सहभागिता का आव्हान किया।

dkudkM le>kSrk & **II** & दस देशों के आसियान समूह ने सन् 2020 तक मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने की राह आसान करने के लिए 7 अक्टूबर को एक महत्त्वपूर्ण समझौते पर दस्तखत किए। 'आसियान सन्धि – II' पर ये दस्तखत क्षेत्रीय समूह की शिखर बैठक की समाप्ति पर हुए। आसियान कोनकोर्ड नाम की इस सन्धि में नेताओं ने आसियान समुदाय बनाने की अपनी प्रतिबद्धता का ऐलान किया। इस समुदाय में एक आसियान सुरक्षा समुदाय, एक आसियान आर्थिक समुदाय और एक आसियान सामाजिक एवं सांस्कृतिक समुदाय की संकल्पना है।

सन्धि पर दस्तखत के बाद इण्डोनेशिया की राष्ट्रपति मेघावती सुकर्णपुत्री ने कहा कि ''हम एक ऐतिहासिक घटना के चश्मदीद बन गए हैं। यह सन्धि अगली पीढ़ी और उसके भी आगे की पीढ़ियों के लिए शान्ति, स्थायित्व और समृद्धि की सम्भावनाएं बनाएगी।'' नेताओं ने इस दस्तावेज के जरिए यह सहमति भी जताई है कि हर सदस्य देश की सम्प्रभुता बनी रहेगी, हर देश अपनी निजी विदेश नीति और रक्षा प्रबन्ध और अपने राष्ट्रीय अस्तित्व से जुड़े अधिकारों के मामलों में बाहरी दखल से मुक्त होगा। 'एक सुरक्षा समुदाय' बनाने की कोशिशों के बावजूद नेताओं ने इस बात पर जोर दिया है कि वे कोई रक्षा सन्धि, सैन्य गठबन्धन या कोई साझा विदेश नीति नहीं बनाएंगे। नेताओं ने सभी देशों की स्वतन्त्रता, सम्प्रभुता और भौगोलिक अखण्डता के प्रति सम्मान की प्रतिबद्धता दोहराई और एक–दूसरे के अंदरूरी मामलों में दखल नहीं देने, क्षेत्र के भीतर होने वाले किसी विवाद के शान्तिपूर्ण समाधान और आपसी सहयोग का भी संकल्प व्यक्त किया।

vkfl;ku d vkipkfjd f'k[kj lEesyu

	fnukd	n'k	vk;kstu LFky
प्रथम	23–24 फरवरी, 1976	इण्डोनेशिया	बाली
द्वितीय	4–5 अगस्त, 1977	मलेशिया	कुआलालम्पुर
तृतीय	14–15 दिसम्बर, 1987	फिलिपाइन्स	मनीला
चतुर्थ	27–29 जनवरी, 1992	सिंगापुर	सिंगापुर
पंचम	14–15 दिसम्बर, 1995	थाईलैण्ड	बैंकॉक
षष्ठ	15–16 दिसम्बर, 1998	वियतनाम	हनोई
सातवां	5–6 नवम्बर, 2001	ब्रुनेई	बान्दर सेरी बेगावान
आठवां	4–5 नवम्बर, 2002	कम्बोडिया	फनोम पेन्ह
नौवां	7–8 अक्टूबर, 2003	इण्डोनेशिया	बाली
दसवां	29–30 नवम्बर, 2004	लाओस	विन्टीयान
ग्याहवां	12–14 दिसम्बर, 2005	मलेशिया	कुआलालम्पुर
बारहवां	11–14 जनवरी, 2007	फिलिपाइन्स	सेबू
तेरहवां	18–22 नवम्बर, 2007	सिंगापुर	सिंगापुर
चौदहवां	27 फरवरी 1 मार्च, 2009	थाईलैण्ड	चा अम हुआहिन पाटीया
	10–11 अप्रैल, 2009		
पन्द्रहवां	23 अक्टूबर, 2009	थाईलैण्ड	चा अम हुआहिन
सोलहवां	8–9 अप्रैल, 2010	वियतनाम	हनोई
सत्रहवां	28–31 अक्टूबर, 2010	वियतनाम	हनोई
अठारहवां	7–8 मई, 2011	इण्डोनेशिया	जकार्ता
उन्नीसवां	17–19 नवम्बर, 2011	इण्डोनेशिया	बाली

vkfl;ku dh Hkfedk dk eY;kdu

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कतिपय विद्वानों का मत है कि मोटे तौर पर 'आसियान' का कार्य एवं भूमिका मन्द एवं निराशाजनक रहीहै। आसियान की तुलना 'यूरोपियन साझा बाजार' से करते हुए उनका विचार है कि यह संगठन सदस्य राष्ट्रों में वह आर्थिक एवं अन्य प्रकार का सहयोग तीव्र गति से नहीं बढ़ा पाया है। आर्थिक सहयोग में 'आसियान' की गति मन्द होने का कारण सदस्य राष्ट्रों के पास

आवश्यक पूंजी एवं क्रय–शक्ति का कम होना है। सदस्य राष्ट्रों के हितों में टकराव के कारण उनके बीच कई अन्तर्राष्ट्रीय विवाद भी उठे हैं।

यह भी आरोप लगाया जाता है कि आसियान देशों का झुकाव पश्चिमी देशों की तरफ अधिक रहा है। यह सही है कि इण्डोनेशिया के अतिरिक्त आसियान के अन्य सदस्य राष्ट्र मलेशिया, सिंगापुर, फिलिपीन एवं थाईलैण्ड पश्चिमी देशोंके साथ सुरक्षात्मक समझौते से जुड़े हैं तथा उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक मुद्दों पर ही नहीं, बल्कि हिन्दचीन पर भी पश्चिमी शक्तियों का साथ दिया है। आसियान के सदस्य राष्ट्रों में विदेशी सैनिक अड्डे भी मौजूद हैं।

इन सब आलोचनओं के बावजूद आसियान एक असैनिक स्वरूप का संगठन है। आसियान की सदस्यता के द्वार दक्षिण–पूर्वी एशिया के उन सभी राष्ट्रों के लिए खुले हुए हैं जो इसके उद्देश्य, सिद्धान्त तथा प्रयोजनों में विश्वास रखते हैं। आसियान के सदस्य राष्ट्रों की जनता उसको एक ऐसी मशीनरी के रूप में मानती है जो एक देश की जनता को दूसरे देश की जनता से जोड़ती है। 'आसियान' क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयत्न क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में महत्वपूर्ण चरण हैं। किसी ने ठीक कहा है कि ''भारत आसियान का पश्चिमी पंख है और जापान व दक्षिण कोरिया पूर्वी पंख है। आसियान रूपी जम्बोजेट के उड़ने के लिए दोनों पंखों का सहयोग अपेक्षित है।

vH;kl gr| i'u

cgqodfYid i'u@,dokD; mÙkj

1. यूरोप का क्षेत्रफल कितना है?

   (अ) 40 लाख वर्ग मील (ब) 80 लाख वर्ग मील (स) 100 लाख वर्ग मील

2. यूरोपीय आर्थिक समुदाय की स्थापना कब हुई?

3. मेस्ट्रिच सन्धि कब हुई थी?

   (अ) 1991 (ब) 1992 (स) 1993

4. 'संयुक्त राज्य यूरोप' के मुहावरे का कौन इस्तेमाल करता था?

   (अ) चर्चिल (ब) एटली (स) मोउंटबेटन

5. नाटो की 50वीं वर्षगांठ कब मनाई गई थी?

   (अ) 1999 (ब) 1998 (स) 2004

6. EDC का पूरा नाम लिखें।

7. वारसा सन्धि कब हुई थी?

   (अ) 1955 (ब) 1960 (स) 1962

8. 2011 के अनुसार विश्व व्यापार संगठन के कितने सदस्य हैं?

   (अ) 155 (ब) 160 (स) 162

9. विश्व व्यापार संगठन के कितने प्रमुख अंग हैं?

   (अ) 3 (ब) 4 (स) 5

10. विश्व व्यापार संगठन का 7वां मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कब हुआ था?

   (अ) 2009 (ब) 2010 (स) 2011

11. क्यूबेक सम्मेलन कब हुआ था?

(अ) 1953 (ब) 1955 (स) 1960

12. आसियान का उन्नीसवां सम्मेलन कब हुआ था?

(अ) 2011 (ब) 2012 (स) 2014

y?kqÙkjkRed i'u

1. यूरोपीय संघ के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालें।
2. पश्चिमी यूरोप की सैनिक सुरक्षा के स्वरूप का वर्णन करें।
3. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य क्या हैं?
4. विश्व व्यापार संगठन का मूल्यांकन करें।
5. आसियान के निर्माण एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालें।

fuca/kkRed i'u

1. यूरोपीय संघ के निर्माण एवं कार्य पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
2. पश्चिमी एवं पूर्वी यूरोप की सैनिक सुरक्षा पर प्रकाश डालें।
3. विश्व व्यापार संगठन पर एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखें।
4. आसियान के स्वरूप, गठन आदि का वर्णन करते हुए वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता बताएँ।

bdkbZ&3 lkdZ&Hkwfedk ,oa {ks=] lkdZ % fo'o jktuhfr dk eap ij] 'kh"kZ lEesyu

lajpuk

3-0 lkdZ % Hkwfedk

3-1 {ks=

3-2 lkdZ % fo'o jktuhfr dk eap ij

3-3 'kh"kZ lEesyu

3-4 iFke 'kh"kZ lEesyu

3-5 lkdZ dk pkVZj

3-6 vuqPNsn&1

3-7 vuqPNsn&2

3-8 vuqPNsn&3

3-9 vuqPNsn&4

3-10 vuqPNsn&5

3-11 vuqPNsn&6

3-12 vuqPNsn&7

3-13 vuqPNsn&8

3-14 vuqPNsn&9

3-15 vuqPNsn&10

3-0 lkdZ % Hkwfedk

सार्क क्षेत्र दक्षिण एशिया के 7 राज्यों का क्षेत्र हैं– पाकिस्तान, भारत, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका एवं मालदीव। इसमें सबसे बड़ा क्षेत्र जनसंख्या एवं आर्थिक दृष्टि से भारत है। यह सामरिक दृष्टि से भी सबसे अधिक शक्तिशाली है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस सम्पूर्ण क्षेत्र का इतिहास सबसे प्राचीन है। भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, श्रीलंका आदि देश ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े पुराने क्षेत्र हैं। विश्व में चीन, मिश्र, बेबीलोन, यूनान देशों की ही सभ्यताएँ अति प्राचीन है। सिंध (पाकिस्तान) प्राचीन हड़प्पा मोहनजोदड़ो सभ्यता का केन्द्र रहा है। श्रीलंका में बौद्धधर्म का (भारत के बाहर) सबसे पहले प्रसार हुआ। भूटान बौद्धधर्म का केन्द्र रहा। नेपाल की कपिलवस्तु में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। मालदीव्स में इस्लाम का प्रसार हुआ। यह सारा क्षेत्र प्राचीन आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा हैं। प्राचीन काल में यह क्षेत्र अत्यधिक समृद्ध था तथा इसका दूर–दूर से व्यापार होता था। बौद्धधर्म के पूर्व इस सारे क्षेत्र का व्यापार फारस, बेबीलोन, मिश्र, यूनान से होता था। उस समय न ईसाई धर्म का उदय हुआ था न इस्लाम धर्म का। बौद्ध धर्म का प्रसार पूर्वी एशिया में हुआ। इस प्रकार अशोक के बाद इस धर्म का प्रसार ब्रह्मदेश (म्यानमार) मलया, हिंदेशिया, श्याम, चीन तथा जापान तक हुआ। इस प्रकार दक्षिण

एशिया का अत्यिक प्राचीन इतिहास है। ऐतिहासिक विरासत, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से यह विश्व का सबसे धनी क्षेत्र है। क्षेत्र ने विशाल साम्राज्यों के उदय और अस्त को भी देखा है–मौर्य साम्राज्य, कनिष्क, गुप्त, मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य।

3-1 {k=

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत मालदीव, नेपाल, भूटान को छोड़कर यह सारा क्षेत्र एकीकृत हुआ। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली, ब्रिटिश लोकसेवाओं, कानून का शासन (Rule of Law) स्वतंत्र–न्याय पालिका आदि की इस क्षेत्र में स्थापना हुई थी और यह सारा क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न था। किन्तु आज यह क्षेत्र विश्व के सबसे निर्धन क्षेत्रों में से एक है। सभी राज्य घाटे की आर्थिक व्यवस्था (Deficit budgets) और सभी घाटे का व्यापार और व्यापार–असंतुलन की समस्याओं से जूझ रहे हैं। सभी राज्य कृषिप्रधान हैं। कृषि भी पिछड़ी हुई स्थिति में है। भारत और पाकिस्तान में ही कुछ औद्योगीकरण हुआ है। शेष क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था अत्यधिक पिछड़ी हुई है।

3-2 lkdZ ls fo'o&jktuhfr dk ep ij

1980 ई. में जिया–उर–रहमान ने सार्क की अवधारणा को जन्म दिया। बाद में पाकिस्तान, भारत आदि की पहल पर 1985 ई. में सार्क का जन्म हुआ। बांग्लादेश के श्री इमाजुद्दीन अहमद ने सार्क के आधारभूत कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा था– ''छोटे राज्यों की दृष्टि से आज का युग ''विकासवादी क्षेत्रीयतावाद'' (Developmental Regionalism) है। क्षेत्र का लाभ बड़े पैमाने पर उत्पादन करना, सेवाओं, व्यापार और उद्योगों का विशेषीकरण, आर्थिक कुशलता में वृद्धि, विशाल बाजार का लाभ उठाना आदि बातें हैं। इससे क्षेत्र के सभी राष्ट्रों के संसाधनों का बहुत अच्छा विकास हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त जब तक लेन–देन का वातावरण (Atmosphere of Give and Take) स्थापित नहीं होता तब तक इस क्षेत्र के शासकवर्गों को एक दूसरे के प्रति संदेह, अविश्वास, ईर्ष्या, वैमनस्य, घृणापूर्ण धारणाएँ आदि का त्याग कर, खुले मन से सहयोग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बाहरी शक्तियों (Extra-regional Powers) को सार्क के अन्दरूनी मामलों में दखल नहीं देना चाहिए। किन्तु सार्क की स्थापना के पूर्व 1984 ई. में जो राजनैतिक वातावरण था वह इतना सुखद था, जिससे यह कहा जा सके कि सार्क एक सफल संगठन के रूप में कार्य कर सकेगा। 1984 ई. तक भारत–पाकिस्तान, भारत–श्रीलंका के सम्बन्ध मधुर नहीं थे, भारत–बांग्लादेश के सम्बन्ध भी उतने अच्छे नहीं थे। इन राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं में कोई एकीकरण का या सहयोग स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया था। संसाधनों की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र विश्व का सबसे पिछड़ा हुआ क्षेत्र है और फिर 1984 ई. तक क्षेत्रीय सहयोग के लिए कोई महत्त्वपूर्ण संगठन स्थापित नहीं किया गया था।

यह सारा क्षेत्र दक्षिण एशिया का क्षेत्र कहलाता है। इसका दक्षिणी हिस्सा हिन्द महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से लगा हुआ है। मालदीव सम्पूर्ण रूप से हिन्द महासागर में स्थित मूँगों का द्वीप समूह है। ये द्वीप–मूँगों के लिए विख्यात हैं। किन्तु अधिकांश द्वीप चट्टानी हैं और अनुपजाऊ हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भी मालदीव में प्रति व्यक्ति आय सबसे कम है। अन्य सार्क देशों की तुलना में यहाँ बहुत कम खेती होती है। यह श्रीलंका के पास है, लगभग 650 किलोमीटर दूर भारत के तमिलनाडु और केरल से भी ये द्वीप–समूह लगभग इतनी ही दूरी पर स्थित हैं। 200 द्वीप–समूहों में से कुल 15 में ही बस्ती है। सबसे बड़ी बात यह है कि अधिकांश द्वीप समूह समुद्र की सतह से लगे हुए हैं। मालदीव के राष्ट्रपति अब्दुल माउमून गय्यूम ने कहना आरम्भ किया है कि पश्चिमी देश आकाशीय प्रदूषण को रोकें। यदि सूर्य की पराबैंगनी किरणों (Ultra Violet Rays) आकाशीय ओजोन परत (Ozone Layer) में

छेद होने के कारण धरती पर प्रविष्ट होती हैं तो दक्षिण ध्रुव का बर्फ पिघलने लगेगा और समुद्र का जल स्तर ऊँचा उठ जाएगा और सारा मालदीव हिन्दमहासागर में समा जाएगा। उनके कहने का सार यह है कि मालदीव के विकास में मालदीव को बचने में विकसित राष्ट्रों को अपना योगदान देना चाहिए और भारत और पाकिस्तान सहित सार्क के अन्य राष्ट्रों को भी मालदीव ने विकास में योगदान देना चाहिए। 1988–89 ई. में जब राजीव गाँधी भारत के प्रधानमंत्री थे तो मालदीव पर अज्ञात लुटेरों द्वारा आक्रमण किए जाने पर मालदीव के भारत से सैनिक सहायता की माँग की थी और भारत ने ऐसी सैनिक सहायती दी थी। मालदीव के इसके लिए 1991 के सार्क सम्मेलन में आभार व्यक्त किया था। मालदीव का क्षेत्रफल सार्क क्षेत्रफल का कुल 0.01 प्रतिशत है। इसकी सीमाएँ सार्क के किसी भी राज्य से नहीं लगी है।

भारत सार्क देशों में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा है– सार्क के कुल क्षेत्र का 73.4 प्रतिशत भारत में है। यह चार सार्क राज्यों से मिला हुआ है– पाकिस्तान, नेपाल, भूटान और बांग्लादेश। चीन एशिया का सबसे बड़ा राज्य है और भारत के उत्तर में स्थित है। चीन और भारत दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी है। वास्तव में भारत सार्क के केन्द्र में स्थित है। भारत में हिमालय पर्वत और तराई क्षेत्र है। अन्य पहाड़ पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, विन्ध्य और सतपुड़ा हैं। अन्यत्र छोटी–छोटी पहाड़ियाँ हैं। कश्मीर की घाटियाँ हैं। विश्व की कुछ विशाल नदियाँ इस क्षेत्र में बहती हैं– गंगा–यमुना और उसकी सहायक नदियाँ, ब्रह्मपुत्र, झेलम, सतलज, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी। अतएव भारत जल–संसाधनों से परिपूर्ण है हालांकि इसने अपने जल संसाधनों का सही ढंग से उपयोग नहीं किया है।

पाकिस्तान में पश्चिम की ओर हिन्दुकुश पर्वत श्रेणियाँ हैं और उत्तर में कश्मीर की घाटी है। सिंधु और उसकी सहायक नदियों में बहुत अधिक पानी का बहाव रहता है, किन्तु इन जल संसाधनों का सही ढंग से प्रयोग नहीं किया गया है। पाकिस्तान का क्षेत्रफल सार्क के क्षेत्रफल का 17.76 प्रतिशत है। इस दृष्टिकोण से यह सार्क का भारत के बाद दूसरा बड़ा राज्य है। पाकिस्तान और भारत दोनों का एक हिस्सा मरूस्थलीय है–थार और राजपुताना का मरूस्थल। पाकिस्तान के पश्चिम में ईरान और स्वतंत्र हुए कजाकिस्तान, तुर्कमेनिया, उत्तर–पूर्व में चीन, पूर्व में भारत और दक्षिण में अरब सागर हैं। पाकिस्तान ने आजाद कश्मीर से एक सड़क चीन तक निकालने की अनुमति चीन को दे दी है, जिससे पाकिस्तान और चीन जुड़ गए हैं। सामरिक दृष्टि से यह भारत–विरोधी कदम है।

नेपाल सार्क का भूमि–रुद्ध (Land Locked) क्षेत्र है। इसका कोई समुद्री तट नहीं है। अतएव इसका व्यापार पड़ोसी राज्यों की सीमा के भीतर से विशेषकर भारत से होता है और इस आवागमन की सुविधा को लेकर दोनों देशों के बीच कभी–कभी वैमनस्य भी उत्पन्न हुआ है। भूटान को छोड़कर सार्क के अन्य राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्य, पुर्तगीज या फ्रेंच साम्राज्य के अधीन रहे हैं। इस प्रकार ये राज्य पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में आ सके। किन्तु नेपाल कभी भी विदेशी राज्यों के अधीन नहीं रहा। इसलिए जहां इन राज्यों में आधुनिकरण और औद्योगिकरण का प्रभाव पड़ा वहीं नेपाल अभी तक सामन्तवादी ही बना रहा। नेपाल के उत्तर में चीन, दक्षिण और पश्चिम में भारत, पूर्व में भूटान स्थित हैं। हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ नेपाल के अधिकांश हिस्से पर स्थित हैं और दक्षिण में तराई के घने जंगल हैं। इस कारण भी नेपाल के भीतर सड़कें कम हैं और आवागमन में व्यवधान उत्पन्न होता है। काठमांडू घाटी और तराई ही खेती के लायक है। वर्षा इन क्षेत्रों में काफी होती हैं। नदियाँ छोटी हैं, जिनसे विद्युत शक्ति प्राप्त की जा सकती है किन्तु जो आवागमन के लिए उपयोगी नहीं है। नेपाल का क्षेत्रफल सार्क क्षेत्र का 3.15 प्रतिशत है।

श्रीलंका हिन्द महासागर का एक द्वीप है, जो चारों तरफ से समुद्र से घिरा है। यद्यपि यह भारत से कुछ किलोमीटर की दूरी पर ही स्थित है। इसका क्षेत्रफल सार्क के कुल क्षेत्रफल का 1.5 प्रतिशत

है। नदियाँ बहुत छोटी हैं किन्तु सड़के बनी हुई हैं। हाल तक यहां ब्रिटिश साम्राज्य का शासन था। 1948 ई. में यह स्वतंत्र हुआ।

भूटान एक छोटा देश है, जो पहाड़ी है, तथा जमीन खेती के लायक नहीं है। घने जंगल और पहाड़ हैं। बांग्लादेश पाकिस्तान का पूर्वी हिस्सा था। पूर्वी पाकिस्तान 1972 ई. में स्वतंत्र हो गया और बांग्लादेश का निर्माण हुआ। यह गंगा–ब्रह्मपुत्र का डेल्टा क्षेत्र होने के कारण अत्यधिक उपजाऊ है। जल–स्रोतों से परिपूर्ण है। गंगा, ब्रह्मपुत्र के अतिरिक्त पद्मा नदी भी विशाल नदी है। दक्षिण में बंगाल की खाड़ी है, पूर्व, उत्तर और पश्चिम में भारत है, पूर्व में एक हिस्सा म्यानमार (ब्रह्मदेश) से लगा हुआ है। बंगाल की खाड़ी से उठने वाले तूफानों और नदियों के बाढ़ से यह त्रस्त रहता है और यहाँ का जनजीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है।

सार्क क्षेत्र में विश्व के तीन बड़े धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं– हिन्दु, मुस्लिम और ईसाई। बौद्धधर्म मानने वाले लोग भी हैं। श्रीलंका में बौद्धधर्म के मानने वाले लोग बहुत अधिक है। भारत, श्रीलंका का संविधान धर्म–निरपेक्ष है और सभी धर्मों को शांतिपूर्वक, कानून के अनुसार अपने धर्म–पालन की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। धार्मिक दंगे बहुत कम होते हैं। बाबरी मस्जिद की घटना अवश्य ही प्रशासन पर एक धब्बा है। शेष अब तक हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध शांतिपूर्वक रहते आए हैं। ध्यान देने की बात है कि जनसंख्या की दृष्टि से भारत में हिन्दुओं के बाद सबसे अधिक मुस्लिम रहते हैं। जाति–व्यवस्था टूट रही है, फिर भी कहीं–कहीं अनुसूचित जातियों पर अत्याचार होते रहते हैं। कश्मीर, पंजाब, उत्तर–पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्रों में आतंकवादियों, पृथक्ताादियों का जोर रहा है।

कोलम्बो में दक्षिण एशिया के देशों के विदेश सचिवों का 21–23 अप्रैल 1981 ई. को एक सम्मेलन हुआ। इसमें सात देश सम्मिलित थे। यह सम्मेलन बांग्लादेश के राष्ट्रपति जिया उर रहमान के प्यास पर हुआ था–वे चाहते थे कि दक्षिण एशिया के देश अपने बीच क्षेत्रीय सहयोग की सम्भावना पर विचार करें।

श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस. हमीद ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। उन्होंने इन सात देशों के बीच क्षेत्रीय संगठन पर बल दिया। उन्होंने कहा कि श्रीलंका इस क्षेत्र के राष्ट्रों के बीच समान आदर्शों, समान समस्याओं के निराकरण के लिए समान दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्होनें श्री जिया उर रहमान को धन्यवाद दिया कि उनके प्रयास पर यह सम्मेलन हो रहा है। उन्होंने कहा कि क्षेत्रीय सहयोग ही क्षेत्रीय विकास की कुंजी है।

व्यापार संस्थागत विकास, टेक्नोलॉजी का आदान–प्रदान, मानव संसाधनों का विकास या पारस्परिक निवेश इन सभी के लिए क्षेत्रीय संगठन की आवश्यकता है। क्षेत्रीय संगठन से जो आत्मनिर्भरता का विकास होता है, वह आगे चलकर विश्व–अर्थव्यवस्था में सहयोग और प्रतियोगिता दोनों के लिए लोगों को तैयार करता है।

31 अगस्त से 2 सितम्बर, 1981 ई. सम्पूर्ण समिति (Committee of the Whole) की बैठक हुई। समिति ने सम्भावित क्षेत्रीय सहयोग के लगभग 13 विषय गिनाये वे इस प्रकार हैं–शिक्षा–प्रशिक्षण, सांस्कृतिक विनिमय, वैज्ञानिक और टेक्नॉलोजी सहयोग (ऊर्जा के नये स्रोत), पर्यटन, समुद्र यात्रा, मौद्रिक सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन–देन और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, सूचना जनसंचार, पोस्टल सेवा, दूरसंचार, मानवश्रम का निर्यात, शोध संस्थान, क्षेत्रीय योजनाकार, गैर सरकारी और बौद्धिक संगठन।

इन सहयोग क्षेत्रों पर बड़े विस्तार से वाद–विवाद हुए और ग्रुप स्टडी करके लेख प्रस्तुत किये गए। काठमांडू में 24 नवम्बर, 1981 ई. को विदेश सचिवों की दूसरी बैठक हुई। इस्लामाबाद में तीसरी बैठक 7–9 अगस्त, 1981 ई. को हुई।

(अ) 10–13 जनवरी, 1983 ई. को सम्पूर्ण समिति ने कोलम्बो में अपनी रिपोर्ट पेश की।

(ब) 28–30 मार्च, 1983 ई. को ढ़ाका में विदेश सचिवों की चौथी बैठक हुई।

(स) नई दिल्ली में 1—2 अगस्त, 1983 ई. को विदेश मंत्रियों की बैठक हुई।

(द) 2 अगस्त, 1983 ई. को सार्क के उद्देश्यों आदि की घोषणा की गई।

(य) नई दिल्ली में 27—29 फरवरी, 1984 ई. को सार्क की स्थाई समिति की बैठक हुई।

(र) माले में विदेश मंत्रियों की 10—11 जुलाई, 1984 ई. में बैठकें हुई।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने नई दिल्ली में 1 अगस्त, 1983 ई. को भाषण देते हुए कहा था कि विश्व में यूरोपीय समुदाय जैसे कई विकसित समुदाय हैं, वे भी कठिनाईयों से जूझ रहे हैं, अतएव दक्षिण एशिया में सहयोग के मार्ग पर हमें बढ़ना चाहिए, कठिनाइर्या और बाधाएँ आएंगी। उनसे हमें जूझने का प्रयास करना चाहिए। श्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने भी 27 फरवरी, 1984 ई. को सार्क की स्थाई समिति को संबोधित किया था।

3-3 iFke 'kh"k lEesyu

साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल को—आपरेशन (SAARC) दक्षेश—दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन) का प्रथम सम्मेलन ढ़ाका में दिसम्बर 7—8, 1985 ई. को हुआ। दिसम्बर 4—5, 1985 ई. को इन सात देशों के विदेश सचिवों की बैठक हुई जिसके तत्काल बाद विदेश मंत्रियों की बैठक हुई। इन बैठकों में शीर्ष सम्मेलन की सारी तैयारियां पूर्ण कर ली गई। इन सात राज्यों के प्रधानों ने एक घोषणा—पत्र (Charter) को स्वीकार किया और उसके आधार पर एक उद्घोषणा (Declaration) जारी की गई। इसके बाद एक प्रेस वक्तव्य जारी किया गया, जिसमें शीर्ष सम्मेलन के निर्णयों का समावेश था। इस अवसर पर उपस्थित राज्य प्रधान एक—दूसरे से मिले और आपस में द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मसलों पर चर्चा की।

3-4 lkdZ dk pkVZj ¼?kks"k.kk&i=½

बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका के राज्य—प्रधान निम्न बातों की घोषणा करते हैं—

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर और असंलग्नता के सिद्धातों (विशेषकर राष्ट्रों की सम्प्रभुता, समानता, भौगोलिक एकता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, शक्ति का प्रयोग न करना, अन्य राज्यों के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप और पारस्परिक विवादों का शान्तिमय ढ़ंग से निपटारा) के अनुसार आचरण करेंगे।

इन राज्यों के प्रधानों ने कहा कि हम इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि आज की दुनिया परस्पर सहयोग पर निर्भर करती है। यह बात दक्षिण एशिया के राज्यों पर और भी अधिक लागू होती है। ऐसी स्थिति में निम्न उद्देश्यों जैसे — शांति, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, आर्थिक उन्नति की पूर्ति, पारस्परिक सहमति, सहयोग, समझदारी और अच्छे पड़ौसियों की भांति रहने से ही ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। दक्षेश के ये देश इतिहास और संस्कृति के बंधनों से एक—दूसरे से जुड़े हुए हैं।

यद्यपि इन राष्ट्रों की अपनी आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परम्परा है, वे राष्ट्र इस बात की जानकारी रखते हैं कि उनकी कतिपय सामान्य समस्याएँ हैं, उनके कुछ सामान्य हित हैं और लोगों की कुछ सामान्य आकांक्षाएँ हैं।

वे इस बात को भी अच्छी तरह समझते हैं कि सार्क (दक्षेश) देशों का आपसी सहयोग उनके स्वयं के लिए आवश्यक, लाभदायक और वांछनीय है और ऐसा करके ही वे अपना कल्याण और हित साधन कर सकते हैं तथा लोगों के जीवन—स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं।

वे इस बात को भी अच्छी तरह समझते हैं कि इन देशों के पारस्परिक तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक सहयोग से ही वे राष्ट्रीय और सामूहिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

2 अगस्त, 1983 ई. को इनके विदेश मंत्रियों ने जिस घोषणा पर अपने हस्ताक्षर किए थे और उसके बाद जो प्रगति हुई, उसकी समीक्षा करते हुए ये राष्ट्र एक संस्था के ढ़ाँचे के अन्तर्गत वे ऊपर उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं और इसके लिए ही सार्क की स्थापना करते हैं।

3-5 vuPNn&1

अनुच्छेद–1 में इसके निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है–

1. दक्षिण एशिया के लोगों के कल्याण के लिए कार्य करना और उनके जीवनस्तर को ऊँचा करना।
2. क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयास करना, प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानित जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के विकास का अवसर प्रदान करना।
3. दक्षिण एशिया क्षेत्र के लोगों में सामूहिक आत्म–निर्भरता का विकास करना।
4. आपसी समस्याओं के प्रति समझदारी, पारस्परिक विश्वास और समझदारी उत्पन्न करना।
5. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी, पारस्परिक सहयोग उत्पन्न करना।
6. अन्य विकासशील देशों से सहभागिता और सहयोग को बढ़ावा देना।
7. समान उद्देश्यों वाले क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से जिनके दक्षेश से मिलते–जुलते उद्देश्य हैं, सहयोग करना।
8. अन्तर्राष्ट्रीय फोरमों में पारस्परिक महत्त्व के विषयों पर सहयोग को बढ़ावा देना।

3-6 vuPNn&2

1. संगठन के भीतर सहयोग, निम्न सिद्धान्तों के प्रति आदर और सम्मान व्यक्त करने में निहित होगा–सम्प्रभु राष्ट्रों की समानता, क्षेत्रीय एकता, राजनैतिक स्वतंत्रता, अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना और पारस्परिक लाभ के लिए कार्य करना।
2. दक्षेश के राष्ट्र द्विपक्षीय (Bilateral) और बहुपक्षीय (Multilateral) मामलों में एक–दूसरे से सहयोग, वार्ता आदि कर सकेंगे, इसमें सार्क सगंठन कोई आड़े नहीं आयेगा।
3. कोई भी द्विपक्षीय या बहुपक्षीय वार्ता या सहयोग सार्क के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं होगा।

3-7 vuPNn&3

jkT; d i/kkuk **(Head of State)** dh cBd

इनकी बैठक वर्ष में कम से कम एक बार या जैसा सदस्य राष्ट्र निश्चित करेंगे, होगी।

3-8 vuPNn&4

e=h ifj"kn **(Council of Ministers)**

इन राज्यों के विदेश मंत्रियों की एक परिषद् गठित की जाएगी, जिसके कार्य इस प्रकार होंगे –

1. संगठन की नीतियों को निर्धारित करना।
2. सहयोग में हुई प्रगति का मूल्यांकन करना।
3. नये क्षेत्रों में सहयोग का निर्णय लेना।
4. आवश्यक समझने पर उद्देश्यों की पूर्ति और कार्य करने के लिए नई कार्य–व्यवस्था करना।

यह परिषद् वर्ष में दो बार बैठेगी। सदस्य राज्यों की सहमति से असाधारण बैठक आमंत्रित की जाएगी।

3-9 vuPNn&5

LFkk;h lfefr **(Standing Committee)**

सदस्य राज्यों के विदेश सचिवों की एक स्थायी समिति होगी। इस समिति के कार्य इस प्रकार होंगे–

1. सहयोग के कार्यक्रमों का मॉनीटरिंग करना और संचालन करना।
2. सहयोग के कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना।
3. योजनाओं और कार्यक्रमों को स्वीकृति प्रदान करना।
4. इन योजनाओं और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए वित्त के जुगाड़ पर विचार करना।
5. अन्तर्क्षेत्रीय प्राथमिकताओं का निर्धारण करना।
6. क्षेत्रीय और बाह्य संसाधनों का प्रबंध।
7. विशेष अध्ययन के बाद नये–नये क्षेत्रों में सहयोग की सम्भावनाओं का रेखांकन करना।

स्थायी समिति वर्ष में कई बार जब जरूरी हो, बैठकें करेगी। यह मंत्रीपरिषद् को समय–समय पर रिपोर्ट देगी। नीति विषयक निर्णय लेने के लिए यह मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेगी।

3-10 vuPNn&6

rduhdh lfefr;k **(Technical Committees)**

विविध विषयों और क्षेत्रों में ये समितियाँ होंगी। इनका प्रमुख कार्य–अपने क्षेत्र में निर्णयों को क्रियान्वित करना, समन्वय और मॉनीटरिंग करना। इनसे निम्न क्षेत्रों में परामर्श लिया जाएगा–

1. क्षेत्रीय सहयोग का विस्तार और उसको सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने की सम्भावनाएँ।
2. कार्य–योजनाएँ और प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करना।
3. क्षेत्रीय योजनाओं की वित्तीय लागत का अनुमान तैयार करना।
4. इन क्षेत्रीय योजनाओं को क्रियान्वित करने पर सदस्य राष्ट्रों को कितना खर्च वहन करना होगा, इसकी अनुमानित राशि से सम्बन्धित रिपोर्ट तैयार करना।
5. क्रियान्वयन में क्या प्रगति हुई है, इसको मॉनीटर करना।

तकनीकी समितियाँ समय–समय पर स्थायी समिति को अपना प्रतिवेदन सौंपेंगी। तकनीकी समिति के अध्यक्ष पद दो वर्ष के लिए होगा और वर्णमाला के क्रम से प्रत्येक सदस्य राष्ट्र इस पद के लिए अपना अध्यक्ष भेजेगा।

जब भी आवश्यक समझा जाए, इन तकनीकी समितियों को निम्न से परामर्श लेना होगा–

1. राष्ट्रीय तकनीकी एजेंसियों की बैठक बुलकर परामर्श लेना।
2. विशेष क्षेत्रों में तकनीकी विशेषज्ञों की बैठक बुलाना।
3. क्षेत्र में इस विषय पर विशेष केन्द्रों से परामर्श लेना।

3-11 vuPNn&7

dk;Z&lfefr;k **(Action Committees)**

जहाँ दो से अधिक सदस्य राज्य किसी योजना से संबंधित हैं (किन्तु सभी सदस्य राज्य नहीं) वहाँ योजना के क्रियान्वयन के लिए स्थायी समिति कार्य समिति स्थापित कर सकती है।

3-12 vuPNn&8

lfpoky; **(Secretariat)**

सार्क का एक सचिवालय होगा।

3-13 vuPNn&9

foÙkh; 0;oLFkk **(Financial Arrangements)**

संगठन के कार्यों के लिए सदस्य राज्य का वित्तीय अवदान ऐच्छिक होगा।

प्रत्येक तकनीकी समिति किसी योजना या कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए सदस्य राज्यों को कितना व्ययभार वहन करना होगा, इसका अनुमान तैयार करेगी।

यदि कोई सदस्य राज्य अपने व्ययभार को वहन करने में असमर्थ है या उस राज्य से उतने धन की उगाही नहीं की जा सकती तो स्थायी समिति के परामर्श से तकनीकी समिति बाहर से ही धन का जुगाड़ कर सकती है या करने का परामर्श दे सकती है।

3-14 vuPNn&10

lkekU; izko/kku **(General Provisions)**

1. प्रत्येक विषय पर निर्णय सर्वसम्मति से लिए जायेंगे।
2. विचार–विमर्श के दौरान द्विपक्षीय और विवादास्पद मामले नहीं उठाए जायेंगे। (Bilateral and conventional Issues shall be excluded from the deliberations)

सभी राज्याध्यक्षों ने यह आशा व्यक्त की कि सदस्य राज्य इन उद्देश्यों के लिए आपस में सहयोग करेंगे, वे आपसी समस्याओं के हल के लिए प्रयत्नशील रहेंगे।

राज्याध्यक्षों ने यह भी स्वीकार किया कि समय–समय पर सार्क और उसके संगठनों एवं समितियों की नियमित रूप से बैठक होनी चाहिए। इन राज्याध्यक्षों ने स्वीकार किया कि सार्क का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्र का आर्थिक और सामाजिक विकास है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इसके लिए क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा की स्थापना करना नितांत आवश्यक है।

इन राज्याध्यक्षों ने स्वीकार किया कि यह सारा क्षेत्र ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दृष्टि से एक इकाई के सदृश्य है और लोगों के मूल्य और आदर्श लगभग एक से हैं और यहां के लोग एक साथ हजारों वर्षों से रहते आए हैं और व्यापार करते आए हैं। भूतकाल में इस क्षेत्र का मानव–सभ्यता और संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और आज भी यदि वे एक होकर, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भागीदारी करें तो वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित कर सकते हैं।

इन राज्याध्यक्षों ने स्वीकार किया है कि सार्क संगठन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इन राज्यों की जनता के बीच अधिकाधिक समागम हो, वे आपस में सहभागिता करें (The Heads of state of Government, emphasized that strengthening of regional cooperation in South Asia regional overeater involvement of their peoples) इसलिए वे इस बात पर सहमत हैं कि इस क्षेत्र के लोगों के बीच अधिकाधिक आदान–प्रदान, आना–जाना, मेल–मिलाप बढ़ना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए लोगों में जागृति उत्पन्न होनी चाहिए और लोकमत को इस दिशा में मोड़ना चाहिए।

इन राज्याध्यक्षों ने कहा कि इस संगठन के द्वारा नौ क्षेत्रों में सहयोग और सहभागिता पर आधारित कार्यक्रम आरम्भ किए जा चुके हैं। इस दिशा में और अधिक प्रगति होनी चाहिए। लोगों और राज्यों में सहभागिता और समानता के मूल्यों का प्रचार किया जाना चाहिए।

इन राज्याध्यक्षों ने स्वीकार किया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति में तभी सफलता मिलेगी जब क्षेत्र में और क्षेत्र के बाहर शांति और सुरक्षा का वातावरण स्थापित हो। उन्होंने विश्व में शांति और सुरक्षा में बिगाड़ आने पर चिन्ता व्यक्त की। विश्व में हथियारों और अण्वास्त्रों के संग्रह की होड़ मची हुई है। इससे मानव के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। नेताओं ने अपील की है कि अण्वास्त्रों पर प्रतिबंध लगाने के लिए व्यापक संधि (CTBT) का प्रचार होना चाहिए। उन्होंने हाल में राष्ट्रपति रीगन और सोवियत प्रधान गोर्बाचेव के बीच इस विषय पर आयोजित बैठक का स्वागत किया। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि इस बैठक के फलस्वरूप विश्व में शांति और सुरक्षा स्थापित हो सकेगी।

इन राज्याध्यक्षों ने विश्व अर्थव्यवस्था में लगातार ह्रास पर चिंता व्यक्त की। दक्षिण एशिया और अन्य अविकसित राज्यों में आर्थिक हालत बिगड़ती जा रही है। इन क्षेत्रों में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं का मूल्य तेजी से गिर रहा है, इनका विकसित राष्ट्रों में व्यापार का घाटा तेजी से बढ़ता जा रहा है, विकसित राष्ट्र संरक्षण की दीवार खड़ी कर रहे हैं। अविकसित राष्ट्र कर्जदारी के मार से टूटते चले जा रहे हैं, इन राष्ट्रों को मिलने वाली बाह्य ऋण और वित्तीय सहायता की राशि दिन–ब–दिन घटती जा रही है। इन सब कारणों से दक्षिण एशिया सहित अन्य अविकसित राष्ट्रों का आर्थिक विकास बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इसके अतिरिक्त निरन्तर पड़ने वाले अकाल, सूखा, प्राकृतिक आपदाओं और खाद्य समस्या की सर्वाधिक मार इन्हीं राष्ट्रों पर पड़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय और तकनीकी संस्थाओं से इन देशों को दिन–ब–दिन कम ऋण और तकनीकी सहायता प्राप्त हो रही है। इससे ये देश और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं, इससे बहुराष्ट्रीय सहयोग क सिद्धान्त को भारी धक्का पहुँचा है। यह तय है कि जब तक धनी और विकसित राष्ट्र निर्धन और अविकसित राष्ट्रों को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए सहायता नहीं देंगे तब तक इन राष्ट्रों की निर्धनता दूर नहीं होगी और इनका विकास नहीं हो सकेगा। साथ ही इन अविकसित राष्ट्रों का जब तक विकास नहीं होगा तब तक धनी विकसित राष्ट्रों की स्थिति भी असुरक्षित बनी रहेगी। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और एक की निर्धनता दूसरे को बहुत अधिक दिनों तक धनी बने रहने नहीं देगी। (That the economic revival of the worth was closely linked to economic progress in the South).

पिछले दस वर्षों का इतिहास यह बतलाता है कि विश्व अर्थव्यवस्था विकास की समस्या से जूझने में विफल रही है–विश्व अर्थव्यवस्था विषमताओं, आर्थिक अन्याय से परिपूर्ण है।

सार्क देशों ने इस बात के लिए आवाज उठाई कि विश्व समुदाय को विश्व विकास की मशीनरी को सुदृढ़ करना चाहिए और अविकसित राष्ट्रों के लिए विकास के ठोस कार्यक्रम निर्धारित किए जाने चाहिए। (They strongly urged that determined efforts should be made by the international community towards realization of the goals and targets of the International Development Strategy as well as the substantial New Programme of Action for the least Developed Countries. They urged for urgent resumtption of North South dialog and early convening of International conference on money and finance for development with universal participation) सार्क राज्याध्यक्षों ने कहा कि विश्व की बिगड़ती आर्थिक हालत को देखकर तुरन्त एक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और मौद्रिक सम्मेलन बुलाया जाना चाहिए, जिसमें विश्व के सभी राष्ट्र समानता के आधार पर मिल–बैठकर विचार करें।

राज्याध्यक्षों ने यह विश्वास व्यक्त किया कि सार्क, क्षेत्रीय संगठन के उद्देश्यों और मूल्यों को प्राप्त करने में सफल होगा और अपने कार्यों और शैली से विश्व में क्षेत्रीय संगठनों की बुनियाद मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इससे सदस्य राष्ट्रों का निश्चित रूप से आर्थिक और सामाजिक विकास होगा, इससे सदस्य राष्ट्रों में व्यक्तिगत और सामूहिक दृष्टि से आत्म निर्भरता बढ़ेगी। इससे क्षेत्र और विश्व में शांतिव्यवस्था और स्थायित्व के लिए प्रभावी वातावरण बन सकेगा।

1985 ई. में सार्क की स्थापना के उपरान्त सार्क के विविध सम्मेलन हुए। इन शीर्ष सम्मेलनों में निम्नलिखित मूल्यों, आदर्शों, लक्ष्यों आदि का समर्थन किया गया।

1. संयुक्त राष्ट्र संघ, असंलग्न राष्ट्रों और मानवाधिकार संघ के सिद्धान्तों का विविध शीर्ष सम्मेलनों में समर्थन किया गया।
2. पारस्परिक विश्वास और समझदारी पर बल दिया गया।
3. आतंकवाद को मूल से मिटाने पर बल दिया गया।
4. क्षेत्र में निःशस्त्रीकरण पर बल दिया गया और अणुशस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया गया।
5. मादक पदार्थों की तस्करी को रोकने पर बल दिया।
6. महिलाओं और शिशुओं के अधिकारों को सुरक्षित रखने और इनके हितों का संवर्धन करने पर बल दिया गया।
7. अपंगों के विकास की दीर्घकालिक योजनाएँ बनाने पर बल दिया गया।
8. सार्क क्षेत्र में व्यापार वाणिज्य के प्रसार का प्रयोग किया जाना चाहिए।
9. सार्क क्षेत्र में बारम्बार पड़ने वाले अकाल, सूखा, तूफान, बाढ़ से होने वाले नुकसानों को रोकने पर बल दिया गया।
10. सूचनाओं का खुला आदान–प्रदान किए जाने पर बल दिया गया।
11. छोटे राष्ट्रों (मालदीव, भूटान) की सुरक्षा के लिए तत्काल सहायता देने पर बल दिया गया।
12. यह प्रस्ताव पास किया गया कि विश्व अर्थव्यवस्था न्यायपूर्ण हो, धनी राष्ट्रों द्वारा शोषण बंद हो।
13. खुले व्यापार ;थ्तमम ज्तंकमद्ध पर बल दिया गया। आयात–निर्यात और अन्य बाधाओं की दीवार को तोड़ देने के लिए कहा गया।
14. बहुआयामी व्यापार (Multilateral Trade) के विकास पर बल दिया गया।
15. इस बात को विश्व के विविध व्यापारिक मंचों से उठाया जाए कि दक्षिण के कृषिप्रधान गरीब राज्यों को उनके कच्चे माल का अधिक और न्यायोचित मूल्य मिले।
16. विश्व अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का एकजुट होकर सामना किया जाए। इसके लिए साप्टा, साटा जैसे समझौतों पर बल दिया गया।
17. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (Intra-regional Trade) को अधिकाधिक विकसित किया जाए।
18. जनसंख्या पर हर हालत में नियंत्रण किया जाए।
19. पर्यावरण का संरक्षण किया जाए किन्तु क्षेत्र के विकास पर भी ध्यान दिया जाए।
20. गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए सब प्रकार के कदम उठाए जाएँ।
21. शान्ति, समझौता, सुरक्षा, उन्नति और विकास के मूल्यों पर समान रूप से बल दिया जाए।
22. पारस्परिक विकसित टैक्नॉलोजी का विनिमय होना चाहिए।
23. दक्षिण एशियाई विकास फंड का निर्माण होना चाहिए।

vH;kl gsrq iz'u

cgqfodYih; iz'u@,dokD; mÙkj

1. सार्क के अन्तर्गत कितने राष्ट्र आते हैं?
2. सार्क की अवधारणा को किसने जन्म दिया था?

3. मालदीव ने किस वर्ष के सम्मेलन में भारत को विदेशी आक्रांताओं से मुक्ति की सहायता हेतु आभार प्रकट किया था?

4. श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्य से कब मुक्त हुआ था?

   (अ) 1948 (ब) 1950 (स) 1962

5. 2 अगस्त, 1983 के सम्मेलन के अनुच्छेद–1 में कितने उद्देश्यों का वर्णन किया गया है?

   (अ) 8 (ब) 9 (स) 10

y?kÙkjkRed i'u

1. सार्क की भूमिका एवं क्षेत्र का वर्णन करें।
2. सार्क संबंधित शीर्ष सम्मेलनों का वर्णन करें।

fuc/kkRed i'u

1. सार्क के चार्टर एवं विभिन्न अनुच्छेदों का वर्णन करें।

Hkkx&2

bdkbZ&4 'kkfr vkUnksyu] Hkkjrh; 'kkfr vkUnksyu] xka/khoknh vkUnksyu % vlg;ksx] lfou; voKk] xzkenku] Hkwnku] vkuUnou] v.kqoz r vkUnksyu

lajpuk

4-0 iLrkouk

4-1 vlg;ksx vkUnksyu

4-2 lfou; voKk vkUnksyu

4-3 lfou; voKk dh i`ujkofÙk

4-4 lfou; voKk vkUnksyu ds ckn ls ydj Hkkjr NksM+ks vkUnksyu ls igys dh egÙoiw.kZ ?kVuk,¡

4-5 foukscK dk Hkwnku vkUnksyu

4-6 Hkwnku ;K dk ikjEHk

4-7 xzkenku

4-8 n'ku ,oa mís';

4-9 vkuUnou

4-10 v.kqoz r vkUnksyu % ,frgkfld ifjp;

4-11 vkUnksyu dk Lo:i

4-12 vfgalk vk/kkfjr dk;ØZe

4-13 u;k eksM+ dk;ØZe

4-14 eY;kadu

4-0 iLrkouk

हमारे देश के इतिहास में सम्भवतः ईसा की यह बीसवीं शताब्दी फिर ऐसा युग लाई है जिसमें मानव धर्म की अहिंसा के मौलिक और सृजनात्मक चिन्तन, विवेचन, अध्ययन और प्रचार को बल व दिशा मिली है। पश्चिम के वैज्ञानिक अविष्कार और औद्योगिक क्रांति, भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से उत्पन्न राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ तथा दो विश्व युद्धों ने मिलकर भारत में अहिंसा के नये चिन्तन और प्रयोगों को गाँधी जी के नेतृत्व में जन्म दिया और उन्होंने जो विचार, आवरण और कार्य के बीज इस देश में छोड़े हैं, उनके परिणामस्वरूप यह चिन्तन और आवरण आधुनिक विश्व की विचारधारा में आशापूर्ण तेजस्विता और मौलिकता प्राप्त करता हुआ लगता है।

किसी भी देश की सम्यता और संस्कृति का स्थायित्व उसकी आध्यात्मिक और अहिंसक परम्परा पर निर्भर करता है। प्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी ने विश्व सभ्यता के इतिहास की चर्चा करते हुए बतलाया है कि संसार की उन सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों का अल्पकाल में ही विनाश हो गया, जिनकी सभ्यता और संस्कृति का आधार अतिभोगवाद और हिंसा था। भारतीय संस्कृति के स्थायित्व का मूल रहस्य इसकी आध्यात्मिकता और अहिंसा है। समय समय पर भारत के मनीषियों यथा–बुद्ध, महावीर, गाँधी आदि ने अपनी–अपनी दृष्टि से युग की आवश्यकताओं

को ध्यान में रखकर अहिंसा का सिद्धान्त और व्यवहार प्रस्तुत किया और वही हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास का आधार बना।

आधुनिक भारत में महात्मा गाँधी के अहिंसा और सत्य के प्रयोग विश्वविख्यात हैं। इसने विश्व राजनीतिक को एक नई चेतना दी तथा अहिंसा के आधार पर समस्त विश्व की संरचना का एक मार्ग दिखाया और वह मार्ग आज किसी न किसी रूप में विश्व मानव को आशा की एक नई किरण प्रस्तुत कर रहा है। महात्मा गाँधी ने कहा था कि अहिंसा और सत्य के सिद्धान्त उतने ही प्राचीन सिद्धान्त हैं जितने प्राचीन यहां के पहाड़ और झरने हैं। इसलिए उन्होंने सत्य अहिंसा का कोई नया सिद्धान्त नहीं दिया है। यदि कुछ भी नया है तो उनका प्रयोग ही नया है। उन्होंने अपने अनुभव और विश्वास के आधार पर समाज के व्यापक क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया। इसके पूर्व अहिंसा के संबंध में सामान्य रूप से यह मान्यता थी कि अहिंसा मात्र व्यक्तिगत साधना का विषय है, समष्टि के जीवन से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। गाँधी ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा के प्रयोग का क्षेत्र केवल व्यक्ति ही नहीं, सम्पूर्ण समाज और प्रकृति है। उन्होंने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अन्याय, शोषण, विषमता और अत्याचार के प्रतिकार के लिए अहिंसा की पद्धति का अनुसंधान किया जो सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हुआ, जिनके अन्तर्गत अनेक प्रकार की परिस्थितियों पर असंख्य प्रयोग किए गये।

राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के विषय में यह धारणा रूढ़ थी कि युद्ध और खून–खराबे के बिना स्वतंत्रता कभी प्राप्त नहीं की जा सकती, परन्तु गाँधी ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि यदि स्थायी रूप से स्वतंत्रता की प्राप्ति करना चाहते तो वह हैं हिंसा और युद्ध के द्वारा नहीं, अपितु सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार उन्होंने समाज की आर्थिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक हिंसक संरचनाओं को बदलने और उन्हें अहिंसक बनाने के लिए भी अहिंसा का व्यापक प्रयोग किया। खादी और स्वदेशी, विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, समूह के द्वारा उत्पादन का सिद्धान्त, सरल जीवन और उच्च विचार के अनुरूप आर्थिक व्यवस्था का निर्माण, छोटे–छोटे उद्योगों और मारक यंत्रों का प्रयोग मूल रूप से आर्थिक क्षेत्र में उनके अहिंसा के प्रयोग थे। इसी प्रकार शिक्षा, समाज और संस्कृति को अहिंसक बनाने के लिए भी उन्होंने नई शिक्षा पद्धति का प्रयोग किया, जिसे हम बुनियादी तालीम के नाम से जानते हैं। शिक्षा से जो नैतिक, चारित्रिक और भावनात्मक मूल्य समाप्त हो गये थे, उन मूल्यों के पुनर्जागरण के लिए भी चरित्र–प्रधान शिक्षा का प्रयोग अफ्रीका में टॉलस्टाय फार्म, फिनिक्स फार्म, सेवाग्राम आश्रम इत्यादि जगहों में उन्होंने स्वयं इस पर प्रयोग किया। इसी प्रकार एलोपैथिक चिकित्सा के स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा, पाश्चात्य जनतन्त्र के स्थान पर ग्रामीण जनतन्त्र, भोगवादी संस्कृति के स्थान पर अपरिग्रह–युक्त जीवन का वरण, यह सभी अहिंसक शिक्षा और संस्कृति की दिशा में इनके प्रयोग थे। समाज की अन्य संरचनाओं में हिंसा को दूर करने के लिए उन्होंने मुक्ति आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन, मद्य–निषेध आन्दोलन, किसान मजदूर संगठन आन्दोलन इत्यादि को भी नेतृत्व प्रदान किया। इस प्रकार गाँधी ने समाज के विशाल क्षेत्रों में अहिंसा का प्रयोग किया।

गाँधी के पश्चात भारतवर्ष में गाँधीवाद अहिंसा के प्रयोग के रूपों में सामने आया है, जिनमें सन्त विनोबा का सर्वोदय और भूदान व ग्रामदान आन्दोलन, जयप्रकाश नारायण का सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन और दलविहीन राजनीति का सिद्धान्त, राममनोहर लोहिया की सप्त क्रांति, चम्बल के बागियों के हृदय–परिवर्तन के प्रयोग, सुन्दरलाल बहुगुणा व चंडी प्रसाद भट्ट का चिपको आन्दोलन, कर्नाटक में पाण्डुरंगा हेगडे का अप्पिको आन्दोलन, मेघा पाटेकर व बाबा आमटे का नर्मदा बचाओं आन्दोलन इत्यादि प्रमुख है।

4.1 असहयोग आन्दोलन

1920 का दशक भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। पराधीन भारत में स्वतंत्रता हेतु किये गये संघर्षों में 20 के दशक में हुए असहयोग आन्दोलन ने देश को नवीन राजनैतिक जागृति प्रदान की तथा भविष्य में होने वाले स्वतंत्रता आन्दोलन हेतु एक सशक्त धरातल प्रस्तुत किया। सरकारी दमन तथा भारत में राजनैतिक सुधार न करने की सरकार की नीति को अपनाने से तथा पंजाब के जलियाँवाला बाग तथा अन्य जगहों पर किये गये अत्याचार करने वाले अधिकारियों को सम्मानित किये जाने से भारतीय जन आक्रोश और अधिक मुखरित

हुआ। युरोप में जनरल डायर को विभूति का स्थान दिया गया और 20 हजार पौंड की एक तलवार उसे भेंट की गई। पंजाब के अत्याचारों की जांच करने के लिये सरकार ने हंटर कमेटी गठित की, लेकिन उसने कारनामों पर लीपापोती करने का ही काम किया। प्रतिक्रियास्वरूप कांग्रेस ने कमेटी से असहयोग किया, लेकिन सरकार ने इस असहयोग के उपरांत भी अपनी अत्याचारपूर्ण तथा अपराधपूर्ण नीति जारी रखी। इस सारे अन्याय के साथ खिलाफत संबधी अन्याय भी जुड़ गया, जिससे हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान बिगड़ गये। जब मुसलमानों को यह अनुभव हुआ कि ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करना व्यर्थ है तो उन्होंने सशस्त्र विद्रोह करने के बजाय गाँधी के नेतृत्व में असहयोग का मार्ग स्वीकार किया। इस प्रकार पंजाब का अन्याय तथा खिलाफत संबंधी अन्याय व इसके साथ ही सत्ता त्याग करने की सरकार की अनिच्छा संबंधी बातों से लोगों का असंतोष बढ़ता जा रहा था और वे उन्हें भीतर ही भीतर आक्रोशित कर रही थी।

10 मार्च 1920 को गाँधी ने जो घोषणा पत्र प्रकाशित किया उससे स्पष्टतः असहयोग की सूचना मिलती है। ''आइये संक्षेप में इस बात पर विचार करे कि यदि हमारी मांगे मंजूर न हुई तो हम क्या करेंगे। सशस्त्र लडाई चाहे वह गुप्त रूप से हो, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से अन्ततः ये केवल बर्बरता का ही मार्ग है। अब केवल असहयोग का ही मार्ग ही शेष रहता है। यदि हम पूरी तरह हिंसा से अलिप्त रह सके तो यह मार्ग जितना विशुद्ध है उतना ही अत्यन्त परिणामकारी भी। स्वेच्छा से सरकार के साथ असहयोग करना ही जनता के असंतोष को व्यक्त करने की एक मात्र कसौटी है।''

6 अप्रैल से 13 अप्रैल तक सारे भारतवर्ष में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। सप्ताह का प्रारम्भ उपवास और प्रार्थना से हुआ। इस सप्ताह में तीन सभाएं करनी थी – पहली रौलट एक्ट को वापस करने के लिये, दूसरी पंजाब के अत्याचार को दूर करने के लिये और तीसरी खिलाफत के अन्याय का निवारण करने के लिये। जनता को सत्य अहिंसा का यथार्थ अर्थ समझाकर आगामी संघर्ष के क्रियान्वयन करने का आदेश दिया गया। इसी बीच गाँधी जी अखिल भारतीय होमरूल लीग के अध्यक्ष बने। लीग का नाम बदलकर 'स्वराज्य सभा' कर दिया गया। इस सभा की ओर से रचनात्मक कार्यक्रम के चार सूत्रों का जनता में प्रसार किया गया – (1) हिन्दू मुस्लिम एकता (2) चरखे के साथ–साथ स्वदेशी प्रचार, (3) राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी का प्रसार तथा (4) भाषाओं के आधार पर प्रान्तों की रचना। असहयोग आन्दोलन के इन कार्यक्रमों नें रचनात्मक सत्याग्रह के स्वरूप को कालान्तर में प्रस्तुत किया।

आन्दोलन के उपरोक्त कार्यक्रमों तथा गतिविधियों के उपरांत भी कोई लाभ न होने की स्थिति में गाँधी ने घोषणा की कि 1 अगस्त 1920 को अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया जाएगा। इस राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के बारे में गांधी यंग इण्डिया में लिखते है ''जो सरकार सत्ता नहीं सौंपना चाहती उससे न्याय प्राप्त करने की यदि कोई शक्ति है तो वह सत्याग्रह ही है। फिर उस सत्याग्रह को चाहे सविनय अवज्ञा कहे या असहयोग। पहले की ही भांति यह लड़ाई उपवास और प्रार्थना से प्रारम्भ की जाएगी। आम हड़तालें की जाए तथा संधि की शर्तों पर पुर्नविचार करने और पंजाब के अनुयायियों के लिये न्याय की मांग करने तथा जब तक न्याय न मिले तब तक असहयोग की भावना का प्रचार करने के लिये आम सभाएं की जाएं। इस दिन सरकारी पदवियों को छोड़ना शुरू किया जाए, लेकिन सबसे ज्यादा महत्त्व की बात यह है कि जनता में अनुशासन और व्यवस्था लाने का प्रयत्न किया जाए।'' साथ ही साथ उन्होंने सम्पूर्ण अहिंसा की आवश्यकता पर भी बल दिया। 4 सितम्बर 1920 को कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य पंजाब के अत्याचार और खिलाफत संबंधी अन्याय के लिये न्याय प्राप्त करना तथा स्वराज्य की स्थापना करना था। दिसम्बर, 1920 में नागपुर में कांग्रेस का विशाल अधिवेशन हुआ जिसमें 14582 प्रतिनिधि उपस्थित थे उनमें से 1050 मुसलमान व 160 स्त्रियां थी। अति उत्साह के वातावरण में कांग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव पास किया।

यह आन्दोलन प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग के नाम से पुकारा जाने लगा। इस कार्यक्रम में पदवियों व उपाधियों, चुनाव व धारा सभा, स्कूल व कॉलेज, कोर्ट व कचहरी तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का पहला कार्यक्रम था। इसके साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम भी जोड़ दिया गया – वह था राष्ट्रीय स्कूलों व कॉलेज की स्थापना करना, न्याय पंचायत व ग्राम पंचायत स्थापित करना तथा चरखे के द्वारा स्वदेशी का प्रचार करना। इसी प्रकार सरकारी व अर्द्धसरकारी सभाओं का बहिष्कार करना तथा शांतिपूर्ण धरने के द्वारा शराब आदि मादक द्रव्यों की बंदी करना भी इसमें शामिल था। जनता से यह आह्वान किया गया कि वे सरकारी या सैन्य सेवाओं में शामिल न हो।

7 अगस्त 1921–22 के महान परिवर्तनशील वर्ष में भारत में अभूतपूर्व जागृति, उत्साह, एकता, और निश्चय दिखाई देने लगा। हिन्दू–मुस्लिम समाज एकरूप हो गये। यह आन्दोलन, जोकि प्रार्थना व उपवास के कार्यक्रम से प्रारंभ हुआ था, शीघ्र ही चारों ओर फैल गया। जनता ने स्वयं स्फुर्ति से शराब बंदी का काम अपने हाथों मे लिया। कुछ अवसरों पर कहीं–कहीं भीड ने हिंसा का भी सहारा लिया, लेकिन यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर यह आन्दोलन जितना शक्तिशाली और प्रभावशाली था उतना ही अहिंसक भी था। इस अन्तराल में सैकड़ों राष्ट्रीय स्कूल खोले गये। कांग्रेस के सदस्यों की संख्या तथा स्वराज्य फंड का कोष आशा से अधिक प्राप्त हुआ। भारत में लगभग 2 लाख चरखे चलने लगे।

देश में व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियां होने के कारण प्रमुख कार्यकर्त्ता बचे नहीं थे। प्रायः सभी प्रान्तों के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ताओं को सजाएं दी गई और अनेकों पर नागरिक स्वतत्रंता प्रतिबंध लगाया गया। आन्दोलनकारियों के कार्यक्रमों तथा प्रिंस आफ वेल्स के सफल बहिष्कार की सरकार ने उग्र प्रतिक्रिया की। जिन कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं पर मुकदमे चल रहे थे उनमें से प्रायः सभी ने अपनी ओर से अदालत में पैरवी करवाने से इनकार कर दिया अतः उनमें से बहुतों को वर्ष के अन्त तक जेल में रहना पड़ा। दिसम्बर तक 'क्रिमिनल अमेंडमेंट लॉ' जारी कर दिया जिसके अनुसार सरकार किसी भी कार्यकर्त्ता को पकड़ सकती थी। सरकार ने संयुक्त प्रान्त और बंगाल के स्वंय सेवकों के संगठनों को गैर कानूनी ठहरा दिया। इससे उस सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारम्भ करने का घर बैठे मौका मिल गया जो अभी तक कांग्रेस के साधारण कार्यक्रम का अंग न बन पाया था। सरकार ने दमन चक्र चलकर यह रास्ता दिखा दिया। धीरे–धीरे राजबंदियों की संख्या बढ़ते–बढ़ते दिसम्बर के अन्त तक 30 हजार तक पहुंच गई। अत्यन्त क्षुब्ध वातावरण में कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में शुरू हुआ। वहाँ और अधिक उग्र कार्यक्रम की मांग की गई। नागपुर कांग्रेस अधिवेशन से आगे बढ़कर यहां यह आदेश दिया गया कि जहाँ अनुकूल वातावरण हो वहाँ व्यक्तिगत के साथ–साथ सामुहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया जाए। स्वयं सेवकों के ऊपर जो समूहिक मुकदमें चल रहे थे उनका उत्तर देने के लिये कांग्रेस ने अहिंसा की शपथ लेने वाले 50000 स्वयं सेवकों को भर्ती करने का निश्चय किया। कांग्रेस के सामूहिक सविनय अवज्ञा बंद करने के निश्चय करने के अनुसार गाँधी ने सूरत जिले के बारडोली में करबंदी का आन्दोलन शुरू करने की योजना बनाई। गाँधी जी ने वाइसराय को लिखा ''चूंकिं शिकायतें दूर करवाने के सारे रास्ते असफल हो चुके हैं अतः हमे करबंदी आन्दोलन प्रारम्भ करना पड़ रहा है।'' किन्त इसी काल में एक ऐसी दुखद घटना हुई जिससे पासा कांग्रेस के विरूद्ध पड़ गया। गोरखपुर जिले के एक कोने में बसे हुए चौरी–चौरा गांव में कुछ कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने बीस सिपाहियों और एक सब–इन्सपेक्टर को मार डाला। इस घटना से गाँधी का सारा कार्यक्रम बिगड गया। इससे पूर्व बम्बई और मद्रास में भी हिंसा की छुट–पुट घटनाएं हुई थी। इस प्रकार के हिंसामय वातावरण में सविनय अवज्ञा चालू रखना गाँधी को अनुचित लगा। कांग्रेस की असहमति के उपरांत भी गाँधी ने असहयोग आन्दोलन वापस लेने की घोषणा की, किन्तु आवश्यकतानुसार व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की स्वतंत्रता अवश्य दी गई। 10 मार्च को गाँधी गिरफ्तार कर दिये गये और 18 मार्च को उन्हें 6 वर्ष की जेल की सजा दी गई। सितम्बर 1922 में जब यरवदा जेल में इस आन्दोलन की उपयोगिता पर प्रश्न किये गये तो गाँधी ने कहा इस आन्दोलन के द्वारा देश कम से कम 20 वर्ष आगे बढ़ गया। बम्बई के तात्कालीन गर्वनर ने इस आन्दोलन के संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था कि यह आन्दोलन प्रायः सफलता के समीप पहुंच चुका था।

असहयोग आन्दोलन का मूल्यांकन की दृष्टि से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के संघर्ष में कैसे हजारों लोगों द्वारा सत्याग्रह व उपवास आयोजित होते रहे व अन्याय के निराकरण के लिये असहयोग की प्रक्रिया का नेतृत्व गाँधी ने किया जिसके फलस्वरूप समाज सुधार, गरीबी उन्नमूलन और देश को विदेशी परतंत्रता से मुक्त होने के लिये एक अभूतपूर्व मंच का आधार मिला। असहयोग आन्दोलन में सत्याग्रह के आन्दोलनात्मक पक्ष के साथ समाज के विकास हेतु उन्होंने साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्यनिषेध, खादी ग्रामोद्योग, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा व साक्षरता, स्त्रियों की उन्नति, राष्ट्रभाषा का प्रचार, प्रान्तीय भाषा का प्रयोग, आर्थिक समानता, आदिवासी सेवा, विद्यार्थी संगठन, किसान संगठन, मजदूर संगठन, प्राकृतिक चिकित्सा, आरोग्य नियमों की शिक्षा, गांव की सफाई, स्वदेशी आदि रचनात्मक कार्यक्रमों को संपादित किया। सत्याग्रह के विभिन्न सोपानों ने भारतीयों के लिये ऊँचे मूल्यों की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप भारत की 30 करोड़ की जनता की चेतना जागृत हुई व उनमें स्वतंत्र

होने की इच्छाशक्ति पैदा हुई। राष्ट्र में यह अनुभूति फैली कि हम पराधीनता की जंजीरों को तोड सकते हैं व इस नये दृष्टि ने भारत की राजनैतिक दशा की और फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य की दिशा को भी बदल दिया।

4.2 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

फरवरी, 1930 में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक साबरमती में हुई। यह बैठक तीन दिन तक चली व इसमें सविनय अवज्ञा के संबंध में प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार गाँधी व इसके विश्वस्त साथियों को सविनय अवज्ञा की अनुमति दी गई। कुछ दिनों बाद महासमिति की बैठक अहमदाबद में हुई जिसमें इस अधिकार का विस्तार कर गाँधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का सम्पूर्ण अधिकार सौपा गया। गाँधी ने वैयक्तिक रूप से अपने मित्रों से परामर्श किया। इसका एक मुख्य विषय नमक था। नमक कानून तोड़ने का तरीका, नमक बनाने की विधि, पड़े नमक को इक्कठा करना व नमक डिपों पर धावा बोलना आदि इस विचार विमर्श के विषय थे। नमक कानून भंग की योजना इस प्रकार बनाई गई कि गाँधी किसी नमक क्षेत्र में जाकर नमक उठाये अन्य न उठाये, वे केवल सत्याग्रह के लिये तैयार रहे। गाँधी ने इस कूच में साबरमती आश्रम के निवासियों को लिया। वर्धा आश्रम के निवासियों को तैयारी रखने व गाँधी की गिरफ्तारी तक प्रतीक्षा करने का आदेश दिया गया। उनकी गिरफ्तारी के बाद वे जैसा चाहते वो वैसा करने को स्वतंत्र थे। गाँधी को विश्वास था कि यह आन्दोलन देशव्यापी होगा व इससे अपेक्षित जागरण पैदा होगा। वे इसे निर्णायक लडाई मानते थे जिसमें या तो विजय मिलती या सर्वनाश होता। गाँधी ने सत्याग्रह आश्रम साबरमती से 2 मार्च 1930 को लार्ड इरविन के नाम एक पत्र भेजा। इसमें उन्होंने विस्तार से सविनय अवज्ञा के कारणों की चर्चा की ''स्वधीनता का आन्दोलन मूलतः गरीब से गरीब की भलाई के लिये है। इसलिये इस लडाई की शुरूआत भी इसी अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमक के इस निर्दयी एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में मुझे आशा है कि मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप से यह काम संभालने को तैयार होंगे और नमक कानून जैसे घृणित कानून को, जिसे कभी बनाया ही नहीं जाना चाहिये था, तोड़ने के कारण जो सजाएं दी जाएगी उन्हें वे खुशी–खुशी बर्दाश्त करेंगे।'' वायसराय ने इसके उत्तर में खेद प्रकट किया कि गाँधी जैसा कार्य करने जा रहे हैं, उससे निश्चित रूप से कानून व सार्वजनिक शांति भंग होगी।

इसके प्रतिउत्तर में गाँधी ने स्थापित शांति को नकारात्मक शांति की संज्ञा देते हुए वास्तविक शांति की स्थापना की आवश्यकता प्रतीत करते हुए कूच की तैयारी की। उन्होंने आश्रमवासियों और विद्यापीठ से 79 साथी चुन लिये। इन्हें 200 मील लंबी कष्टसाध्य यात्रा करके समुद्र तट पर दांडी तक पहुंचना था। उन्होंने मार्ग में पड़ने वाले गांवों के वासियों से अनुरोध किया कि वे सत्याग्रहियों यात्रियों का सादा भोजन ही दे। सरदार पटेल ने गाँधी के मार्ग में पड़ने वाले गांवों में चेतना लेने के लिए उन गांवों का दौरा किया। अभी वे रास्ते में 'रास' नामक गांव में ही थे कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। साबरमती के स्थान पर 75000 स्त्री पुरुषों ने संकल्प किया कि वे उसी रास्ते पर चलेंगे जिस पर सरदार गये हैं और स्वाधीनता प्राप्त किये बिना न तो वे स्वयं चैन से बैठेंगे न ही सरकार को बैठने देंगे। 12 मार्च, 1930 को गाँधी अपने 79 सहयोगियों को लेकर ऐतिहासिक दांडी कूच पर निकल पड़े। उनका विद्रोह अभियान प्रारंभ होते ही गांव के 300 कर्मचारियों ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। गाँधी की सविनय अवज्ञा का संदेश बिजली की गति से लोगों में फैल गया। असहयोग और अहिंसा की शक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगे। गाँधी के इस कूच पर संसार के सभ्य एवं शिक्षित अंचलों में यह प्रतिक्रिया व्यक्त की गई कि ब्रिटिश सरकार के विरोध में भारत ने रक्तहीन विद्रोह का झंडा फहरा दिया है। कूच अभी जारी ही था कि 21 मार्च 1930 को अहमदाबाद में महासमिति की बैठक हुई। इसमें कार्य समिति के पूर्व प्रस्ताव का सर्मथन किया गया और नमक कानून भंग कर समस्त शक्ति केन्द्रित कर देने का अनुरोध किया गया। ये चेतावनी दी गई कि गाँधी के दांडी पहुंचकर नमक कानून तोड़ने से पूर्व सारे देश में कहीं भी सविनय अवज्ञा शुरू न की जाए। गाँधी जी की अनुमति से समस्त देश के सत्याग्रहियों के लिये यह प्रतिज्ञा पत्र बनाया गया –

1. राष्ट्रीय महासभा ने भारत की स्वाधीनता के लिये सविनय अवज्ञा के जो आन्दोलन छेडें हैं उसमें मैं शामिल होना चाहता हूं।

2. मैं कांग्रेस के शांत एवं उचित उपायों से भारत के लिये पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति का ध्येय स्वीकार करता हूँ।
3. मैं जेल जाने को तैयार और राजी हूँ। इस आन्दोलन में और भी जो कष्ट और सजाएं दी जाएगी उन्हें मैं सहर्ष सहन करूंगा।
4. जेल जाने की हालत में मैं कांग्रेस कोष से अपने परिवार के निर्वाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं मागूंगा।
5. मैं आन्दोलन के संचालकों की आज्ञाओं का निर्विवाद रूप से पालन करूंगा।

गाँधी जी ने 'गिरफ्तार होने पर' शीर्षक लेख लिखकर जनता को सूचित किया कि उनके पकड़े जाने तक लोग किस तरह का आन्दोलन चलाए। गाँधीजी की ऐतिहासिक दांडी यात्रा का दृश्य भारत के जागरण का प्रतीक था। 5 अप्रैल को वे दांडी पहुंचे जहाँ श्रीमती सरोजनी नायडु उनसे मिली। 6 अप्रैल को प्रातः कालीन प्रार्थना के उपरांत गाँधी व उनके साथी समुद्र तट से नमक बीन कर नमक कानून तोड़ने निकले। कानून तोड़ने के बाद गाँधीजी ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने नमक कर के विरूद्ध लड़ाई को पूरे राष्ट्रीय सप्ताह तक जारी रखने का अनुरोध ा किया। अंग्रेज शासन को उन्होंने चेतावनी दी कि वह आंतक और दमन के माध्यम से इस आन्दोलन को कुचलने का प्रयास न करे। स्त्रियों से अनुरोध किया गया कि वे पुरुषों के साथ डटी रहे और नमक की कड़ाहियों की रक्षा करे। नमक सत्याग्रह ने देश में जागरण की एक अपूर्व लहर पैदा कर दी। देश के प्रत्येक अंचल में लोगों ने जुलूस निकाला और नमक बनाकर कानून भंग किया। कराची, पूना, पटना, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास और शोलापुर में पुलिस ने सत्याग्रहियों का दमन हिंसात्मक तरीके से किया। बडे–बड़े शहरों में सभाएं हुई। पेशावर व मद्रास में गोलीकांड हुआ। अब गाँधीजी ने जनता को गांव में ताड़ी के सारे पेड़ काट डालने का आदेश दिया। इसका प्रारंभ उन्होंने अपने ही हाथों से किया। सूरत में उन्होंने जातीय पंचायतों से मदिरा त्याग की प्रतिज्ञा का निर्वाह करने को कहा। गुजरात की लडाई का प्रमुख केन्द्र इस समय खेडा जिला बन गया।

अब गाँधीजी ने वाइसराय को दूसरा पत्र लिखा जिसमें उन्होंने धरासना और धरसाडा के नमक कारखानों पर धावा बोलने का निश्चय किया। 5 मई 1930 को उन्हें गिरफ्तार कर यरवदा जेल पहुंचा दिया। गाँधीजी की गिरफ्तारी की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बम्बई, कलकत्ता एवं अन्य बड़े नगरों में पूर्ण हड़तालें हुई। मिलों तथा रेल्वे कारखाने के मजदूर भी काम छोड़कर बाहर निकल आये। व्यापारियों ने दुकाने बंद कर दी, सरकारी पदों और उपाधियों को छोड़ने की घोषणा होने लगी। आवेश में जनता की ओर से शोलापुर और कलकत्ता में हिंसात्मक घटनाएं हुई जिन्हें पुलिस ने क्रूरता से दबा दिया। गाँधी की गिरफ्तारी के बाद अब्बास तैयब नमक सत्याग्रह के सेनापति थे, किन्तु उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। स्वयंसेवक दल एक के बाद एक नमक के कारखानों पर धावा करता रहा। यह धावे मुख्यतः धरासना, वडाला, सिरोड़ा और सानेकता के नमक कारखानों पर किये गये। किन्तु उन्हें निर्ममतापूर्वक गिरफ्तार किया गया। मार्च 1931 तक 95 हजार से अधिक व्यक्ति जेलों में ठूंस दिये गये। कुछ क्षेत्रों में कर न देने का अर्थात करबंदी का आन्दोलन शुरू हो गया। गाँधी की गिरफ्तारी के बाद इलाहबाद में कार्यसमिति का बैठक हुई इसने कानून भंग का क्षेत्र और भी बढ़ा दिया गया। तैयब की गिरफ्तारी के बाद सरोजनी नायडू ने कई जगह सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया। 14 मई 1930 को जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार कर लिये गये। नमक कानून भंग ने अब सविनय अवज्ञा की अनेक ध ाराओं में फूट कर तीव्र गति से बहना शुरू कर दिया। विदेशी वस्त्र बहिष्कार इसका एक सशक्त रूप था। सरकार ने महासमिति को गैर कानूनी ठहरा दिया तथा पं. मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार कर 6 महीने की सजा दी गई।

सत्याग्रह के दमन के लिये सरकार ने सब प्रकार के प्रयास किये। इसमें शोलापुर का फौजी कानून, पेशावर का गोलीकांड, बम्बई का लाठी चार्ज, गुजरात के अत्याचार तथा बोरसद की महिलाओं का उत्पीडन आदि प्रमुख है। गुजरात के किसानों ने दमन नीति के विरोध स्वरूप बडौदा की ओर कूच किया। सीमाप्रांत में गढ़वाली सिपाहियों ने एक शांत सभा पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। 26 जनवरी 1939 को समझौते के उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने के लिये गाँधी व उनके साथियों को बिना शर्त रिहा करने की विज्ञप्ति प्रकाशित की गई। समझौते की वार्ता कई बार चली और भंग हुई। अंत में 14 अगस्त को सम्मेलन हुआ जिसमें समझौते की बातचीत की गई। किन्तु सप्रु जयकर के प्रयत्न से छेड़ी गई यह वार्ता सफल न हो सकी। इसके पश्चात् सैलीआक कॉलेज में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध

यापक श्री टोरेस सी. समझौते के लिये आगे आए व वाइसराय और गाँधी से मिले और गाँधी जी उनकी बात से प्रभावित हुए तथा गोलमेज परिषद की पूर्वपीठिका तैयार हुई। 5 मई 1931 को एक महीने की वार्ता के फलस्वरूप गाँधी इरविन समझौता सम्पन्न हुआ। सरकार ने आर्डिनेन्स वापस ले लिया। नमक कर में ढिलाई कर दी गई ताकि गरीब लोग इच्छानुसार नमक का प्रयोग कर सके। इस प्रकार सविनय अवज्ञा की यह लडाई, जो 13 मार्च 1930 को प्रारंभ हुई 5 मई 1931 को समाप्त हुई।

4.3 सविनय अवज्ञा की पुनरावृत्ति

1931 में गाँधी इरविन पैक्ट के साथ ही सविनय कानून भंग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। इस समझौते के होते ही कांग्रेस व अन्य संस्थाओं से रोक हटा दी गई। नशीली वस्तुओं, विदेशी कपड़ों व शराब के बहिष्कार के अलावा अन्य सभी बहिष्कार बंद कर दिये गये। लेकिन शीघ्र ही समझौते की शर्तों का उल्लघंन प्रांरभ हो गया। सितम्बर 1931 में गाँधी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैण्ड गये। लेकिन वह अपने उद्देश्य में असफल रहा। यद्यपि उसमें नये संविधान के कुछ ब्यौरे निश्चित किये गये लेकिन वह सब दिखावे के लिये था। साम्प्रदायिक गतिरोध भी वैसा ही बना रहा। स्वाधीनता की समस्या का तनिक भी समाधान नहीं हुआ। दिसम्बर, 1931 में गाँधी लौट आए। गाँधी जब भारत लौटे तो यहां सरकार का दमन चक्र तेज हो गया था। नेहरू व गफ्फार खा को गिरफ्तार कर लिया गया था। कई जगह अध्यादेशों के द्वारा शासन चलाया जा रहा था। कांग्रेस की बैठक में निर्णय लिया गया कि सरकार के साथ सहयोग अब संभव नहीं है। गाँधी ने वाइसराय को सूचित किया कि यदि वे परिस्थितियों को सुलझाने को तैयार नहीं हुए तो सविनय कानून भंग पुनः प्रारम्भ किया जाएगा। अगले ही दिन गाँधी को सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। इसके अतिरिक्त सभी कांग्रेस कार्यकर्ताओं को जेल में ठूंस दिया गया। संपति जब्त कर ली गई। उनकी बर्बरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नेताओं के अतिरिक्त करीब सवा लाख लोग जेल में ठूंस दिये गये। 1932 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रम्जै मेकडोनाल्ड द्वारा साम्प्रदायिक पचांट जारी किया गया जिसमें मुसलमानों व इसाइयों के अतिरिक्त हरिजनों के लिये भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की बात उठाई गई। गाँधी ने इसका विरोध किया और जेल में ही आमरण अनशन शुरू कर दिया। अनशन के परिणामस्वरूप पूना पैक्ट हुआ और हरिजनों के लिए संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों में स्थान आरक्षण की व्यवस्था स्वीकार की गई।

यह आन्दोलन मई, 1933 तक चलता रहा जब तक गाँधी ने इसे रोक नहीं दिया। जुलाई, 1933 के बाद गाँधी ने जनआन्दोलन स्थगित कर व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का निश्चय किया। इस समय तक जनता का उत्साह ठण्डा पड़ चुका था। नैतिक पतन के चिन्ह दिखाई देने लग गये थे। अतः अप्रैल, 1934 को गाँधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को पूर्णतः समाप्त कर दिया और कांग्रेस की सेवा से निवृत्ति लेकर समाजिक कार्य व ग्रामोत्थान के लिये वर्धा चले गये। यद्यपि आन्दोलन समाप्त हो गया, लेकिन इसने सिद्ध कर दिया कि भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अब कुछ भी कर गुजरने को तैयार है। उनके हृदय में अब कोई झिझक नहीं रह गई है। वे लहु व आँसु बहाकर भी स्वतंत्रता से कम किसी बात को स्वीकार नहीं करेंगे। इस आन्दोलन ने अहिंसा की शक्ति के साथ–साथ महिलाओं की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये त्याग व बलिदान की भावना को भी प्रदर्शित किया।

4.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन से पहले की महत्वपूर्ण घटनाएं (1932–1942)

नवम्बर–दिसम्बर, 1932 में लंदन में गोलमेज सम्मेलन हुआ। इसमें भारत का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। ब्रिटेन में भी सरकार बदल चुकी थी। नई अनुदार सरकार यह नहीं चाहती थी कि भारतीयों को कोई स्वशासन से संबंधित अधिकार मिले। इस सम्मेलन में नये सविधान के प्रारूप के सन्दर्भ में कुछ निर्णय लिये गये। इन संवैधानिक सुधारों से कोई सहमत नहीं था। 1935 में संयुक्त प्रवर समीति की रिर्पोट के आधार पर सम्मेलन में प्रस्तुत प्रस्तावों पर एक अधिनियम बनाया गया। काफी विचार विर्मश के बाद कांग्रेस ने इस अधिनियम में सहयोग करने का निश्चय किया तथा 1937 के चुनावों में 11 में से 8 प्रान्तों में अपने मंत्रीमण्डल बनाए। नेहरू व बोस इसमें सम्मिलित नहीं हुए। सितम्बर, 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया और अंग्रेजी सरकार ने बिना कांग्रेस मंत्रीमण्डल की अनुमति के भारत को भी युद्ध में धकेल दिया। अतः विरोध स्वरूप अक्टूबर, 1939 में कांग्रेस मंत्रीमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिया। मुस्लिम लीग अधिक सक्रिय हो गई। 1940 में जिन्ना ने द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त प्रस्तुत कर पाकिस्तान बनाने की मांग रखी और यह मांग

लाहौर अधिवेशन में स्वीकार कर ली गई। अंग्रेजो को लगा कि कांग्रेस का साथ युद्ध में जरूरी है। अतः उन्होंने घोषणा की कि युद्ध के बाद भारत को यथाशीघ्र औपनिवैशिक पद दे दिया जाएगा। लेकिन कांग्रेस ने इस घोषणा को अस्वीकार कर दिया। गाँधी ने नवम्बर, 1940 में सांकेतिक विरोध स्वरूप व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन बड़े शांतिपूर्वक ढंग से शुरू किया। लेकिन फिर भी सरकार ने सैकड़ों व्यक्तियों को बंदी बना लिया। गाँधी ने यह सत्याग्रह अंग्रेजों से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग के लिये किया व विनोबा को सबसे आगे किया। यह सिलसिला 1941 तक चलता रहा। दूसरे दल व जनमत के दबाव से सरकार ने सत्याग्रहियों को छोड़ना स्वीकारा व सारे कैदी छोड़ दिये गये। 1942 में वर्धा में कांग्रेस कमेटी की बैठक में फिर से लडाई शुरू नहीं करने का निर्णय लिया गया लेकिन जापान के संभावित आक्रमण को ध्यान में रखकर आत्मरक्षा पर जोर दिया गया।

4.5 विनोबा का भूदान आन्दोलन

गाँधी की मृत्यु के बाद उनकी सर्वोदय भावना को कार्यरूप में परिणित करने तथा सर्वोदय समाज व्यवस्था पर विचार करने की दृष्टि से सेवाग्राम में 11—15 मार्च, 1948 में देश के सभी रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं तथा गाँधी विचार प्रेमियों का एक सम्मेलन गाँधी सेवा संघ की ओर से हुआ। इसमें वे लोग भी सम्मिलित हुए जो सरकार में थे जैसे नेहरू, पटेल, प्रसाद आदि तथा गाँधी के गैर सरकारी अनुयायी भी सम्मिलित हुए। आजादी मिले अभी कुछ ही महीने हुए थे। गहरे विचार मंथन के बाद उसमें सर्वोदय समाज और सर्वसेवा संघ नामक संस्था की स्थापना हुई। अब सर्वोदय आन्दोलन का नेतृत्व विनोबा के हाथों में आ गया। स्वतंत्र रूप से सर्व सेवा संघ की स्थापना करके विनोबा ने सर्वोदय आन्दोलन का कार्य गाँधी के उत्तराधिकारी के रूप में अपने हाथों में लिये।

भारत के विभिन्न राज्यों में हर साल लोक सेवकों का वार्षिक सर्वोदय समाज सम्मेलन सम्पन्न होने लगा। इसी प्रकार के एक सर्वोदय सम्मेलन को जाते समय विनोबा तेलंगाना पहुंचे। वहां आये दिन जमीदारों की हिंसाओं के समाचार मिलते थे। भूमिहीन किसानों के सशस्त्र समूह संगठित होकर हत्याएं करते थे। विनोबा ने इन हत्यायों के पीछे जो भूमि समस्या थी, उसका अध्ययन किया। भूमिहीनों की भूमि की आवश्यकता यदि पूरी न की गयी तो ऐसी हत्याएं सारे भारतवर्ष में फैलने की संभावनाए थी। इस भूमि समस्या पर गाँधी विचार से नया उपाय निकल सकता है, इस दिशा में विनोबा का चिन्तन चला। उन्होंने विचार किया कि ब्रिटिश साम्रज्यशाही का उन्नमूलन यदि गाँधी नीति द्वारा हो सकता है तो आर्थिक क्षेत्र की समस्याओं के लिये भी गाँधी मार्ग का प्रयोग किया जा सकता है।

भूदान आन्दोलन के उद्देश्य निम्नलिखित थे —

¼i½ 0;fäxr LokfeRo dk fujkd.k

विनोबा के अनुसार भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर कुछ लोगों को भूमिहीन रखना एक प्रकार का अन्याय है जो हिंसक समाज व्यवस्था के आधार को मजबूती प्रदान करता है। भूदान ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रायश्चित के सुअवसर प्रस्तुत करता है।

¼ii½ ie vkj vfgl k dh 'kfä dk fuek.k

विनोबा मानते थे कि व्यक्ति के आपसी प्रेम से व्यक्ति, परिवार और समाज की शक्ति के साथ—साथ देश की भी शक्ति बढ़ती है। समाज की बुराई को दूर करने हेतु अहिंसा के प्रेम पर आधारित सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है तथा इस कार्य को भूदान यज्ञ कुशलतापूर्वक सम्पन्न करता है।

¼iii½ tkru oky dh tehu

विनोबा ने भूदान आन्दोलन को इसलिये भी आवश्यक समझा कि जमीन खेती करने वाले मेहनतकश किसानों के पास ही रहनी चाहिये। वेदों में उल्लेख आया है कि पृथ्वी माता है और हम उसके पुत्र है। पुत्र होने के नाते हमें पृथ्वी की सेवा का ही अधिकार है, उस पर आदेश करने का नहीं।

¼iv½ ân; ifjorZu }kjk 'kklu eqä rFkk 'kks"k.k eqä vfgald lekt jpuk

भूदान यज्ञ का मुख्य उद्देश्य केवल भूमि वितरण नहीं है। भूमि वितरण तो आन्दोलन का पहला कदम है। आन्दोलन से शासन मुक्त समाज स्थापित करने का ध्येय था और शासन मुक्त समाज तभी होगा, जब समाज में शासन

की आवश्यकता ही न रहे। शासन की आवश्यकता ही नहीं पड़े, इसके लिये शोषणमुक्त समाज चाहिये और शोषण मुक्त समाज की रचना तभी हो सकती है जब समाज रचना का आधार प्रेम व अहिंसा जैसे नैतिक मूल्य हो।

¼v½ lekt ifjorZu gsrq

कृषि प्रधान देश में समाज परिवर्तन का आरंभ भूमि व्यवस्था के परिवर्तन से होता है। अतः विनोबा को भी सामाजिक आर्थिक परिवर्तन कर सर्वोदय समाज स्थापित करना था। इसलिये उन्होंने पहले भूमि में अहिंसक साधनों के द्वारा क्रांति लाने का प्रयास किया।

¼vi½ vFkZ jpuk esa Økafr gsrq

अर्थ रचना में परिवर्तन करने के लिये प्रारम्भ भूमि से ही करना होगा। मात्र भारत ही नही, अन्य औद्योगिक देशों की रचना का आधार कृषि से अलग नहीं है।

¼vii½ thou dk vk/kkj Hkwfe

जमीन केवल उत्पादन का ही साधन नहीं है। जमीन वसुंधरा भी है। मनुष्य की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ती पृथ्वी से ही होती है। इस दृष्टि से पृथ्वी के अलावा अन्य क्षेत्रों में समानता लाने का उद्देश्य भूदान में नीहित है।

4.6 भूदान यज्ञ का प्रारंभ

भूदान यज्ञ की शुरूआत अर्थात उत्पत्ति अनायास ही 18 सितम्बर 1951 को हुई, स्थान था भारत के दक्षिण भाग में अवस्थित राज्य आंध्र प्रदेश का पोचम्पल्ली गांव, जो कि तेलंगाना क्षेत्र में अवस्थित है। प्रतिदिन की भांति विनोबा व उनके सहयोगी शाम के समय पंचायत में विचार विर्मश कर रहे थे कि विनोबा बोले ''यदि कोई व्यक्ति मुझे भूमि दान में दे दे तो मैं उस भूमि को भूमिहीनों में बाटंकर इस क्षेत्र की हिंसा की समस्या का समाधान करने का प्रयास करूंगा।'' जिस पर श्री रामचन्द्र रेड्डी ने 100 एकड़ भूमि दान में देकर भूदान का सूत्रपात किया। 18 अप्रैल की इस चमत्कारिक घटना से विनोबा के इस विचार को बहुत बल मिला कि व्यक्ति का हृदय परिवर्तन कर दान में भूमि मांगकर, भूमिहीनों को भूमि उपलब्ध कराकर शांतिपूर्ण तरीके से भूमि का समान वितरण किया जा सकता है जिससे सर्वोदय समाज की रचना का स्वप्न भी साकार हो सकता हैं। साम्यवादियों के गढ़ आंध्र प्रदेश के तेलगांना क्षेत्र में भूदान आंदोलन की शुरूआत के साथ ही विनोबा ने 51 दिनों मे 12202 एकड भूमि प्राप्त की और इस प्रकार उनके नेतृत्व में सारे देश में लगभग 42 लाख एकड भूमि दान में ली गई और भूमिहीनों के बीच वितरित की गई।

उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम तक पूरे भारत में विनोबा ने भूदान के लिए पदयात्रा की। जिस भारत में सुई के अग्रभाग पर रहने वाली भूमि भी देने से इनकार करने पर महाभारत हुआ था व जिस भारत से आज भी जमीन जायदाद के लिये भाई–भाई परस्पर में लड़ते हैं उस आधुनिक भारत में खून की एक बूंद भी बहाये बिना लाखों एकड भूमि का दान भूमिहीनों के लिये प्राप्त हुआ। एक अभूतपूर्व रक्तहीन क्रांति सारे भारत में होने लगी। सारी दुनिया गाँधी के भारत में होने वाले इस प्रयोग की ओर आशा से देखने लगी। भूदान की परिणिती ग्रामदान में हुई और गांव के गांव दान में मिलने लगे। ग्रामदान, तहसीलदान जिलादान तथा राज्यदान तक इस आन्दोलन के विचार पहुंचे। विनोबा के इन दान के आन्दोलन में से श्रमदान, सम्पतिदान, जीवनदान का विचार तो समाने आया ही, साथ ही खादी, शांतिसेना, सर्वोदय पात्र, आचार्यकुल आदि अनेक कार्यक्रम सामने आये। ग्राम स्वराज्य का एक सर्वांगीण कार्यकम बना। अहिंसक सामाज रचना का एक रेखाचित्र उभरा। गाँधी ने हिन्दस्वराज्य का जो स्वप्न देखा था, उसी का विनियोग विभिन्न क्षेत्रों में विनोबा के द्वारा हुआ। सर्वोदय समाज रचना की कल्पना, जो गाँधी ने की थी, उनका विस्तृत वर्णन ग्राम स्वराज्य आन्दोलन में हुआ। इस सन्दर्भ में जयप्रकाश ने कहा ''विनोबा के आन्दोलन के कारण गाँधी की अहिंसक क्रांति और समाज परिवर्तन का विचार उन्नत रहा, शायद विनोबा के ऐसे आन्दोलन के बिना सर्वोदय की आत्मप्रतीती संभव नहीं होती।

भूदान यज्ञ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह अमीरों के साथ–साथ गरीबों में भी समर्पण सेवा एवं त्याग की भावना पैदा करता है। दादा धर्माधिकारी के अनुसार ''आज तक क्रांति का उद्देश्य यह रहा है कि जिनके पास है उनसे ले लो और यह किसी भी साधन से लिया जा सकता है, किन्तु इसके विपरीत भूदान की यह कोशिश है कि स्वामित्व

के विसर्जन के भावना यदि अमीर के हृदय में पैदा करनी है, तो आगे चलकर गरीबों को भी स्वामित्व की भावना के विसर्जन के लिये तैयार होना पड़ेगा।

विनोबा का भूदान यज्ञ गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिये तथा पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था की समत्ति के लिये अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर आधारित है। यह एक वैज्ञानिक तरीका है। विनोबा ने भूदान यज्ञ द्वारा देश की भूमि की समस्या की ओर लोगों का ध्यान खीचा। उन्होंन देश के कोने–कोने में गांव–गावं में इस बात के चेतना जगा दी कि हमारी समस्याओं का समाधान हमारे हाथ में है। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में, जहाँ लगभग आधी से अधिक जनसंख्या आज भी गांवों में रहती है, कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। यह जीविकोपार्जन का साधन ही नहीं, अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ है। देश के उद्योग धंधे, विदेशी व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन, विभिन्न योजनाओं की सफलता व राजनीतिक दायित्व भी कृषि पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में कृषि के विकास के लिये ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त निर्धनता को दूर करने, बेरोजगारी व अर्धबेरोजगारी से मुक्ति दिलाने हेतु आज भी भूदान पूर्ण रूप से प्रासंगिक है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भूदान आन्दोलन विभिन्न समस्याओं को अहिसांत्मक और शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की दिशा में एक प्रयास है। गाँधी पश्चात सर्वोदय प्राप्ति के लिये शांति आन्दोलनों की शृंखला में भूदान आन्दोलन उल्लेखनीय स्थान रखता है।

4.7 ग्रामदान

ग्रामदान का अर्थ है 'किसी गांव के सभी भूस्वामी अपने पूरे ग्राम, समाज को अर्पित करे तथा पूरा गांव सहकारिता के आधार पर उस भूमि पर उत्पादन करे और उपज आपस में बांट ले।'' ग्रामदान हो जाने पर भूमि पर किसी का स्वामित्व न होकर पूरे ग्रामीण समुदाय का भूमि के उपयोग करने का आवश्यकतानुसार अधिकार रहता है। गाँधीवादी विचारक चारूचंद्र भंडारी धार्मिक दृष्टि से ग्रामदान का अर्थ लगाते हुए ग्रामदान को करूणा सेवा और सहयोग का विचार मानते हैं। उनके अनुसार ''ग्रामदान में वे सारे तत्व हैं जिससे व्यक्ति के टूटे हुए हृदय को जोड़ा जा सकता है।'' श्री मन्नारायण के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से ग्रामदान स्वावलंबी व ग्रामीण कुटीर उद्योग तथा खादी का कार्यक्रम है।'' वे ग्रामदान में राजनीतिक विचार भी पाते हैं। अतः वे पुनः कहते हैं ''ग्रामदान शासन मुक्त समाज, वास्तविक लोकशक्ति और लोकनीति का भी विचार है।'' वे इसमें शांति सेना और नई तालीम का दर्शन करते हुए इसे हृदयपरिवर्तन तथा विचार परिवर्तन के आधार पर क्रांतिमयी क्रांति का सूचक मानते हैं। डॉ. दशरथ सिंह के अनुसार ग्रामदान धर्म की दृष्टि से करूणा और सेवा का, विज्ञान की दृष्टि से सहयोग का, समाज की दृष्टि से टूटे हुए हृदय को जोड़ने का, आर्थिक दृष्टि से ग्रामीण कुटीर उद्योग तथा खादी का, राजनैतिक दृष्टि से शासन मुक्त समाज तथा वास्तविक लोकशक्ति और लोकनीति का, प्रतिरक्षा की दृष्टि से शांति सेना का और अहिंसक क्रांति के मार्ग के रूप में ये नई तालीम हृदय परिवर्तन तथा विचार परिवर्तन के आधार पर शांतिमय क्रांति का सूचक है।

ग्रामदान आन्दोलन का सूत्रपात भूदान आन्दोलन के दौरान ही 1952 में उत्तरप्रदेश के मंगरोठ गांव में हुआ। इस आन्दोलन को उड़ीसा में गौरव मिला, जब महात्मा गाँधी के बलिदान दिवस 30 जनवरी 1952 को उड़ीसा के कटक जिले में मानपुर गांव को पहला ग्रामदान बनने का गौरव प्राप्त हुआ। मानपुर गांव के दान होते ही ग्रामदान आन्दोलन भूदान आन्दोलन के मार्ग पर पूरे उत्साह साथ आगे बढ़ चला।

4.8 दर्शन एवं उद्देश्य

¼i½ lg;kx'khy ,oa lrfyr lekt dk fuekZ.k

ग्रामदान का दर्शन ही सहयोग पर आधारित है, इसलिए यह समाज रचना का आधार सहयोग को बनाना चाहता है। यह प्रतिस्पर्धा को नकारता है, उसे तिलांजली देता है, क्योंकि अब तक की समाज रचना प्रायः प्रतिस्पध र्ा के दर्शन पर आधारित रही है। प्रतिस्पर्धा व्यक्ति से प्रारम्भ होकर समाज, राष्ट्र और अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्रों तक जाती है जो सामाजिक तनाव, हिंसा और अनेक राष्ट्र के बीच वैमनस्यपूर्ण युद्ध को निमंत्रण देता है। समाज के विभिन्न घटक संघर्षरत होकर समाज को अव्यस्थित और असंतुलित कर देते हैं। इसलिये विनोबा ने सहयोगशील और संतुलित समाज निर्माण के उद्देश्य से ग्रामदान आन्दोलन चलाया।

¼ii½ lkekftd eY;k vkj fopkjk e ifjoru

ग्रामदान का मुख्य उद्देश्य समाज में मूल्य परिवर्तन के द्वारा क्रांति लाना है। यह समाज परिवर्तन के अपने उद्देश्यों को पूरा करने में व्यक्ति के तात्कालिक सुखों की चिंता नहीं करता। इसका लक्ष्य है व्यक्तियों को शाश्वत सुख उपलब्ध कराना, जिसकी उपलब्धि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन से ही हो सकती है। व्यक्ति के हृदय परिवर्तन से यह परिवर्तन होता है और इस प्रकार के परिवर्तन की शक्ति ग्राम में नीहित है।

¼iii½ lekt e ufrdrk dh ifrLFkkiuk

विनोबा ग्रामदान के द्वारा समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं। ये नैतिक मूल्य व्यक्ति का प्रेम, त्याग तथा सेवाभावना ही है। ग्रामदान व्यक्ति में त्याग की प्रेरणा जागता है तथा उसे सारे समाज से हृदय परिवर्तन के द्वारा प्रेममय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जागृत करता है जिसके फलस्वरूप उसमें दान की प्रवृति जगती है। ग्रामदान से व्यक्ति का हृदय सदा के लिये परिवर्तित हो जाता है। विनोबा तो नैतिक विचारों की उपस्थिति के लिये परिग्रह के त्याग को ही प्रमुखता देते हैं।

¼iv½ llkfjd vkj vk/;kfRed efä dk fopkj

ग्रामदान का उद्देश्य व्यक्ति को मुक्ति दिलाना तो अवश्य है लेकिन इसकी मुक्ति तथाकथित साधुओं सन्यासियों की मुक्ति से अलग है। ग्रामदान के द्वारा विनोबा का उद्देश्य जहाँ एक ओर व्यक्ति को आध्यात्मिक मुक्ति दिलाना था, वहीं दूसरी ओर संसारिक मुक्ति भी दिलाना था। ग्रामसभा गठित करके ग्राम से संबंधित सारे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक, शैक्षणिक आदि कार्यों का सम्पादन ग्रामवासी स्वतः करने लगते हैं तो उन्हें सरकार के दमन तंत्र, पूंजी के शोषण और बंदूक के दमन तीनों से मुक्ति मिल जाती है।

¼v½ xke LojkT; dk |krd

ग्रामदान पर जब हम राजनैतिक दृष्टि से विचार करते हैं तो यह ग्राम स्वराज्य की स्थापना करता हुआ प्रतीत होता है। ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धान्त हैं – मानव जीवन एवं मानवता की सर्वोच्चता, सर्वकल्याणकारी पद्धति, समानता, स्वावलम्बन एवं सहयोग, सत्याग्रह एवं न्याय निष्ठा तथा नई तालीम। ग्प्रमदान से ग्राम स्वराज्य के उक्त सारे तत्त्व मौजूद है। इसलिये विनोबा ने भूदान, ग्रामदान जैसे कार्यक्रमों के द्वारा गाँधी परिकल्पित ग्रामस्वराज्य के सपनो को साकार करना चाहा था।

¼vi½ fodfUnr vFk0;oLFkk ,o ox fujkdj.k dk |krd

विनोबा का विचार था कि अगर देश की बेकारी की समस्या तथा संघर्ष से मुक्ति पाना चाहते हैं तो वस्तुओं के केन्द्रित उत्पादन का बहिष्कार और ग्रामोद्योग की स्थापना का आन्दोलन चलाना होगा। सम्पति का विकेन्द्रित उत्पादन ग्रामदान की व्यवस्था के द्वारा ग्रामोद्योग के माध्यम से आसानी से सम्पन्न होता है। उनके अनुसार सम्पति और वर्ग निराकरण के लिये यह देखना अपेक्षित है कि सम्पति और वर्ग का आधार क्या है? और वे इसका आधार स्वामित्व की भावना को मानते हैं। ग्रामदान में हृदय परिवर्तन के द्वारा भूमि, श्रम और सम्पति तीनों के दान से सभी प्रकार के स्वामित्व का त्याग कर दिया जाता है जिससे वर्ग निराकरण स्वतः हो जाता है।

ग्रामदान आन्दोलन के दौरान अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, अक्षोभ चिन्तन, पंच शक्ति सहयोग, गुणदर्शन, गण सेवकत्व, विश्वास शक्ति आदि कई मूल्यवान विचार विनोबा ने समाज के सामने रखे। मानव जाति के विकास के लिए और सर्वोदयी समाज की रचना के लिये यह सब अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रायः 20 वर्ष तक निरन्तर विनोबा ने इस देशव्यापी आन्दोलन का संचालन किया। ग्रामदान के तूफानी अभियान में सूक्ष्म–जन मनोविज्ञान का प्रयोग सूझबूझ के साथ किया गया था। विनोबा को सर्वोदय के लिये लोकसम्मति प्राप्त करनी थी और ग्रामदान के कार्यक्रम की क्रांतिकारी संभावना प्रकट करनी थी। व्यूह रचना यह अपनाई गई थी कि एक बार बहुत बड़े पैमाने पर ग्रामदान के संकल्प करवा लिये जाएं और फिर एक साथ बडे पैमाने पर उसे असली रूप दिया जाये। विनोबा के मन में ग्रामस्वराज्य के अपने प्रयोग को पूर्णता तक पहुंचाने की कल्पना थी। लेकिन दुर्भाग्य से सर्वोदय आन्दोलन का यह चरण क्रियान्वित

नहीं हो सका और विनोबा का प्रयोग अधूरा ही रह गया। विनोबा स्वयं कहते रहे कि यदि भूदान व ग्रामदान हेतु किया गया कार्य कागजी साबित हुआ तो भगवान ही आपको बचाये। लेकिन हुआ वही और प्रयोग अधूरा ही छूट गया जिसका बहुत बुरा असर कार्यकर्त्ता और जनता के मानस पर पड़ा। ऐसा लगा कि अब तक जो किया था सब व्यर्थ चला गया। इससे श्रद्धा और शक्ति क्षीण हुई। ऐसे वातावरण में विनोबा और सर्व सेवा संघ के नेताओं के बीच सामुहिक विचार विमर्श होकर सारी स्थिति का तलर्स्पशी मूल्याँकन करके, सर्वोदय आन्दोलन की व्यूह रचना नये सिरे से तैयार करनी चाहिये थी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इस दृष्टि से आन्दोलन का नेतृत्व और संगठन विफल सिद्ध हुआ।

4.9 आनन्द वन

इस सहस्त्राब्दी में जब भी पिछली सहस्त्राब्दी के शिखर पुरुषों की चर्चा होगी तो गाँधी शांति पुरस्कार, मैगसैसे अवार्ड आदि अनेक राष्ट्रीय, अर्न्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार एवं प्रतीकों से सम्मानित बाबा आम्टे का उल्लेख अवश्य किया जाएगा। मुरलीधर देवीदास आम्टे का जन्म 26 दिसम्बर 1914 को महाराष्ट्र में जमींदार पिता देवीदास आम्टे के यहाँ हुआ। बाबा आम्टे आरम्भ से ही दुखियों, रोगियों एवं गरीबों के मित्र तथा नेता के रूप में जाने जाते थे। कालान्तर में उन्होंने अपनी करूणामयी भावना का विस्तार बरोड़ा क्षेत्र (महाराष्ट्र) में कुष्टरोगियों की सेवा एवं अन्य सर्वोदयी रचनात्मक कार्यक्रमों हेतु आनन्दवन नामक आश्रम के रूप में किया व जिसे कालांतर में राष्ट्रीय, अर्न्तराष्ट्रीय मीडिया, शांति कार्यकर्त्ता तथा पर्यावरण सरंक्षण हेतु कार्यरत संस्थानों से मान्यता एवं सहयोग मिला।

गाँधी व टैगोर के विचारों से प्रभावित बाबा आम्टे अपने प्रारंभिक जीवनकाल से ही प्रखर प्रकृति प्रेमी थे। कालान्तर में उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया तथा कई बार स्वतंत्रता हेतु संघर्षरत कार्यकर्त्ताओं को हथियारों की आपूर्ति की। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल भेजा गया। 1946 में साधना से विवाह बंधन में बंधने के बाद उन्होंने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में पर्दापण किया, जिसकी शुरूआत उन्होंने बरोड़ा क्षेत्र के म्युन्सिपल परिषद के उपाध्यक्ष बनने से की। स्थानीय सफाई कर्मचारियों की समस्या समाधान हेतु उन्होंने कई क्रांतिकारी कदम उठाये। इस प्रकार के कार्यों के दौरान उन्हें दत्तापुर के कुष्ठरोगियों के अस्पताल को देखने का संयोग हुआ। कुष्ठ रोगियों की स्थितियों का अध्ययन कर उन्हें बरोड़ा क्षेत्र में कुष्ठ रोग निदान हेतु एक केन्द्र स्थापित करने का विचार आया जिसकी क्रियान्विती हेतु उन्होंनें 'Institute of Tropical Medicine', कलकत्ता में कुष्ठ रोग संबंधी एक वर्ष का गंभीर अध्ययन कर 1948 में बरोडा में कुष्ठ रोग निदान केन्द्र की स्थापना की। कुष्ठ रोगियों के सेवायज्ञ को पूर्ण करने में उन्हें कई प्रारंभिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। केन्द्र की स्थापना हेतु राज्य सरकार द्वारा चन्द्रपुर के निकट दी गई भूमि सांप, बिच्छुओं, झाड़-झंखाड़ आदि से भरी थी। अपनी पत्नी, दो बच्चों, छः कुष्ठ रोगियों एवं जेब में मात्र 14 रूपये लेकर वे उस क्षेत्र में गये तथा सफाई कार्य आरम्भ किया। यही से आनन्दवन आश्रम की स्थापना का शुभारंभ हुआ। कुष्ठ रोगियों की सेवा एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु उस स्थान पर छोटी–छोटी कुटियाओं का निर्माण किया गया। इसी प्रकार की एक छोटी कुटिया में चिकित्सा गृह बनाया गया जिसने आज एक विशाल अस्पताल का रूप ले लिया है। वहाँ लगभग 1½ हजार रोगियों की नियमित तथा लगभग 500 रोगियों की प्रतिदिन बाह्य चिकित्सा की जाती है। इस सेवा कार्य को सभी कर्मचारी तथा स्वयंसेवी कार्यकर्त्ता समर्पण एवं निष्ठा भाव से करते हैं इसमें बाबा आम्टे का पुत्र भी शामिल है जिसने चिकित्सा के क्षेत्र उच्च अध्ययन किया है।

कुष्ठ रोगियो की समस्याओं का यदि अध्ययन किया जाए तो चिकित्सा संबंधी समस्याओं की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक समस्याएं अधिक जटिल होती हैं। समाज से बहिष्कृत हुए लोगों को निरूत्साह, निराशा, कुण्ठा, संत्रास आदि स्थितियों से उबारने के लिये आवश्यक है कि ऐसी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया जाए जिससे वे सम्मानजनक जीवन जीने की स्थिति में आ सके। इस हेतु आनन्द वन आश्रम में कुष्ठ रोगी पुर्नस्थापन कार्यक्रमों को प्रारम्भिक काल से ही महत्त्व दिया जाता रहा है। कुष्ठ रोग से पीड़ित होने से पूर्व रोगी जिस कार्य को करता था, वह दुबारा सम्पन्न कर सके, इस दृष्टि से उन्हें मानसिक व आर्थिक रूप से तैयार कर हीनता के मनोवैज्ञानिक प्रभाव से बचने के लिए सहयोग किया जाता है। जिस कारण थोडे ही अन्तराल में आनन्द वन एक अच्छे प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में कार्य करने लगा, जहाँ सब्जियाँ, अनाज, चारा आदि का उत्पादन, पशु पालन, विकलांग सहायातार्थ उपकरण बनाना, दरी–चटाई बुनना, बुनाई, रंगाई, सिलाई, लकड़ी कार्यों का प्रशिक्षण आदि वहां के निवासी कुष्ठ रोगियों को दिया जाने लगा। गाँधी उपरांत गाँधीवादी शांति आन्दोलन के सन्दर्भ में आनन्द वन आश्रम के सर्वोदयी एवं रचनात्मक कार्यक्रमों

का यदि विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि समस्त कार्य विकेन्द्रित आर्थिक एवं सामाजिक गांधीवादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं। आनन्दवन आश्रम की विशेषता इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि यहाँ के समस्त कार्यकर्ता प्रायः विकलांग हैं तथा यह गाँधी के सपनों के भारत को चरितार्थ करते हुए अहिंसक एवं प्राकृतिक ग्रामीण कृषि आधारित आर्थिक कार्यक्रमों का सफलता से संचालन कर लाभ अर्जित कर रहे हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जहाँ करोड़ों रूपयों से अनुदानित गाँधीवादी संस्थाएं व्यवसायिक दृष्टिकोण से नितांत असफल रही है, वहीं आनन्दवन आश्रम समाज व राष्ट्र की मरूधरा से जुड़े रहते भी व्यवसायिक दृष्टिकोण से एक सफल संस्था तथा एक विशिष्ट प्रकार की लघु उद्योग नगरी का आकार पाकर भी पूर्णरूप से प्रदुषण मुक्त स्थान है।

बाबा आम्टे ने गाँधीवादी चिन्तन एवं सिद्धान्तों के आधार पर अपने सेवाक्षेत्र का विस्तार ग्रामीण आदि पिछडे तथा निर्धन इलाकों में किया, जैसे महाराष्ट्र के अतिरक्ति गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि में भी सेवाकेन्द्रों की स्थापना की। 1972 में बाबा आम्टे ने गुजरात में सोमनाथ के निकट एक और केन्द्र की स्थापना की, जहाँ प्रसिद्ध विचारक ई. एफ. शुमाकर के सिद्धान्त 'लघुता का सौन्दर्य' के आधार पर छोटे–छोटे बांध बनाकर पानी के उपयोग एवं संवर्धन हेतु पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यन्त अनुकूल कार्य किया शीघ्र ही सोमनाथ का वह क्षेत्र हरा–भरा हो गया। कृषि संबंधी अन्य सभी आवश्यकताएं वहीं पूरी होने लगी तथा गाँधी के ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को मूर्त रूप देने में कुछ सीमा तक सफलता अर्जित की। वर्तमान में बावनगढ (महाराष्ट्र) में आदिवासियों के उत्थान तथा विकास हेतु रचनात्मक कार्य गति पर है। इस क्षेत्र में, जहाँ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी कठिन हैं, 'लोक बिरादरी' नामक परियोजना के द्वारा वहां के निवासियों को समाज एवं राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने तथा शिक्षित करने का कठिनतम कार्य सिद्ध किया। बाबा आम्टे पूर्व में स्वयं शिक्षक रहने के कारण शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित थे। इस हेतु वे आदिवासियों की शिक्षा के प्रचार एवं उपयोग को फैलाना चाहते थे तथा उन्हें उनकी अविकसित व अमानवीय स्थिति का भान कराने चाहते थे, ताकि इस प्रतिकूल परिस्थितियों से शिक्षा के द्वारा छुटकारा पाया जा सके।

वास्तव में, आनन्द वन के कार्यों को किसी एक क्षेत्र विशेष से जोड़कर नहीं देखा जा सकता है। इस आश्रम के माध्यम से आम्टे ने अपने पुरूषार्थी जीवन में कुष्ठ रोगियों तथा विकलांगों की सेवा, चिकित्सा आदि के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया है, जिसके लिये वे 'मैग्सेसे अवार्ड' से सम्मानित हुए है, किन्तु इसके अतिरिक्त मानव जीवन से संबंधित कई अनेक पक्षों को भी रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया–जैसे सेवा, शिक्षा, आर्थिक स्वावलबंन आदि के द्वारा गाँधीवादी सिद्धान्तों पर आधारित अहिंसक समाज रचना का कार्य। इसके अतिरक्ति पर्यावरण सरंक्षण के लिये उनके द्वारा किये गये प्रयास विशेषतः 'नर्मदा बचाओं आन्दोलन' में उनकी भूमिका उल्लेखनीय है। बड़े बांधों के निषेध में वैकल्पिक योजनाएं सत्याग्रह के समस्त सोपानों को पूरा करते हुए प्रतीत होती हैं। विश्व परिदृश्य इस समय जिस आतंकवाद व उग्रवाद की समस्या से दुष्प्रभावित हो रहा है भारत के सन्दर्भ में बाबा आम्टे ने आतंकवाद शमन हेतु कई शांति पदयात्राएं की हैं, जिनमें कन्याकुमारी से कश्मीर तथा इटानगर से द्वारिका उल्लेखनीय है।

बाबा आम्टे के समाज सेवा के सफल शांतिपूर्ण कार्यक्रम के संचालन के पीछे उनकी पृष्ठभूमि भी रही है, जिनमें विशेष रूप से महात्मा गाँधी एवं टैगोर के विचारों को उनके व्यक्तित्व को मंगलदायक बनाने का श्रेय जाता है। इसाई परम्परा में निहित सेवा के तत्वों को उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन में एक गुणविशेष की भांति प्रतिष्ठित किया, जिसने उनको एक कारूणिक एवं संवेदनशील व्यक्ति बनने का आधार दिया। इसलिये संभवतः बाबा आम्टे मराठा साहित्य में एक ऊँचे स्तर के कवि का स्थान रखते हैं। उनके निधन के पश्चात् उनके कार्यों को वही गति उनके पुत्र व पुत्रवधु द्वारा मिल रही है।

4.10 अणुव्रत आन्दोलन : ऐतिहासिक परिचय

शताब्दियों की परतंत्रता के बाद हिन्दुस्तान स्वतंत्र हुआ। कांग्रेस और मुसिलम लीग ने संयुक्त रूप से शासन सम्भाला। हिन्दु–मुस्लिम दंगे हुए। इन दंगों में लाखों आदमी मौत के घात उतरे। जातीयता का नग्न रूप सामने आया। स्त्रियों और बच्चों के साथ निर्दय व्यवहार किये गये। ऐसी स्थिति उत्पन्न की गई कि आखिर हिन्दुस्तान विभक्त हो गया। पाकिस्तान बनने से मुस्लिम उधर गये, हिन्दु इधर आये। दोनों राष्ट्र शरणार्थियों से आक्रान्त हो गये। उनके पुनर्वास की समस्या जटिल हो गई।

हिन्दुस्तान का विधान बना और 26 जनवरी, 1950 को लागू होकर लोकतंत्र प्रणाली से शासित हो गया। संविधान ने सब वयस्कों को मत देने का अधिकार दिया। चुनाव के उपरान्त केन्द्र और प्राय: सभी प्रान्तों में कांग्रेस ने शासन संभाला। कांग्रेस सरकार ने समाजवादी समाज-व्यवस्था का लक्ष्य निश्चित किया। व्यापार और सम्पत्ति पर विभिन्न कर लगाये, देशी राज्यों का विलीनीकरण हुआ और जमींदारी का अन्त हुआ।

खाद्यान्न की कमी थी, उस पर नियन्ण किया गया। विकास की योजनाएं बनी और उसके लिए प्रयत्न होने लगे। ये स्थितियां शैशव में थी। नया निर्वाचन, नया शासन, नया अनुभव और नई व्यवस्था, महात्मा गाँधी इस संसार में नहीं रहे। दूसरे प्रमुख नेता अपने-अपने राजनीतिक दलों में फंस गये। स्वतन्त्रता के संघर्ष में जो एकता थी वह टूट गई। आजादी के आकर्षण ने जिन मौलिक समस्याओं पर आवरण डाल रखा था, वे क्रमश: उभरती गई।

जातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, महंगाई, गरीबी और भिखमंगी, बढ़ती आबादी, पर्यावरण और प्रदुषण - ये हिन्दुस्तान की मौलिक समस्याएँ थीं। अनुशासन हीनता, पद की लालसा, महत्वाकांक्षा, प्रान्तीयता और भाषाई-विवाद ये स्वतन्त्रता के बाद उपजी हुई समस्याएं हैं। इन व इन जैसी और समस्याओं से जनता का चरित्र विकृत और मानस उत्पीड़ित हो रहा था। शिक्षा बढ़ रही थी, बुद्धि का विकास हो रहा था। प्राचीन मान्यताएं शिथिल हो रही थीं। नये सिद्धान्त जन्म ले रहे थे। बुद्धिवादियों को कौसते थे। बुद्धिवादी धर्म और धर्मनेताओं को अतीत की कहानी बनाने की सोच रहे थे। कुल मिलाकर जो स्थिति बनी, उसमें ध्वंस अधिक था, निर्माण कम, उत्तेजना अधिक थी, चेतना कम। इससे सन्तुष्ट कोई नहीं था। सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय तीनों क्षेत्रों में असंतोष व्याप्त था। चरित्र पतन और अनुशासनहीनता से सभी का धैर्य विचलित हो रहा था।[1] भारतीय समाज में दहेज प्रथा, बाल-विवाह, कन्यावध, वृद्ध-विवाह, गर्भपात, भ्रूणहत्या, बलिप्रथा, वैश्यावृत्ति, परस्त्रीगमन, नारी शोषण, मृत्यु भोज, कालाधान, काला बाजारी, इत्यादि दुष्प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। इन दुष्प्रवृत्तियों में सुधार तभी सम्भव था जबकि सामाजिक ढांचे में परिवर्तन किया जाये। इन परिस्थितियों में अणुव्रत आन्दोलन सामने आया।[2] उस समय जैन धर्म तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी (जीवन परिचय व व्यक्तिगत अहिंसक प्रयोगों के लिए कृपया परिशिष्ट देखें) के मन में सामाजिक और वैयक्तिक विकारों, दुष्प्रवृत्तियों और समस्याओं के समाधान हेतु एक विचार-अणुव्रत आन्दोलन प्रस्तुत करना था। यद्यपि इसमें कोई नया तत्व नहीं था, किन्तु परिस्थितियों का सही अंकन था। उसे वर्तमान रोग के निदान और समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया, इसलिए जनता ने उसे आश्वासन माना। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जन-मानस अहिंसा की शक्ति से परिचित हो गया था। महात्मा गाँधी के ग्यारह व्रतों से भी असंख्य लोग परिचित हो गये थे।[3] व्रत और नेतिक्ता भारतीय मानस के लिए कोई नई बात नहीं थी। फिर भी धर्म और नैतिकता के विभाजन के कारण व्रत का अवमूल्यन हो रहा था। हिन्दुस्तान में इन शताब्दियों में नैतिक विकास की गति मन्द थी और स्वतन्त्र भारत में इसके मंदतर होने की संभावना थी। इस संभावना को ध्यान में रखकर चरित्र-विकास या नैतिक विकास की एक आचार-संहिता प्रस्तुत की गई। इसका राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत हुआ और समर्थन भी मिला। अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से पूरे देश में नैतिक विकास की गूंज हुई और सबने इसको एक राष्ट्रीय चरित्र-विकास के उपक्रम के रूप में स्वीकार किया।''[4]

अणुव्रतों का विधान आज से करीब ढाई हजार वर्ष पहले भगवान महावीर ने किया था। अणुव्रतों का विधान मुख्यत: गृहस्थों के लिए था। अणुव्रत चर्या तत्कालीन समाज-व्यवस्था में व्याप्त विकृतियों को दूर करने में सक्षम था। युग परिवर्तन के साथ-साथ मूल्य भी बदलते गये। समस्याओं ने भी नवीन रूप धारण कर लिया। उनके निराकरण करने के लिए प्राचीन अणुव्रतों का विश्लेषण करना आवश्यक था। इस हेतु आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। उन्होंने अणुव्रतों का विश्लेषण और यह अनुभव किया कि अनैतिकता की अमावस्या में बृहत स्तर पर प्राचीन अणुव्रतों का पालन करना संभव नहीं है। अत: उन्होंने सरल से सरल व्रतों को अपने आन्दोलन का आधार बनाया और अनैतिक व्यक्ति की नैतिकता को जागृत करने के लिए उन्हें नैतिकता का अभ्यास कराना आरम्भ किया। उन्होंने अणुव्रतों को युगीन परिस्थितियों तथा समस्याओं के समाधान हेतु नवीन रूप से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। इन अणुव्रतों को अणुव्रत आन्दोलन का नाम दिया।

समस्याओं के समाधान के लिए आचार्य श्री तुलसी ने विश्लेषण के आधार पर अनेकान्तिक दृष्टिकोण का सहारा लिया। अणुव्रतों को वर्गों में विभक्त करके विद्यार्थी, अध्यापक, सरकारी कर्मचारी, अधिकारी, राजनेता, मतदाता,

प्रत्याशी, व्यापारी और महिला वर्ग के लिए उपयोगी बनाया है। यह आन्दोलन युगीन परिस्थितियों तथा समस्याओं के निराकरण में अपने कार्यक्रमों के द्वारा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अणुव्रत आन्दोलन वातावरण को नैतिक बनाने, व्यक्ति की नैतिक चेतना को जागृत करके व्यक्ति सुधार से परिवार तथा राष्ट्र सुधार तथा अन्ततः मानवतावाद की पुनर्स्थापना का लक्ष्य लिए अपने स्थापना से अब तक निर्बाध रूप से प्रगति कर रहा है।

4.11 आन्दोलन का स्वरूप

भगवान महावीर प्रवर्तित अणुव्रतचर्या को तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी ने सन् 1949 में अणुव्रत आन्दोलन के रूप में पुनर्जीवित किया। उन्होंने अणुव्रती संघ्ज्ञ का निर्माण किया। अणुव्रत चर्या को युगीन आवश्यकताओं के संदर्भ में नवीन रूप में प्रस्तुत किया। जाति, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय, क्षेत्र, वर्ग भेद के आधार पर खण्डित मानवता का पुनः अखिल रूप सामने लाने के लिए भेद-भाव रहित मानवीय सदाचार पर बल प्रदान करने को प्रमुख उद्देश्य बनाया। विश्व-शान्ति और अहिंसा को भी लक्ष्य में सम्मिलित किया। प्राचीन अणुव्रत चर्या में यद्यपि इन दो उद्देश्यों की प्रतिध्वनि अप्रत्यक्ष रूप से स्वतः निकलती है, फिर भी इन्हें उद्देश्य रूप में कभी भी प्रस्तुत नहीं किया गया था।

आधुनिक अनैतिकता के वातावरण में प्राचीन अणुव्रतों का पालन कर पाना एक सदाचारी व्यक्ति के लिए कठिन है तो अनैतिक व्यक्ति के लिए तो असम्भव सी बात है। पंच अणुव्रतों का मन-वचन-काय योग में कृत (करना), कारित (प्रेरित करना) और अनुमोदन (समर्थन करना) द्वारा पालन करना आधुनिक युग में असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अनैतिक व्यक्ति अणुव्रतों की इतनी सूक्ष्म व्याख्या देखकर तो नैतिक बनने की सम्भावना को ही समाप्त समझते हैं।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी ने अणुव्रतों का विश्लेषण किया गया उनकी सरलतम रूप में जनता है समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने अनैतिकता में आकंठ डूबे हुए व्यक्ति को भी नैतिक बनाने का संकल्प लिया। इसके लिये उन्होंने अणुव्रतों की तीन श्रेणियां बनायी - प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती और विशिष्ट अणुव्रती। प्रवेशक अणुव्रती के लिए ग्यारह (11) नियमों का विधान किया गया। अणुव्रत अनुशास्ता का नैतिकता के क्षेत्र में यह एक नवीन प्रयोग था जो अत्यधिक सफल रहा। समालोचक इस प्रकार की खण्डित नैतिका की आलोचना करते हैं, परन्तु अणुव्रत अनुशास्ता का मानना था कि नैतिकता के बिन्दु को पकड़ कर ही सिन्धु तक पहुंचा जा सकता है। अणुव्रती को समस्त अणुव्रतों का पालन करना पड़ता था और विशिष्ट अणुव्रती को समस्त अणुव्रतों के अतिरिक्त कुछ विशेष नियमों का भी पालन करना पड़ता था। अणुव्रतों की श्रेणी का विभाजन व्यक्ति के नैतिक स्तर की अभिव्यक्ति करती है।

भगवान् महवीर के समय अणुव्रतों की इस प्रकार की श्रेणियां नहीं थी। अणुव्रती की दो श्रेणी थी[9] - मध्यम और श्रेष्ठ अणुव्रती। श्रेष्ठ अणुव्रती नवकोटि में अणुव्रतों का पालन करता था, जबकि मध्यम अणुव्रती छह कोटी से। नव कोटी से आशय मन, वचन, काय योग से कृत, कारित और अनुमोदना द्वारा अणुव्रतों का पालन करना, जबकि छह कोटी से आशय - मन, वचन, काय योग से कृत और कारित द्वारा अणुव्रतों का पालन करना।

अणुव्रता चर्या में प्रत्येक अणुव्रत के लिए पंच अतिचारों और पंच समितियों का वर्णन है।[10] पंच अतिचारों का त्याग करने और समितियों का अपनाने से ही व्रतों का एकदेश पालन सम्भव है। अणुव्रत आन्दोलन में इस प्रकार से स्पष्टतः अतिचारों और समितियों का वर्णन नहीं है।

अणुव्रत चर्या में अलग रूप में वर्गीय अणुव्रतों का विधान नहीं था, जबकि अणुव्रत अनुशास्ता के अणुव्रत आन्दोलन में वर्गीय अणुव्रतों का भी विधान किया है। व्यक्ति के कार्य-क्षेत्र के आधार पर उनको अनेक वर्गों में बांटा जा सकता है। जैसे - विद्यार्थी वर्ग, शिक्षक वर्ग, अभिभावक वर्ग, कृषक वर्ग, कर्मचारी व अधिकारी वर्ग, महिला वर्ग, व्यापारी वर्ग, डॉक्टर वर्ग, राजनेता वर्ग, उम्मीदवार, मतदाता वर्ग, चुनाव अधिकारी वर्ग इत्यादि। व्यक्ति अपनी कर्मस्थली में भी नैतिकता बनाये रख सके इसके लिए वर्गीय अणुव्रतों का विधान किया गया।

अणुव्रती की श्रेणियाँ और वर्गीय अणुव्रत में अणुव्रत अनुशास्ता के अनेकान्तिक दृष्टिकोण की पूर्णतः झलक मिलती है। उन्होंने प्रवेशक अणुव्रती के लिए जिन नियमों का विधान किया गया, उसमें माँस-भक्षण निषेध नामक नियम

हटा दिया, ताकि माँसाहारी व्यक्ति भी दूसरे क्षेत्रों में नैतिक बन सके। एक बार नैतिक बन जाने पर उनके लिए माँस-भक्षण त्याग करना भी आसान हो जायेगा।

अणुव्रत अनुशास्ता ने अणुव्रत आन्दोलन को सामाजिक परिवर्तन के चक्र रूप में प्रस्तुत किया। वैयक्तिक और सामाजिक कुरीतियों, विकारों तथा दुष्प्रवृत्तियों को जब मूल से समाप्त करने के लिए आन्दोलन ने अनवरत प्रयत्न किये उस समय समाज में दहेज प्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या वध, गर्भपात, भ्रूण हत्या, बलि प्रथा, वेश्यावृत्ति, परस्त्री गमन, पर्दा प्रथा, नारी शोषण, मृत्यु भोज इत्यादि विकार प्रचलित थे। इन विकारों को दूर करने के लिए अणुव्रत अनुशास्ता ने छोटे-छोटे व्रतों से नैतिक अभियान की शुरूआत की। इन विकारों से प्रतिरोध करने हेतु व्यक्ति की नैतिक संकल्प शक्ति को जाग्रत किया।

4.12 अहिंसा आधारित कार्यक्रम

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमें एक विघटित अर्थ व्यवस्था और सामाजिक समस्याओं से भरपूर समाज विरासत में मिला। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और अन्धविश्वास को तो तात्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने संस्थागत बुराइयों के रूप में स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त दहेज प्रथा, बाल विवाह, कन्यावध, वृद्ध विवाह, गर्भपात, भ्रूण हत्या, बलि प्रथा, वेश्यावृत्ति, पर-स्त्री गमन, नारीशोषण, महंगाई, भुखमरी, मृत्यु भोज, काला धन, कालाबाजारी, तस्करी इत्यादि सामाजिक समस्याएँ भी भारतीय समाज को छिन्न-भिन्न कर रही थी। हम राजनीतिक अर्थ में स्वतंत्र अवश्य हो गये थे, लेकिन आर्थिक व सामाजिक समस्याओं ने समाज की इस तरह दुर्गति की कि स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखना कठिन हो गया था। जातिवाद, अस्पृश्यता, भिक्षावृत्ति, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद तथा युवा तनाव ने हमारे सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को ही विषाक्त बना दिया था।

उपर्युक्त आर्थिक सामाजिक समस्याएँ भी मूलत: नैतिकता के अभाव में पनपती हैं।[1] न नैतिकता के अभाव में ही मनुष्य उचित अनुचित की सीमा को तोड़कर आवश्यकता से अधिक संग्रह करने लगता है। संग्रहशील व्यक्तियों के पास ज्यों-ज्यों संग्रह बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों आर्थिक समस्याएं जटिल से जटिलतर होती जाती हैं। ये आर्थिक समस्याएं सामाजिक समस्याओं को भी पैदा करती हैं। धन बढ़ता है, उसके साथ ही अपने अह्म की पूर्ति के लिये उसका प्रदर्शन भी बढ़ता है। इससे समाज में उच्च, मध्यम और निम्न आदि कई वर्ग व स्तर बन जाते हैं।

उपर्युक्त सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का निराकरण करने के लिए सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसमें परिवर्तन हेतु विश्व में समय-समय पर अनेक कार्यक्रम और आन्दोलन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर प्रायोजित किये गये और उनसे सफलता भी मिली, लेकिन इन नवीन प्रयोगों से नवीन समस्याओं और कठिनाइयों की उत्पत्ति हो गई जिनका समाधान उन प्रयोगों में नहीं था।

अणुव्रत आन्दोलन उपर्युक्त समस्याओं के स्थाई समाधान में विश्वास करता है। राज बल और धन-बल द्वारा इनका शाश्वत् समाधान सम्भव नहीं है। साथ ही इन समस्याओं का समाधन ऐसा होना चाहिए कि दूसरे प्रकार के सामाजिक विकारों का प्रकटीकरण न हो। इस हेतु वह मनुष्य की शक्ति को जागृत करता है। उसको उसमें व्याप्त अनन्त शक्ति से परिचित कराता है। व्यक्ति की जागृत शक्ति का उपयोग सृजनात्मक कार्य करने, सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने, कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने में करता है। इस प्रकार सामाजिक बुराइयों को दूर करने में यह आन्दोलन व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति जागृत करके महत्वपूर्ण सहयोग देता है।[2] अत: अणुव्रत आन्दोलन ने समाज-परिवर्तन करते समय दो लक्ष्य अपने समक्ष प्रस्तुत किये -

1. वर्तमान समाज-व्यवस्था में प्रचलित दोषों को दूर करने हेतु कार्य करना।

2. नवीन प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न होने से रोकना।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अणुव्रत प्रस्तोता आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के रूप में नवीन प्रयोग भावनात्मक एवं चिन्तनात्मक स्तर पर किये। भावनात्मक स्तर पर ही व्यक्ति में बदलाव लाकर समाज परिवर्तन किया जा सकता है और उसे विकारों से मुक्त किया जा सकता है। उन्होंने नैतिक पतन, संकल्प की दुर्बलता, असम्भाव और अनात्म तत्वों

के प्रति अनावश्यक आकर्षण को इन समस्याओं के मूल पर प्रहार करने का निश्चय किया, ताकि सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का समाधान किया जा सके। इसके लिये अणुव्रत आन्दोलन को सामाजिक परिवर्तन के चक्र के रूप में प्रस्तुत किया।

अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्ति के चरित्र-निर्माण द्वारा समाज और राष्ट्र के निर्माण का भी संकल्प लिया। उन्होंने चरित्र-निर्माण का आह्वान इन शब्दों में किया - ''सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।''[3] इस हेतु उन्होंने लम्बी पद यात्राएं भी की और जन-जन के हृदय में नैतिक उत्थान की ज्वाला प्रज्ज्वलित की। उनके आह्वान से जन-समुदाय ने शराब न पीने, धुम्रपान, शिकार, मिलावट इत्यादि न करने की प्रतिज्ञाएँ लीं।

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा समाज को परिवर्तित करने हेतु अनेकानेक रचनात्मक कार्यक्रम अपनाए जिनका प्रयोग अपने-आपमें अहिंसा के विधायक पक्ष को प्रतिष्ठित करना था। इन प्रयोगों को मूर्त्त रूप देने हेतु आचार्य तुलसी के लगभग 750 अहिंसक सैश्नक (साधु-साध्वियां) अणुव्रत विहार-निरन्तर पदयात्रा करते हुए इस शान्तिपूर्ण अहिंसक आन्दोलन को निम्नोक्त कार्यक्रमों के माध्यम से संचालित कर रहे हैं-

1. समाज में व्याप्त अनैतिकता, हिंसा, तनाव आदि निमित्तों की खोज कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना।

2. शिक्षण-क्षेत्र में नैतिकता व मूल्यों की प्रतिष्ठा।

3. वर्तमान राजनीति में व्याप्त अनैतिकता के तत्वों को दूर कर मूल्य आधारित अहिंसक राजनीति के लिए धरातल का निर्माण करना।[4]

इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आचार्य तुलसी ने मनुष्य व समाज से सम्बन्धित प्राय: सभी पक्षों को अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत लिया है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जो मनुष्य को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभावित करता हो और आन्दोलन की कार्य-सूची में न हो।

शिक्षण क्षेत्र

अणुव्रत का एक महत्वपूर्ण आयाम था - शिक्षा के क्षेत्र में त्रिकोणात्मक अभियान। विद्यार्थी, अध्यापक और अभिावक - इन तीन वर्गों में अणुव्रतों का काम करने की दृष्टि से यह अभियान चला।

इस कार्यक्षेत्र का मूल बिन्दु है विद्यार्थी। संस्कार-निर्माण की दृष्टि से विद्यार्थी अनुकूल भूमि है। इस भूमि में नैतिकता के बीज बोने के लिए नैतिक शिक्षा का कार्यक्रम तीव्रता पूर्वक चलाया गया। नैतिक पाठशाला का एक नया प्रयोग हुआ, जो दिल्ली राज्य के सैकड़ों स्कूलों में क्रियान्वित हुआ। विद्यार्थी अणुव्रत के तहत आचार्य तुलसी ने विद्यार्थी की सृजनात्मक क्षमताओं का विकास करने तथा उसका उपयोग समाज व राष्ट्र के हित में करने हेतु निम्नोक्त अणुव्रतों का विधान किया-

1. हिंसात्मक गतिविधियों से दूर रहना।

2. अश्लील साहित्य व चलचित्रों से स्वयं को दूर रखना।

3. मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना।

4. परीक्षा में अवैधानिक उपायों का सहारा नहीं लेना।

5. चुनाव में अनैतिक आचरण नहीं करना।

6. दहेज प्रथा में अनास्था रखना और

7. हरे-भरे वृक्षों का संरक्षण और प्रदूषण रोकने में सहायता करना।[5]

राज्यिक व वाणिज्यिक क्षेत्र

शांतिपूर्ण समाज की संरचना की तभी कल्पना की जा सकती है, जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज की संरचना अहिंसक हो। भ्रष्टाचार, अनैतिकता, संरचनात्मक हिंसा का मूल कारण है। भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और भाई-भतीजावाद के दर्शन अधिकांश सरकारी कार्यालयों में सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौतिक बन चुके हैं।

अधिकांश सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों के मध्य अपने कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा भाव, अधिकारों के प्रति अत्यधिक चेष्टा तथा प्राप्त सत्ता का अत्यधिक दुरूपयोग करना इत्यादि भाव बढ़ते जा रहे हैं, इस प्रकार की मनोवृत्ति को लगाम देना युगीन आवश्यकता बन चुकी है। ऐसा परिवर्तन दृढसंकल्प मात्र से सम्भव है, इस हेतु अणुव्रत आन्दोलन निम्नोक्त व्रतों का विधान कर्मचारी व अधिकारी वर्ग के लिए करता है। राज्य कर्मचारियों के लिए-

1. मैं रिश्वत नहीं लूँगा।
2. मैं अपने प्राप्त अधिकारों से किसी के साथ अन्याय नहीं करूँगा।
3. मैं जनता और सरकार केा धोखा नहीं दूँगा।

इसके अतिरिक्त राज्य अधिकारी के लिए-

1. मैं रिश्वत नहीं लूँगा।
2. मैं अपने प्राप्त अधिकारों का अनुचित प्रयोग नहीं करूँगा।
3. मैं अपने कर्त्तव्य-पालन में जान-बूझकर विलम्बर या अन्याय नहीं करूँगा।
4. मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।

महिला जागृति :

पुरूष और महिला दोनों ही समाज और राष्ट्र के दो पहिए हैं। उनमें से एक खराब हो जानेपर समाज और राष्ट्र का विकास असंतुलित रूप से होगा। अत: दोनों पहिए सही ढंग से कार्य करें और समाज और राष्ट्र की मुख्य धारा में बने रहें, इस हेतु अणुव्रत आन्दोलन में महिला अणुव्रत का विधान किया है। पुरूष नारी का शोषण करने, उस पर अत्याचार करने के लिए नारी का ही सहारा लेता है। यह तो मत्स्य न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है। एक नारी दूसरी नारी का शोषण करती है। इसकी परिणति होती है[16] - दहेज हत्या, बाल-विवाह, बालिका वध, गरीब लड़कियों को कुंवारा रह जाना, परस्त्री-गमन, बहुविवाह, वृद्ध विवाह इत्यादि।

इसी प्रकार अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों के चलते पर्दा प्रथा, मृत्यु भोज, मृतक के पीछे रोना, स्त्री अशिक्षा, टोना-टोटका, अन्धविश्वास, भ्रूण हत्या इत्यादि का प्रचलन भारतीय ग्रामीण परिवेश में अत्यधिक है।

कृषक अणुव्रत :

1. मैं अपने आश्रित पशुओं के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करूँगा।
2. मैं जमाखोरी नहीं करूँगा।
3. मैं मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।

श्रमिक अणुव्रत :

1. मैं अपने कार्य में प्रामाणिकता रखूँगा।
2. मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूँगा।
3. मैं मादक एवं नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।
4. मैं जुआ नहीं खेलूँगा।[20]

इन कार्यक्रमों ने समाज के हर पक्ष से सम्बन्धित वर्गों में नैतिकता जागृत कर अहिंसक शान्तिपूर्ण समाज संरचना का मार्ग प्रशस्त किया है।

आन्दोलन को जनक्रान्ति का स्वरूप प्रदान करने हेतु अणुव्रत की आन्दोलनात्मक गतिविधियों को बल प्रदान करने में प्रबल निमित बना है। अणुव्रत, जैन भारती, युवा दृष्टि, विज्ञप्ति आदि पत्रों के अतिरिक्त हिन्दुस्तान, नवभारत टाईम्स, इण्डियन एक्सप्रेस, सकाल (पूना), हिन्दू (मद्रास), विश्वमित्र (कलकत्ता), साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग आदि पत्रों ने भी समय-समय पर अणुव्रत के मूलभूत उद्देश्यों के अनुकूल कार्य किया।

4.13 नया मोड़ कार्यक्रम

सन् 1960 में अणुव्रत अनुशास्ता ने समाज को नया मोड़ नामक कार्यक्रम दिया। समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के उन्मूलन में इस कार्यक्रम का बहुत बड़ा हाथ रहा। पर्दा-प्रथा, मृत्यु भोज, प्रथा रूप से रोना, विधवाओं के काले वस्त्र और उनका तिरस्कार, विवाह आदि प्रसंगों पर होने वाले वृहत् भोज, आडम्बर, दहेज, ठहराव और प्रदर्शन, तपस्या के उपलक्ष्य में होने वाले आडम्बर आदि विषयों पर एक समाज व्यापी अभियान चलाया गया। उसमें कुप्रथाओं से होने वाली तथा धार्मिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया।

सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि समाज में संस्कार-निर्माण कार्यक्रम शुरू किया जाए, ताकि कोई जन-समुदाय सम्बन्धी संस्कारों को सहज रूप से ग्रहण कर सके। इस हेतु संस्कार निर्माण समिति का गठन किया गया है। यह समिति समाज में संस्कार-निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रम को सफलता पूर्ण ढंग से कार्यान्वित कर रही है।

अणुव्रत आन्दोलन विभिन्न साम्प्रदाय में असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने में सफल रहा है। इसको अपनाकर तेरापंथ, जो कि जैन धर्म का एक सम्प्रदाय है, साम्प्रदायिक भावनाओं से मुक्त हुआ है। उसमें अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन आये हैं। उसने परम्पराओं से चिपके रहने का मोह छोड़ा है। स्वयं आचार्य तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन में स्थान अणुव्रत अनुशास्ता के रूप में है न कि तेरापंथ के आचार्य के रूप में।[22] इस प्रकार यह आन्दोलन सम्प्रदाय में असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का विकास करने सामाजिक परिवर्तन का चक्र सिद्ध हुआ है। जहां एक और सभी धर्म और सम्प्रदाय अपनी मान्यताओं, परम्पराओं और विश्वासों से चिपके रहते हैं, वहीं दूसरी और तेरापंथ ने अणुव्रत आन्दोलन को अपनाकर असाम्प्रदायिक और व्यापक दृष्टिकोण का विकास किया है। संकीर्णतावादी विचारधारा बौद्धिक हिंसा का कारक है वहीं दूसरी और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण अहिंसा का कारक है। सामाजिक परिवर्तन अहिंसात्मक दृष्टिकोण अपनाकर ही हो सकता है। अणुव्रत आन्दोलन ने अहिंसक रूप से, अहिसंक कार्यक्रमों के द्वारा समाज के विभिन्न घटकों के बीच समन्वय स्थापित करने व नैतिक स्थापना हेतु सफल प्रया किये है।

4.14 मूल्यांकन

अणुव्रत आन्दोलन जीवन-शुद्धि का आन्दोलन है। यह व्यक्ति सुधार का कार्यक्रम है। यह नैतिक आचार संहिता है, यह नैतिक व्यवस्था का कार्य है। अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति और समाज सुधारक के रूप में कार्य कर रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की इच्छाओं को सीमित या नियमित करना ही है। आन्दोलन ने अहिंसा के प्राण-तत्व हृदय परिवर्तन द्वारा जनता के चारित्रिक उत्थान का कार्य किया है। उसने भ्रष्टाचार, मिलावट, झूठा तोल-माप, दहेज और रिश्वत इत्यादि के विरुद्ध अनेक अभियान चलाये।

अणुव्रत आन्दोलन का प्रवाह आध्यात्मिक है। यह व्यक्ति को परिस्थिति का स्रष्टा मानता है और विजेता भी। व्यक्ति अच्छाई और बुराई का संगम स्थल है। परिस्थितियां उसकी भलाई और बुराई का निमित्त बनती है। अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति के आध्यात्मिक चारित्रिक और नैतिक गति का प्रेरक है। अणुव्रती अहिंसा-निष्ठ होता है। अहिंसा निष्ठ कष्ट सहिष्णु होता है। वह परिस्थिति के सामने झुकता नहीं, बल्कि उनको सहज कर उनका विजेता बनता है। अणुव्रत-आन्दोलन की उपेक्षा है मनुष्य को उसकी शक्ति का भान हो।

अणुव्रत एक मानवीय आचार-संहिता है। कोई भी व्यक्ति जो मानवीय मूल्यों में आस्था रखता है, वह अणुव्रती हो सकता है। वर्तमान युग में कोई भी व्यक्ति अच्छा नागरीक बनना चाहे, वह आगम, गीता और बाइबिल पढ़ या नहीं, अणुव्रत-आचार संहिता केा हृदयंगम करने पर वह अच्छा नागरिक अवश्यमेव बन सकता है।

अणुव्रत व्यक्ति को अणुव्रती बनाते समय मानव-विभेदक तत्वों यथा जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय, वर्ग, भाषा, प्रान्त, राष्ट्र इत्यादि को गौण मानकर व्यक्ति को सदाचार की और प्रवृत्त करता है। इसका मानवता में विश्वास है। यह एक ऐसा धर्म है, जो सब प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानव को मानवता का पाठ पढ़ाता है। अणुव्रत का घोष है कि मनुष्य सबसे पहले मनुष्य बने। अणुव्रत मानव धर्म का घोषणा-पत्र है। अणुव्रत के व्रत जितने छोटे हैं, उनकी क्षमता

उतनी ही व्यापक है और समूची मानव जाति इससे लाभान्वित हो सकती है। मानवता सब धर्मों का सार है। अणुव्रत मानवता की दिशा में उठने वाला एक सशक्त कदम है।

अणुव्रत आन्दोलन मानव-जाति के लिए सुरक्षा कवच है। विश्व भर में व्याप्त अनैतिक शक्तियों से लोहा लेने को समुत्शुक मानव इस कवच से युक्त होकर ही सुरक्षित रह सकता है अन्यथा मानवीय गुणों का लोप करने वाले दुष्चक्र को रोकना सम्भव प्रतीत नहीं होता।

नैतिक मूल्यों के विघटन में समुत्पन्न किसी भयावह परिस्थिति में अणुव्रत ही एकमात्र आलम्बन है, जो मानवता को त्राण दे सकता है, यह जाति, भाषा और वर्ण भेद की सारी संकीर्णताओं से मुक्त रहकर सम्पूर्ण मानव-जाति को क्रान्ति का आह्वान करता है। इस स्थिति में मानव-मात्र का कर्त्तव्य है कि वह अणुव्रत के व्यापक दृष्टिकोण से लाभान्वित हो।

यह आन्दोलन देश में नैतिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा के लिए अपनी सूचीबद्ध प्रक्रिया का प्रयोग करने वाला आन्दोलन है। यह व्यक्ति को ''शुभ'' ''अशुभ'' ''उचित'' ''अनुचित'' ''चाहिए'' और ''है'' में से ''उचित'' ''शुभ'' और ''चाहिए'' को चुनने की बात करता है। इसको अपनाकर व्यक्ति वैचारिक विश्वव्यापकता की और प्रवृत्त हो जाता है। यह आन्दोलन खाओ-पीओ और मौज करो की संस्कृति में संयम और विवेक को आधार स्तम्भ के रूप में स्थापित करता है। यह परदोष दृष्टि से स्वदोश दृष्टि की और व्यक्ति को आकर्षित करता है। यह व्यक्ति को अधिकारों की मांग से कर्त्तव्य-निष्ठा के पथ पर अग्रसर करता है। यह व्यक्ति को नैतिकता का संदेश उसकी परिस्थिति के अनुसार ही देता है।

अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति और समाज के मध्य सापेक्ष संबंध मानकर पूंजीवादी और साम्यवादी दुष्प्रवृत्तियों से बच जाता है तथा इसके साथ ही व्यक्ति व समाज दोनों को विकास का पूर्ण अवसर देता है। व्यक्ति का चहुँमुखी विकास चारित्रिक धरातल पर करके नैतिकता के आधार पर परिवार और समाज सुधार की और प्रवृत्त होता है। यह आन्दोलन शोषण-मुक्त समाज-व्यवस्था के निर्माण की और प्रवृत्त होता है।

यह मानव समाज के लिए संयम और त्याग की संस्कृति को आसान करता है। अणुव्रत आन्दोलन जीवन का संयम दर्शन है। यह जीवन की संयत करने की साधना है। जीवन निर्वाह की दिशा बड़ी हिंसा से अल्प-हिंसा, बहु परिग्रह से अल्प परिग्रह, अति आशक्ति से अल्प आसक्ति की और चलती है, वह संयम प्राप्ति की सुलभता का हेतु है। जवीन प्रक्रिया को सरल बनाये बिना संयम आता नहीं।

नैतिक मूल्यों में संयम का स्थान महत्वपूर्ण है। अणुव्रत आन्दोलन का घोष है - ''संयम खलु जीवनम्''। संयम ही जीवन है। दूसरे के जीवन में बाधा न डालना संयम है। आत्म हत्या और पर-हत्या असंयम है। आज समाज को संयम की आवश्यकता है। असंयम ही हिंसा की जड़ है। संयमहीन संस्कृति भीतर से शून्य और बाहर से आकर्षक होती है। ऐसे संस्कृति और सभ्यता कभी पनप नहीं सकती। यह आन्दोलन व्यक्ति में आत्म-संयम का विकास करके मैत्री, शान्ति, एकता व नैतिक मूल्यों की स्थापना करती है तथा पाशविक वृत्तियों का उपशम करती है। यह भ्रष्टाचार, अनैतिकता और अनाचार को दूर करने वाला दिव्य प्रकाश है।

अणुव्रत आन्दोलन ने राजनीति को मूल्य परक बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने राजनीति में व्याप्त अनैतिकता रूपी कचरे को बाहर निकाल कर वहां पर नैतिकता के बीजों का आरोपण किया है। सुव्यवस्थित राजनीति की स्थापना हेतु उसने उम्मीद्वारों, मतदाताओं, राजनेताओं, चुनाव अधिकारियों इत्यादि के लिए आचार-संहिता का विधान किया है। इनको अपनाकर राजनीति में व्याप्त हिंसा, प्रलोभन, गुण्डागर्दी, दुष्प्रचार, सत्ता के दुरूपयोग इत्यादि से बचा जा सकता है। राजनीति को इसके अपराधिकरण होने के बचाया जा सकता है।

यह आन्दोलन लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था का समर्थक है। लोकतंत्र के अर्थ को यह संशोधित करता है। लिंकन की परिभाषा ''जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन'', अणुव्रत अनुशास्ता के अनुसार लोकतंत्र से आशय है - ''अपना शासन, अपने लिये, अपने द्वारा''। स्वशासन मानने पर व्यक्ति सदैव देशहित के लिए कार्यरत

रहेगा। वह स्व-हित के लिए देश-हित की बलि नहीं देगा। इसी प्रकार यह आन्दोलन सत्ता के विकेन्द्रीकरण का प्रयास करता है। सत्ता का परिग्रह दुष्प्रवृत्तियों, दमन-शोषण, भ्रष्टाचार, अशान्ति, भाई-भतीजावाद और अपराधिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करता है, जबकि सत्ता का अपरिग्रह इन समस्याओं का निराकरण करता है। सत्ता का विकेन्द्रीकरण होने से प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र विकास में भी अपना सहयोग प्रदान करता है।

समाजवादी व्यवस्था होने से व्यक्ति का शोषण नहीं होगा। मानव-विभेदक तत्व प्रभावी नहीं होंगे। मानव धर्म व्यक्ति में मानवीय समानता का दृष्टिकोण उत्पन्न करेगा, जो उसके अहिंसा, शान्ति, सह-अस्तित्व के मार्ग पर अग्रसर होगा।

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अहिंसा व शान्ति स्थापना हेतु आन्दोलन का महत्वपूर्ण योगदान है। अणुव्रत विश्व भारती को संकल्पना का अंकन करते हुए विश्व प्रसिद्ध अहिंसाशास्त्री प्रो. ग्लेन डी. पेज[64] हवाई विश्वविद्यालय, होनोलूलू ने कहा है, ''केलिफोर्निया में अरबों डालर से निर्मित डिजनीलैण्ड में तो मात्र मनोरंजन ही है जबकि यहां हर स्थान पर गुणवत्ता की प्रमुखता है। इसलिए इसका अधिक महत्व है। मेरी राय है कि नाम ''ग्लोबल पीस पैलेस'' रखा जाए।''

समय-समय पर महत्वपूर्ण राष्ट्रीय[65] व अन्तर्राष्ट्रीय[66] व्यक्तियों, यथा राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, आचार्य कृपलानी, गफ्फार खाँ, विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राधाकृष्णन, इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी, पी.वी. नरसिम्हा राव आदि इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय जगत के महत्वपूर्ण व्यक्ति यथा, गुर्नार मिर्डल, जॉन गाल्टूंग, ग्लेन डी. पेज, डॉ. फ्रांसिस बाराहोना, देबाऊ इकेडा, जोसेफ वर्नर रीड आदि का समर्थन सहयोग आन्दोलन को प्राप्त होता रहा है। अतः अणुव्रत आन्दोलन न केवल भात में राष्ट्रीय चरित्र उत्थान व अहिंसक समाज की स्थापना हेतु निरन्तर कार्यरत है अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भी अपनी पहचान व उपयोगिता सिद्ध की है।

vH;kl gsrq iz'u

cgqfodYih; iz'u@,dokD; mÙkj

1. टॉयनबी कौन थे?

   (अ) साहित्यकार (ब) संगीतज्ञ (स) इतिहासकार

2. असहयोग आन्दोलन कब हुआ था?
3. 'क्रिमिनल अमेंडमेंट लॉ' के अन्तर्गत क्या होता था?
4. फरवरी, 1930 में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक कहां हुई थी?
5. सविनय अवज्ञा के सत्याग्रहियों हेतु प्रतिज्ञा-पत्र में कितने बिन्दु थे?

   (अ) 5 (ब) 6 (स) 7

6. भूदान आन्दोलन के कितने उद्देश्य थे?
7. ग्रामदान का अर्थ क्या है?
8. बाबा आम्टे ने कलकत्ता के किस कुष्ठ रोग संस्थान में अध्ययन किया था?
9. भारतीय विधान कब लागू हुआ?

   (अ) 1950 (ब) 1951 (स) 1952

10. नया मोड़ कार्यक्रम कब प्रारम्भ हुआ?

    (अ) 1960 (ब) 1961 (स) 1965

y?kqÙkjkRed i'u

1. असहयोग आन्दोलन पर एक लघु टिप्पणी लिखें।
2. सविनय अवज्ञा के कार्यक्रमों का वर्णन करें।
3. भूदान यज्ञ का दर्शन एवं उद्देश्य लिखें।
4. आनन्दवन पर एक नोट लिखें।
5. अणुव्रत आन्दोलन का ऐतिहासिक परिचय दीजिए।

fuc/kkRed i'u

1. गांधी द्वारा निर्देशित प्रमुख आन्दोलनों का वर्णन करें।
2. भूदान एवं ग्रामदान आन्दोलन की समीक्षा करें।
3. अणुव्रत आन्दोलन पर एक विस्तृत निबंध लिखें।

bdkbZ&5 ik'pkR; 'kfDr vkUnksyu

lajpuk

5-0 ,sfrgkfld ifjp;

5-1 'kkafr vkUnksyu ds dkj.k

5-2 ik;y.M dk 'kkafr vkUnksyu

5-3 ik;y.M 'kkafr vkUnksyu ds eq[; mís';

5-4 bVyh dk 'kkafr vkUnksyu

5-5 bVyh 'kkafr vkUnksyu dh i`"BHkwfe

5-6 'kkafr vkUnksyu dk fodkl

5-7 milagkj

5-8 iXok'k 'kkafr vkUnksyu

5-9 iXok'k vkUnksyu dh vUrjkZ"Vªh; xfrfof/k;k¡

5-10 cl vkUnksyu

5-11 rkRdkyhu lkekftd ifjfLFkfr;k¡

5.0 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी में पाश्चात्य जगत में विभिन्न शिखर पुरुषों तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा सरकारी तंत्र की अनुचित नीतियों या सरकार की सैनिक नीति के विरोध में विभिन्न आन्दोलन हुए। सामान्यतः इन्हीं आन्दोलनों को पाश्चात्य जगत के शांति आन्दोलन की संज्ञा दी जाती है। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध उपरांत जिन कार्यक्रमों में आणिवक युद्ध या आणिवक अस्त्रों का विरोध किया गया हो उन्हें शांति आन्दोलन माना गया। यद्यपि वर्तमान में शांति आन्दोलनों में नये आयाम तथा नई धाराएं जुड गई हैं तथापि इन प्रकार के आन्दोलनों का केन्द्र बिन्दु मुख्यतः युद्ध निषेध तथा आणिवक अस्त्रों का निषेध ही था। वर्तमान में शांति आन्दोलनों के कार्यक्षेत्र में मुख्यतः स्त्री समानता अधिकार, पर्यावरण सरंक्षण आदि भी जुडे हैं। किन्तु शांति आन्दोलनों का प्रमुख उद्देश्य प्रायः अभी भी निम्नतः व्यक्त किया जा सकता है–

1. विश्व में जहाँ भी युद्ध हो रहे हों उन्हें समाप्त किया जाए।
2. विश्व में जहाँ भी युद्ध होने की संभावना हो उसे रोका जाए।
3. यदि कहीं युद्ध संचालित हो रहा हो उसे रोका जाए और शांति स्थापित करने के प्रयास किये जाए।

शांति आन्दोलन के इतिहास में सर्वप्रथम अमेरिका के उत्तर पूर्व में 'Friends of Peace' के नाम से 1815–1816 में शांति आन्दोलन समूह की स्थापना की गई। ये समूह नेपोलियन के युद्ध के विरोध में स्थापित किया गया। इसके 100 वर्ष उपरांत जब प्रथम विश्व युद्ध हुआ तो इसके विरोध में अमेरिका में एक आन्दोलन प्रारंभ हुआ जिसका नाम 'Norman Angteism' था। इस आन्दोलन के समस्त सदस्य प्रायः प्रोटेस्टेंट थे तथा प्रायः अहिंसक साधनों जैसे वार्ता, समझौता, मध्यस्थता आदि में विश्वास करते थे। किन्तु इसके पूर्व भी शांति आन्दोलनों का व्यापक इतिहास हमें मिलता है। जैसे 1821 में The Society De La Moshal Criten इसका मुख्य उद्देश्य समाज के अन्तर्गत शांति स्थापना का रहा, किन्तु इस आन्दोलन की सारी शक्ति घरेलू संघर्ष पर ही व्यय हुई। लेकिन 1840 में तत्कालीन शांति के स्वरूप को प्राप्त करने हेतु भी इन्होंने प्रयास किया। 1900 के आते–आते इन लोगों ने युरोप, आस्ट्रेलिया और जापान आदि देशों में शांति स्थापना हेतु वहाँ की संस्थाओं से सक्रिय सहयोग किया। 1889–1914 तक पुरे युरोप में अस्त्र–शस्त्रों की काफी

होड़ मची थी जिसके परिणामस्वरूप 1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। प्रथम विश्व युद्ध पश्चात् ही शांति की अवधारणा प्रबल होने लगी। किन्तु, शस्त्रों की होड प्रारम्भ होने के साथ–साथ इसको समाप्त करने के लिये भी कई उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं, जैसे 1889 में 'Inter Parliamentry Union' का गठन हुआ तथा इसके सदस्य समय–समय पर शांति स्थापित करने के लिये विचार–विमर्श करते रहे। इस यूनियन का मुख्यालय बर्न, जर्मनी में था। 1914 से पहले जितने भी शांति आन्दोलन हुए उनका मुख्य उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र में युद्ध होने के कारणों का अध्ययन करना तथा उसे रोकना था, जैसे 1816–1851 तक जो शांति आन्दोलन हुए थे वे मुख्यतः ईसाईयत के आधार पर हुए थे।

5.1 शांति आन्दोलन के कारण

18वीं शताब्दी में पश्चिमी जगत में प्रायः समस्त स्थानों पर औद्योगिक क्रांति प्रारंभ हो चुकी थी। राजतंत्र तथा अधिनायक तंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र तथा पूंजीवाद के स्थान पर साम्यवाद के विचार आकार ले रहे थे। उस समय साम्राज्यवाद का प्रचलन भी प्रारंभ हो चुका था, जिसकी निष्पत्ति स्वरूप ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस तथा उच्च राष्ट्रों के कई उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। ये राष्ट्र अपने–अपने साम्राज्य का विस्तार कर उसे अधिक शक्तिशाली राज्यों के रूप में स्थापित कर अपनी–अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। चूंकि उस काल में प्रायः समस्त राष्ट्र अपनी सैन्य शक्ति को अधिक संगठित तथा शक्तिशाली बना रहे थे, इस कारण सामाजिक कल्याण पर तात्कालीन सरकारें कम से कम संसाधनों को नियोजित कर रही थी। अस्त्र–शस्त्रों पर संसाधनों के अधिक नियोजन होने के कारण मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ती में बाधा उत्पन्न हो रही थी जिससे जनता को दिन–प्रतिदिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उस युग में पूंजीवादी समाज के प्रभत्व के कारण औद्योगिकरण उपभोग से ज्यादा उत्पादन की स्थिति का उत्पन्न कर रहा था। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के कारण विभिन्न विचारधारा वाले राष्ट्रों के मध्य संघर्ष उत्पन्न होने लगा तथा शस्त्रीकरण की होड प्रारम्भ हो गई। 19 वी शताब्दी के मध्य में 1850 में भौतिक तथा आर्थिक समृद्धि की दर तेजी से बढ़ रही थी। सभी लोगों के मन में असंतोष की भावना बलवती हो रही थी तथा अशांति की अवस्था प्रायः–प्रायः आ पहुंची थी। प्रतिक्रिया स्वरूप दमनकारी नीतियों को अपनाया जाने लगा। तदनुपरांत इन्ही सब कारणों से सभी जगह शांति स्थापना हेतु 19वीं शताब्दी में शांति आन्दोलन शुरू होने लगे। इस अन्तराल में 'British Herald of Peace' नामक संस्था ने युवाओं को प्रेरित करने के लिये 'Pax de duex mondes' (1844) नामक पत्रिका के माध्यम से शांति स्थापना की आवश्यकता तथा तात्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन हेतु शांति आन्दोलन के विचार को प्रस्तुत किया। ब्रिटिश शांति कार्यकर्त्ताओं ने अन्य देशों में भी शांति आन्दोलन को प्रसारित तथा प्रचारित करने हेतु उल्लेखनीय कार्य किया। स्टीफन रेगवार्ड ने बेल्जियम, फ्रांस तथा युरोप के अन्य देशों में जाकर 'Peace Society' की स्थापना की। इसी काल में लन्दन में 'Peace Congress' नामक संस्था की स्थापना हुई जिसने वैश्विक शांति हेतु कार्यक्रम संयोजित किया।

इसी प्रकार ब्रिटिश और अमेरिकन शांति संगठनों ने ब्राजील और पेरिस में संयुक्त रूप से शांति विचारों को प्रोत्साहित करने हेतु कार्य किया। इस संयुक्त प्रयास में दोनो देशों के संसद सदस्यों, समाजशास्त्रियों, धार्मिक कार्यकताओं तथा अर्थशास्त्रियों ने सहभागिता की जिसके कारण इन विशिष्ट प्रयासों का महत्त्व और भी बढ़ गया, किन्तु 1851–1857 तक ये आन्दोलन तथा इस तरह के प्रयासों में शिथिलता आ गई।

1857 ई. के बाद आन्दोलन दूसरे चरण में प्रवेश करता है। अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति के परिवर्तन के कारण इस शांति आन्दोलन की दिशा भी बदल गई। क्रिमियन युद्ध के कारण इटली और जर्मनी का एकीकरण हो गया तथा अमेरिका के गृहयुद्ध के कारण शांति आन्दोलन कुछ समय के लिये अवरूद्ध हो गया। यहाँ से शांति आन्दोलनों में नवीन परिवर्तनों के साथ–साथ नवीन दिशा भी परिलक्षित होने लगी। अमेरीका में दास प्रथा के उन्मूलन हेतु थोरो ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन संचालित किया। इसी अन्तराल के लगभग पेरिस में कुछ उदारवादी लोगों ने एक संस्था स्थापित की जिसका नाम 'International It Permaneut De La Pax' था। फ्रैडरिक पैसी और अन्य उद्योगपतियों के सहयोग से स्थापित इस संस्था का मुख्य उद्देश्य लक्जमबर्ग के लिये फ्रांस और जर्मनी के बीच के हो रहे युद्ध को रोकना था। 1912 तक यह संस्था निरन्तर शांति स्थापना हेतु कार्यरत रही। 1887 में जेनेवा एक अन्तराष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई जिसका नाम 'League International De la Pax at De la Liberate' था। 1932 तक चले इस आन्दोलन में विश्व प्रसिद्ध विद्वान विक्टर हयुगो, चार्ल्स लेमोनियर, इली, डुकोमन आदि सम्मिलित थे। ये विश्व की पहली संस्था

थी जिसमें शांति स्थापना हेतु पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी सक्रिय भूमिका निभाई। 1868 में मेड़म मेरी की अध्यक्षता में 'Peace-Society' नामक संगठन की स्थापना की। इसका मुख्य आदर्श यह था कि आप अपने भविष्य का निर्धारण स्वयं कर सकते है।

1860 के दशक में एक अन्य विचारधारा First Intenational of the Working Men" संगठन के द्वारा सामने आई। इस विचारधारा को कई विशिष्ट समाजशास्त्री और मजदूर संगठनों के नेतागण सर्मथन दे रहे थे। इन लोगों को मानना था कि जब तक समाज से निजी सम्पति का उन्मूलन नहीं होगा तब तक वर्ग भेद रहने के कारण शांति स्थापना संभव नहीं है। आर्थिक विषमता एवं विभेद संघर्ष और अशांति का कारण होता है इसलिये शांति स्थापना हेतु सम्पति का समान वितरण होना चाहिये। बेल्जियम के समाजवादी नेता पेक ने इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा इस विचारधारा के विकास हेतु अत्यधिक उल्लेखनीय कार्य किये। 1880 के दशक में नारियों के अधिकार हेतु फ्रेडरिक रेजर ने संघर्ष किया तथा एवं चुनाव पद्धतियों में प्रजातंत्र का समन्वय एवं सभी कार्य स्थानों पर संगठनों के निर्माण के साथ–साथ राष्ट्र को अन्य राष्ट्र के प्रति निरपेक्ष होने की आवश्यकता स्वीकार की। अर्थात् राष्ट्र को ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसी राष्ट्र से मित्रता और किसी राष्ट्र से शत्रुता का व्यवहार करे। इसी अन्तराल में 'International Arbitration Peace Association' नामक संस्था की स्थापना की गई तथा इसकी सहायक संस्थाएं बेल्जियम और इटली में भी स्थापित की गई। इसी प्रकार 1888 में विद्यार्थियों द्वारा फ्रांस में 'La Pax War li Dat' नामक संस्था स्थापित की गई। इसके बाद 1890 में एक नवीन 'Peace Society' बनी जिसके सदस्य प्रायः यूरोप के थे। अनगिनत सदस्यों तथा सहायक केन्द्रों के होने के कारण इस संस्था ने शांति स्थापना हेतु उल्लेखनीय कार्य किया। 1889 में 'International Peace Congress' की स्थापना हुई, जिसमें इटालियन नेता ई.टी. मावेटा ने भी भाग लिया तथा कालांतर में एक अलग धार्मिक होमलेण्ड के निर्माण के लिए संघर्ष किया। इसी प्रकार 1894 में फ्रेंच सैनिक गेस्ट्रो मोच ने फ्रांस की शांति आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस अन्तराल में कई समाजशास्त्रियों ने शांति स्थापना सम्बन्धी साहित्य का बहुलता में सृजन किया, जिसमें मुख्यतः रूसी समाजशास्त्री ईबान नोबी तथा ईमाईल का नाम लिया जा सकता है।

निष्कर्षतः ज्ञात होता है कि 19वीं शताब्दी में जो शांति आन्दोलन हुए या जिन्होंने भविष्य के शांति आन्दोलनों हेतु आधार निर्मित किया, वे संगठनात्मक स्तर पर भी सक्रिय थे तथा उनका यह मानना था कि शांति केवल सरकार के द्वारा ही स्थापित की जा सकती, अपितु उसमें जनसमुदाय की भी सहभागिता होनी चाहिए। वास्तव में 19 वीं शताब्दी में विभिन्न संगठनों ने विभिन्न राष्ट्रों में तथा राष्ट्रों के बीच शांति स्थापित करने के लिये एवं सामाजिक कल्याण यथा नारी अधिकार, मानव अधिकार, पर्यावरण संरक्षण आदि के लिये उल्लेखनीय कार्य किया।

5.2 पौलेण्ड का शांति आन्दोलन

पोलेण्ड का शांति आन्दोलन अपने आप में कुछ अनूठापन लिये हुए है। शीत युद्ध के अन्तराल में हुए इस आन्दोलन के समय पौलेण्ड में साम्यवादी सरकार स्थापित थी। प्रायः सभी जगह हिंसा व शोषण का बोलबाला था। अतः वहां की परिस्थिति प्रायः तनावपूर्ण ही थी। साम्यवादी प्रभाव होने के कारण सोवियत संघ तथा इसके सैन्य सहयोगियों ने काफी मात्रा में पौलेण्ड में विभिन्न स्थानों पर आणिवक प्रक्षेपास्त्रों को तैनात किया था। ये सभी नाभिकीय प्रक्षेपास्त्र सुरक्षा के नाम पर भारी मात्रा में तैनात किये गये थे जिसके कारण वहां की आम जनता के मन में भय एवं आतंक व्याप्त था। इस आतंक, भय और हिंसा की बहुलता से वहां की जनता ऊब चुकी थी। ऐसे में वहां दमन और आतंक के खिलाफ अनेक आन्दोलन हुए जिन्हे निर्ममतापूर्वक दबा दिया गया। अन्त में श्रमिक वर्ग से सबंध रखने वाले लेक वालेसाा के नेतृत्व में शांति आन्दोलन प्रारंभ हुआ, जिसमें उन्हें अद्भुत सफलता मिली इसकी मुख्य विशेषता यह रही कि ये शांतिपूर्ण ढंग से संवैधानिक मापदण्डों के अनुरूप चला।

5-3 ikSy.M 'kkfr vkUnksyu ds eq[; mís';

1. पौलेण्ड से अर्न्तमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों एवं विनाशकारी अस्त्र शस्त्रों के जमाव को कम करना।
2. सरकार पर दबाव डालना कि वह अस्त्र–शस्त्रों की होड़ को कम करे।
3. समाज में शांति की स्थापना करना।
4. स्वतंत्रता एवं बहुदलीय शासन प्रणाली की स्थापना करना।

पौलेण्ड में उस समय केवल साम्यवादी दल ही शासन कर रहा था। इसी कारण लोगों की सामान्य इच्छाओं की अभिव्यक्ति पूर्णरूप से न होने के कारण लोगों के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि पक्ष के साथ विपक्ष भी हो तो पौलेण्ड की जनता के लिये अधिक हितकारी होगा। चूंकि पौलेण्ड ने द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लिया था जिससे वहां काफी जन–धन की क्षति हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध उपरान्त विश्व प्रमुखतः दो गुटों में बंट चुका था–साम्यवादी व पूंजीवादी, और पौलेण्ड साम्यवादी प्रभाव में आ गया था। पौलेण्ड का यह शांति आन्दोलन इसी साम्यवादी तानाशाही का परिणाम था।

आन्दोलनकारियों का मानना था कि अस्त्र–शस्त्र के निर्माण और भण्डारण से सुरक्षा नहीं बढ़ती, अपितु इससे अशांति व असुरक्षा बढ़ती है। अस्त्र–शस्त्र किसी को सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते। हिंसा से हिंसा ही बढ़ती हैं। अतः हिंसा, आतंक और भय को दूर करने के लिये शांति स्थापना की ओर अग्रसर होना होगा। इस आन्दोलन का नाम मजदूर आन्दोलन था तथा यह मुख्य रूप से साम्यवादी सरकार को हटाने के लिये किया गया था ताकि साम्यवादी प्रभाव में होने के कारण पौलेण्ड को आणिवक भय से मुक्ति दिलाई जा सके। ये आन्दोलन अस्त्र–शस्त्र के संग्रह को कम करने के लिए, राजनीतिक स्वतंत्रता बढ़ाने के लिये तथा एक दूसरे से भ्रातृत्व व मित्रता बढ़ाने हेतु एवं शांति स्थापित करने के लिए था।

1983 में लेक वालेसा को अपेक्षाकृत हिंसक विरोध के उपरांत भी आधारभूत मानवीय मूल्यों के लिये संघर्ष करने हेतु शांति का नोबल पुरस्कार दिया गया। चूंकि वालेसाा का संघर्ष उनके अपने देश में श्रमिकों की आर्थिक समस्याओं के बजाए स्वतंत्रता पर केन्द्रित था, इसलिये उनके व्यक्तिगत त्याग व सर्मपण ने उन्हे विश्व के आकर्षण का केन्द्र बना दिया था। उन्हे अपने देश की जनता के अतिरक्ति वैश्विक स्तर पर भी समर्थन प्राप्त हुआ। इस सम्मान को देखते हुए नोबल समिति का मन्तव्य था कि पौलेण्ड में श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा का मुद्दा उनके स्वयं के देश के घरेलू मामलो में अधिक महत्त्व का था तथा इस पर पौलेण्ड की सुरक्षा के संदर्भ में वालेसा का काम काफी उल्लेखनीय है। इस आन्दोलन मे संगठन बनाने की स्वतंत्रता तथा सार्वभौमिक मानव अधिकार को मान्यता देने हेतु ऐतिहासिक अभियान चलाया गया था, जोकि बहुत ही महत्वपूर्ण था। साथ ही साथ इस आन्दोलन में संघर्ष तथा समितियों को शांतिपूर्ण वार्ताओं के द्वारा दूर करने के प्रयास को मान्यता दी गयी ताकि एक दूसरे की सम्प्रभुता को परस्पर सम्मान दिया जा सके। लेक वालेसा ने इस बिन्दु पर विशेष बल दिया कि संघर्ष का स्वरूप अहिंसक होना चाहिये। उन्होंने कहा ''हम हिंसा का आसानी से विरोध कर सकते हैं यदि हम स्वयं इसका सहारा न ले। यही सभी विशेषताएं हमारे आन्दोलन को वैश्विक सन्दर्भ प्रदान करती है।'' नोबल पुरस्कार समिति के अनुसार नागरिक एवं मानव अधिकार केवल पौलण्ड के श्रमिकों के लिये ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के लिये लोगों के आदर्श है। विश्व के अनेक भागों में लोग इस संभावना के प्रयास में हैं। जिसमें दो मूल्य समाहित किये थे वे हैं – शांति व न्याय। नोबल समिति के अनुसार इन्होंने शस्त्र रहित रहकर इन आदर्शों की मशाल प्रज्जवलित की है। उन्होंने शब्दों, भावनाओं, विचारों की स्वतंत्रता एवं मानव अधिकार जैसे साधनों का प्रयोग किया। वालेसाा ने श्रमिकों के आन्दोलन हेतु एक पत्रिका प्रकाशित की तथा इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रमिकों के अधिकारों का एक चार्टर प्रकाशित किया जिसके प्रावधान निम्न हैं–

1. हड़ताल को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो।
2. आठ घंटों का कार्य दिवस निश्चित किया जाए।
3. मजदूरी की उच्च दरें लागू की जाए।
4. सुधरी हुई कार्य दशाएं स्थापित की जाए।

वालेसा ने अर्न्तनिर्भरता की अवधारणाा को अपने आन्दोलन का प्रमुख निर्देशक सूत्र बनाया, जिसके अनुसार मजदूर व व्यापारी दोनों परस्पर निर्भर हैं। स्वार्थ और टकराव दोनों ही पक्षों के लिये हानिकारक होगा। मजदूरों को हड़ताल करने व संगठन बनाने का अधिकार तो वे इसलिये देना चाहते थे ताकि उनकी संभावित शोषण से रक्षा हो सके। साथ ही साथ व्यापरियों के लिये उनका संदेश था कि वे भी मजदूरों के सहयोग के बिना आगे नहीं बढ सकते, अतः दोनों ही पक्षों को शांतिपूर्ण वार्ताओं का तरीका अपनाना चाहिये। वालेसा ने समस्त आन्दोलन का नेतृत्व गोपनीय रूप से किया था। पौलेण्ड में धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था का स्तर गिरने लगा था तथा नागरिकों को अभाव का सामना करना पड रहा था। ऐसे काल में उद्योगों को आधुनिक करने के प्रयास किये गये तथा उच्च लाभदरों पर अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार

संतुलन को अपने पक्ष में करने हेतु पौलेण्ड में वस्तुओं का निर्यात करना शुरू किया गया जिसमें मुख्यतः मांस उत्पादन शामिल था। परिणामतः देश में खाद्य सामग्री की कमी हो गई। जुलाई, 1980 में सरकार ने मांस की कीमत को दुगुना कर दिया परिणामतः आन्दोलन और तेज हो गया, और वालेसा स्पष्ट रूप से इस आन्दोलन के नेता हो गये। लेकिन उनका सदैव अहिंसक सिद्धान्तों पर विश्वास था। उन्होने कहा कि ''हमारा दृढ विश्वास है कि हमारे आन्दोलन करने का कारण न्यायोचित है साथ ही हमे अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु शांतिपूर्ण रास्ता अपनाना चाहिये। हमारा सिद्धान्त अर्न्तनिर्भरता का है, जिसका उद्देश्य न तो बलपूर्वक शांति की प्राप्ति है और न ही स्थापित संवैधानिक व्यवस्था के विपरीत व्यवहार है।''

लेक वालेसा के इस अहिंसक आन्दोलन से सोवियत संघ भी सतर्क हो गया था, क्योकि इस आन्दोलन ने सरकार को यह दिखा दिया था कि अव्यवस्था को जन्म दिये बिना ही वे सत्ता को किसी भी सीमा तक चुनौती दे सकते हैं, साथ ही अब साम्यवादी पार्टी का श्रमिकों का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा भी खोखला साबित हो चुका था। वालेसा के इस अभियान के दमन हेतु सोवियत यूनियन ने पौलेण्ड की सरकार को मोहरा बनाया। पौलेण्ड की सरकार ने मार्शल लॉ लागू कर दिया और वालेसा को 11 महीने का कारावास दिया। 1981 में पौलण्ड की सरकार ने पोप जॉन पॉल II को आमंत्रित किया। अपनी यात्रा के अन्तराल में पोप उस समय के प्रधानमंत्री तथा वालेसाा दोनों से मिले। पोप ने राष्ट्रीय पुर्नगठन व उत्तरदायित्वपूर्ण संवाद की आवश्यकता पर बल दिया। साथ ही उन्होंने यह कहा कि श्रमिकों को केवल पौलेण्ड में ही नहीं, अपितु प्रत्येक स्थान पर यह अधिकार प्राप्त होने चाहिये, क्योंकि वह उत्पादन का निर्जीव यंत्र नही है, अपितु एक सजीव कार्यकर्ता है जो कि पूंजी की तुलना में अधिक सम्मानीय है। इस प्रकार वालेसा जो एक बढई के पुत्र थे तथा जहाज पर आम विधुतकर्मी की भांति कार्य करते थे, स्वतंत्रता एवं मानवता का ऐसा झण्डा ऊंचा किया कि इसे सम्पूर्ण विश्व देख सकता था और भविष्य के लिये प्रेरणा स्रोत के रूप में कार्य कर सकता था।

5.4 इटली का शांति आन्दोलन

इटली शांति आन्दोलन का उद्भव 1979 में हुआ। जब नाटो समूह ने युरोपियन देश में क्रूज प्रक्षेपास्त्रों को स्थापित करने का निर्णय किया। इटली में सिसली के तट पर कोमिसो नगर में इन प्रक्षेपास्त्रों की स्थापना का कारण नाटो सदस्य देशों पर आक्रमण होने की स्थिति में सुरक्षा तथा साम्यवादी शक्तियों के सैन्य संगठन वारसा के सदस्य देशों पर संभावित आक्रमण की सुविधा बनाना था। इस घटना (प्रक्षेपास्त्र की तैनाती के निर्णय) ने इटली के लोगों को सजग किया कि उनका देश भी आणिवक युद्ध का क्षेत्र बन गया है। इन प्रक्षेपास्त्रों की तैनाती ने विश्व इतिहास में शांति स्थापना के अतिवादी विकल्प को स्वीकार किया। ज्ञातव्य है कि विश्व शांति स्थापना हेतु प्रमुखतः निम्न दो साधनों को स्वीकार किया गया हैं –

1. विश्व शांति के लिये सैन्य बल प्रयोग की राजनीति को अपनाना तथा इसका सम्पूर्ण दायित्व सेना को सौंपा जाना।
2. आणिवक युग में सुरक्षा के उपायों को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्पन्न कलह एवं विवादों में शक्ति के प्रयोग के त्याग द्वारा प्राप्त करना।

उपर्युक्त में से दूसरे साधन की अभिव्यक्ति अंटलाटिक चार्टर में तथा इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में भी हुई। इटली में भी इसी मार्ग का अनुसरण करते हुए शांति आन्दोलन की विचारधारा का उदय होता है। इस मार्ग के चयन का आधार स्वयं इटली की जनता का निशस्त्रीकरण का पक्षपाती होना है जिसके पीछे इटली की शांतिप्रिय ऐतिहासिकता का भी योगदान है, जो निम्न मुख्य बिन्दुओं में व्यक्त हैं–

(i) इटली में प्रायः सैन्य शक्ति की परम्परा नहीं रही है। अतः सैन्यवाद की जड़े इटली में कभी नहीं जमी।

(ii) रोमन कैथोलिक इसाई धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थान एवं परम्परा के कारण इटली के निवासियों का स्वभाव विश्वव्यापी रहा है।

(iii) इटली के श्रमिकों की अन्तराष्ट्रीय आन्दोलन में आस्था रही है जिससे उनकी वैश्विक समझ विकसित होने में सहायता मिली।

शांतिप्रिय प्रयासों के लिये उक्त कारणों ने उर्वरता प्रदान की जिसकी निष्पत्ति स्वरूप ऐसे मानस में शांति आन्दोलन का आरंभ सहजता से हो सका। इसके अतिरिक्त 1949 में सोवियत संघ के अणुबम के विस्फोट ने भी इटली की मानसिकता को परिवर्तित करने में सहयोग दिया। इटली की समाजवाद सरकार के ध्यान में आया कि आण्विक सैन्य शक्ति के सन्तुलन के लिये 'नाटो' की सैन्य शक्ति का सर्मथन किया जाये। यहाँ तक कि 1970 में इटली की साम्यवादी पार्टी ने भी इटली के समाजवाद की रक्षा हेतु नाटो की सैन्य शक्ति को अपनी सुरक्षा के कवच में स्वीकार किया। इन नव–निर्मित परिस्थितियों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ कि इटली दो ध्रुवीय सैन्य शक्तियों की गतिविधियों का केन्द्र बनने जा रहा है। इससे भी इटली में शांति आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन मिला।

5-5 bVyh 'kkfr vkUnkyu dh i"BHkwfe

80 के दशक में हुए शांति आन्दोलन के विकास के सही स्वरूप को तब तक नहीं जाना जा सकता जब तक कि उन सांस्कृतिक कारणों की चर्चा न की जाए जिनका उदय 60 के दशक से ही हो रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध पश्चात इटली के बुद्धिजीवी वर्ग का चिन्तन प्रायः निम्नलिखित दिशा में विकसित हो रहा था।

1. कैथोलिक
2. धर्म निरपेक्षता
3. मार्क्सवाद

dFkkfyd धर्म गुरू पोप का मत था कि आणिवक युग में शक्ति का प्रयोग विवेक के विरूद्ध है। इसी दिशा में फ्लोरंस के मेयर ला पियरे ने भी प्रयास किये कि विभिन्न संस्कृतियों का मिलन होना चाहिये जिससे सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाए जाने में सहयोग मिल सके। उनका मत था कि वर्तमान में संसार संहार के कगार पर खड़ा है जिसे युद्धों की विभिषिकाओं से बचाना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि हजारों–हजारों वर्षों तक शांति बनी रहे। अतः सैन्यवाद की राजनीति का त्याग करना होगा और शांति के मार्ग को अपनाना होगा।

/ke fujis{k बुद्धिजीवियों पर आइन्सटीन तथा रसल के युद्ध विरोधी विचारों का प्रभाव था। 1952 में अल्डो केपटिनी ने जर्मन दार्शनिक कांट तथा गाँधी के विचारों के प्रभाव के फलस्वरूप 'Center of Religious Orientation' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था के माध्यम से सामयिक शांति विषयक गोष्ठियाँ एवं वार्ताएं आयोजित होने से समाज का प्रबुद्ध वर्ग इससे जुड़ता रहा, तथा समाजवाद की स्थापना हेतु अहिंसात्मक साधनों के उपयोग के प्रति निष्ठा बढ़ती रही। इसमें संस्था द्वारा आयोजित वृहद शांति यात्राओं ने भी सृजनात्मक वातावरण के निर्माण में उद्दीपक का काम किया।

bVfy;u lkE;oknh ikVhZ के संस्थापक पालमीरो तोगलित्ती ने समय के प्रवाह को देखते हुए साम्यवादी पार्टी के कार्यक्रमों में परिवर्तन कर अतिवादिता के लक्षणों का परिष्कार कर शांतिपूर्ण वातावरण बनाने में सहयोग प्रदान किया। उनके अनुसार आणिवक स्थिति के कारण राजनीतिक, सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत चेतना में आमूल–चूल परिवर्तन अपेक्षित है। सैन्यवाद की भर्त्सना तथा अणुबम की भयावहता को स्पष्ट करने हेतु साम्यवादी दल के नेताओं ने 'एक पक्षीय निरअस्त्रीकरण संघ' की स्थापना की। इनका मत था कि विश्व के सामने सर्वसहांरक शक्तियाँ विद्यमान हैं। अतः इन पर विजय पाने के लिये प्रकृति के महत्त्व को स्वीकार करना होगा। इस प्रकार के विचारों के वातावरण में इटली में शांति आन्दोलन के विकास की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

5-6 'kkfr vkUnkyu dk fodkl

इटली में शांति आन्दोलन के विकास में कई कारणभूत तत्वों का आधार रहा है जिनको सुविधा की दृष्टि से निम्नतः व्यक्त किया जा सकता है–

1. आणिवक शक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा, भय, अविश्वास आदि ने सशस्त्र टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी जिसकी भयावहता की संभावनाओं को देखते हुए इटलीवासी क्षोभ तथा निराशा के वातावरण में जी रहे थे। इस क्षोभ एवं निराशा की स्थिति का परिवर्तन उन्होंने शांतिपूर्ण मार्ग से ही संभव पाया।

2. 1970 में औद्योगिकरण के पक्षपाती तथा विरोधी शक्तियों के कारण इटली में आर्थिक व सामाजिक तनाव होने से गृहयुद्ध की स्थिति बन गई थी तथा राष्ट्र में हिंसा एवं उग्रवाद पनप गया था। इस स्थिति के विरोध में शांति की संस्कृति को समृद्ध किये जाने के आह्वान ने भी शांति आन्दोलन के विकास को गति प्रदान की।

3. 1976 के उपरान्त राज्य द्वारा कई सुधारात्मक नीतियों का निर्धारण किया गया तथा लोकतंत्र को अधिक व्यापक एवं परिष्कृत करना, नारी स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकारों को व्यापक बनाना एवं सुनिश्चित करना, जेल सुधार कार्यक्रम तथा शिक्षा में सुधार आदि के कारण भी इटली में आन्दोलन को उर्वर वातावरण प्राप्त हुआ।

4. 70 के दशक में इटली में नव तृतीय विश्व प्रवृति के उदय के साथ थोडे से अत्यधिक धनी लोगों के बीच निम्न मध्यम वर्ग का उदय हुआ जिनकी अवस्था प्रायः वैसी ही थी जैसी विकासशील देशों में आम जनता की होती थी। इटली में विशाल औद्योगिकरण के कारण पर्यावरणीय ह्रास आदि से संबंधित दुरूह स्थितियां उत्पन्न होने से मनुष्य और प्रकृति के मध्य शांतिपूर्ण समन्वय की आवश्यकता के स्पष्टतः उजागर होने से शांति आन्दोलन के प्रयासों को बल मिला।

5. नव तृतीय विश्व प्रवृत्ति के उदय के कारण विकासशील देशों के प्रति सद्भावना उत्पन्न होने से उनके प्रति उदार चिन्तन हुआ। ऐसा प्रत्यक्षतः अनुभव किया जाने लगा कि विकासशील देशों की अपनी सभ्यता एवं संस्कृति है जिन्हे आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से उन्नत करना अपेक्षित है। इन विकासशील देशों की जनता एवं नीतिया अपेक्षाकृत अहिंसक है तथा उनकी जीवन शैली प्रकृति के अनुकूल है इसके विपरीत इटली शस्त्र उत्पादन एवं अन्य संबंधित गतिविधियों का केन्द्र बन गया। इन कारणों से भी विकासशील देशों के प्रति सौहार्दपूर्ण वातावरण बनने में सहयोग मिला। फलतः ऐसे वातावरण में शांति आन्दोलन की शक्तियों का उदय अवश्यंभावी था।

उपर्युक्त वर्णित कारणों से शांति आन्दोलन का विकास हुआ एवं उसे गति मिली जिसकी निष्पति इटली में क्रुज प्रक्षेपास्त्रों के तैनाती के समय विरोधस्वरूप विशाल प्रर्दशन एवं शांति यात्रा उनके आदि आयोजित में हुई। किन्तु तत्कालीन इटली की सरकार ने इस विरोध पर ध्यान दिये बगैर कोमिसो नगर में प्रक्षेपास्त्र तैनात कर दिये। इन प्रक्षेपास्त्रों की तैनाती से लगा कि शांति आन्दोलन का स्वतः ही अन्त हो गया है, परन्तु वास्तव में इटली में शांति आन्दोलन की मृत्यु नही हुई थी। जब–जब भी सैन्य संगठनों या नीतियों की स्थापना का प्रश्न उठा तो इटलीवासियों ने उसका विरोध किया। शांति आन्दोलन को स्थानीय स्तरों पर, स्थानीय परिषद से, स्थानीय राजनीतिक दल, गांवों, स्कूलों आदि से नैतिक समर्थन प्राप्त होता रहा।

5-7 mi lgkj

इटली के शांति आन्दोलन का कोई सार्वभौमिक तत्व नहीं है। यह विभिन्न लोगों की विचारधाराओं व संस्थाओं का मिला–जुला आन्दोलन रहा है तथा निरन्तर विभिन्न उतार–चढावों से उन्मुख रहा है। कुछ विशिष्ट प्रश्नों पर इन विभिन्नताओं के उपरान्त भी एकता दृष्टिगोचर होती है यथा–वन्य जीव व अन्य का आखेट बन्द हो, पर्यावरण की रक्षा हो, सभी समस्याओं का समाधान नैतिक स्तर पर किया जाए, स्वार्थी एवं संकीर्ण राजनीतिज्ञों के प्रति विरोधी भाव आदि। मूल्याँकन की दृष्टि से इटली के शांति आन्दोलनों की गतिविधियों को निम्नतः जाना जा सकता है।

1. आन्दोलन ने अनिवार्य सैनिक सेवा की बाध्यता का विरोध किया। परिणाम स्वरूप 1986 में 2.50 लाख योग्य आवेदकों में से केवल 36000 लोगों ने सैन्य सेवा के लिये आवेदन किया, शेष अन्य प्रकार की सेवाओं में जाने के उत्सुक थे। ये लोगों की बदली हुई मानसिकता का परिचायक माना जा सकता है। यहाँ तक कि वेनेटो जैसे अनुदारवादी क्षेत्र के निवासियों ने भी वैज्ञानिक आयुधों, शस्त्र आदि के उत्पादन एवं शोध आदि को प्रतिबंधित किये जाने की मांग की।

2. महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा, शस्त्रों की होड़, विध्वंसात्मक अस्त्रों–शस्त्रों के अनुसंधान एवं उत्पादन के विरूद्ध शांति आन्दोलन ने एक पक्षीय निरस्त्रीकरण के विचार को प्रस्तुत कर प्रचार किया। इस

तरह के प्रयासों के कारण ही तात्कालिक सोवियत रूस ने कई बार अनुशस्त्र परिक्षण पर एक पक्षीय प्रतिबंध लगाया।

3. शांति आन्दोलन ने अमरीका तथा सैन्य संगठन की गतिविधियों एवं आकांक्षाओं का सर्वथा विरोध कर किसी प्रकार का अतिवादी कदम उठाने के लिये नैतिक बाधा उत्पन्न की।
4. शांति आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं ने आणिवक युद्ध के भंयकर पक्षों को उजागर कर विश्व में इस प्रकृति वाले युद्धों के विरोध में सार्वभौम वातावरण तैयार किया। शांति आन्दोलन के सर्मथकों का तर्क था कि लोकतंत्र और अणुबम की नीतियों में पारस्परिक विरोध है, अतः आणिवक शक्ति का त्याग होना चाहिए।
5. इटली को प्रक्षेपास्त्रों का क्षेत्र न बनाया जाये, इस हेतु वहां की जनता ने प्रयास किया एंव आंशिक सफलता भी प्राप्त की। इटली के संविधान की धारा का कथन है कि इटली युद्ध का त्याग करता है तथा दूसरे देशों की स्वतंत्रता हडपने के लिये युद्ध का सहारा नहीं लेगा। संविधान की इस भावना के आधार पर आन्दोलन के समर्थक युद्ध को अवैध मानते हैं और संविधान की रक्षा करने के लिये तत्पर हैं।
6. शांति आन्दोलन के सर्मथकों का मुख्य प्रयास यह था कि इटली को महाशक्तियों के संघर्ष का शिकार न बनाया जाए। इस प्रयास में सफलता प्राप्त कर इटली का शांति आन्दोलन पाश्चात्य शांति आन्दोलन में विशिष्ट स्थान रखता है।

उपर्युक्त विषयों पर एकता होते हुए भी इटली के शांति आन्दोलन की कोई सार्वभौम विचारधारा नहीं है। साधन एवं उद्देश्यों के संबंध में प्रायः विभिन्न गुटों में मतभेद उभरते रहे, जिससे आन्दोलन को समय–समय पर आघात भी लगा। फिर भी समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सामंजस्यपूर्ण परिस्थिति के निर्माण में आन्दोलन सतत प्रयत्नशील रहा तथा 1984 में फ्लोरेंस में आयोजित महासभा का इसमें विशेष योगदान रहा जिसमें सिद्धान्तों एवं आचार संहिताओं के निमार्ण का प्रयास किया गया। फलस्वरूप शांति आन्दोलन निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसारित रहा।

5.8 पग्वाश शांति आन्दोलन

शांति आन्दोलन का उद्देश्य व स्वरूप वैज्ञानिकों को उनके सामाजिक एवं नैतिक कर्तव्यों का भान कराना था ताकि विज्ञान और तकनीकी के दुष्प्रयोगों के दुष्परिणामों से विश्व को बचाया जा सके एवं आधुनिक विज्ञान को मनुष्य जाति के कल्याण हेतु सृजनात्मक दिशा प्रदान की जा सके। 1957 को नोवास्कोटिया प्रांत के पग्वाश गांव में आयोजित हुई प्रथम गोष्ठी के कारण इस आन्दोलन को 'पग्वाश आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है। मुख्यतः वैज्ञानिकों द्वारा सम्पादित इस आन्दोलन का औपचारिक नाम 'The Pugwash Confrence on Science and World Affairs' है। इस मंच के माध्यम से अणुशस्त्र मुक्त विश्व व्यवस्था की संकल्पना को मूर्त रूप देने का सफल प्रयास किया गया है अतः इसे वैज्ञानिकों का शांति आन्दोलन भी माना जाता है।

यद्यपि पग्वाश आन्दोलन मुख्यतः वैज्ञानिकों द्वारा संचालित हुआ था तथापि इस हेतु प्रेरित करने एवं इसे सक्रिय कराने में विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक बर्टेंड रसल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1955 में वैश्विक शांति और सुरक्षा संदिग्ध हो चुकी थी। रासायनिक अस्त्र–शस्त्रों का अविष्कार तथा अमेरिका व रूस द्वारा हाइड्रोजन बम आदि के निर्माण से महाशक्तियों में संहारक अस्त्रों के उत्पादन व संग्रह हेतु होड मची थी। महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा, अविश्वास, भय तथा एक दूसरे के विरूद्ध आक्रामक प्रचार ने शीत युद्ध को तृतीय विश्व युद्ध में परिवर्तित करने की स्थिति निर्मित कर दी की थी तथा ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानव जाति का महाविनाश सन्निकट है।

इतिहास साक्षी है कि समाज, राष्ट्र तथा सभ्यता की चेतना समान नहीं रहती। विकृतियों के उन्नमूलन हेतु मानव जाति ने सदा ही प्रकाश स्तंभों की भांति दिशा निर्देशन दिया है। उपर्युक्त भयावह वैश्विक परिस्थितियों में रसल और आइंसटीन द्वारा निर्मित विश्व शांति हेतु एक घोषणा पत्र सामने आया। रसल ने यह विचार प्रस्तुत किया कि वैज्ञानिकों को विज्ञान के दुष्परिणामें के प्रति जागरूक रहते हुए विज्ञान को मानव कल्याण हेतु विशुद्ध सृजनात्मक रूप देना चाहिये। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन को प्रेषित अपने विचारों के साथ रसल ने अणुमुक्त विश्व निर्माण हेतु वैज्ञानिकों के एक सम्मेलन के आयोजन के आशय पर सुझाव चाहे, जिसकी सम्मति आईन्सटीन ने देकर सम्मेलन का घोषणापत्र तैयार करने को कहा। ज्ञातव्य है कि रसल द्वारा शांति आन्दोलन सम्मेलन हेतु तैयार किये गये

घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करना आईन्सटीन के जीवन का अन्तिम कृत्य था। अन्य 6 राष्ट्रों के 9 वैज्ञानिकों के हस्ताक्षरयुक्त यह घोषणा पत्र लन्दन में जुलाई, 1955 को जारी किया गया। इसमें जहाँ एक ओर विशिष्ट रूप से वैज्ञानिकों से यह आह्वान किया गया था कि विश्व शांति के सम्मुख उत्पन्न हुए खतरे को समाप्त करने का प्रयास किये जाए, वहीं दूसरी ओर विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों से भी आह्वान किया गया था कि मानव जाति संक्रमण काल से निकलकर दूसरे काल में पहुंची है, अतः अपने मतभेदों एवं समस्याओं का हल शांतिपूर्ण साधनों से खोजने का प्रयास करे क्योंकि यदि अणुयुद्ध की स्थिति आई तो वास्तविक विजेता कोई नहीं रह पायेगा। इस घोषणा पत्र में आम नागरिको से भी मार्मिक अपील की गई ''हम इस अवसर पर किसी राष्ट्र, प्रांत या जाति के सदस्य के रूप में आपसे संबोधित नहीं हैं, अपितु हम उस मानव जाति के सदस्य के रूप में आपके सम्मुख हैं जिसके अस्तित्व पर वर्तमान विश्व व्यवस्था ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। हम किसी एक या दूसरे गुट से अपील न करते हुए समस्त ध्रुवों को यह कहते हैं कि सब संकट में हैं और यदि यह संकट समझ में आता है तो यह आशा बलवती हो जाती है कि इस संकट से उभरने के लिये सभी समूहिक योगदान देंगे।'' वैज्ञानिक समुदाय द्वारा अनुशंसित घोषणा–पत्र को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। लगभग दो वर्ष पश्चात कनाड़ा के उद्योगपति साइरस ईटन ने अपने जन्म स्थान पग्वाश में एक सम्मेलन आयोजित करने हेतु आर्थिक सहायता प्रस्तावित की। पग्वाश में आयोजित प्रथम सम्मलेन संख्या की दृष्टि से अत्यन्त ही छोटा रहा जिसमें दस देशों के 22 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ऐसा प्रथम अवसर पर ही हुआ था जब दोनों महाशक्तियों के प्रतिनिधियों ने एक मंच पर मतभेदों के उपरांत भी समान लक्ष्य हेतु सवांद किया। इस संवाद की सफलता से उत्साहित होकर भविष्य में भी इस तरह के सम्मलेन आयोजित करने पर आम सहमति बनी तथा इस उद्देश्य की पूर्ती हेतु एक संयोजकीय समिति का भी गठन किया गया। इस समिति की 1957 में लन्दन में पग्वाश आन्दोलन की प्रकृति, स्वरूप, उद्देश्य निर्धारण हेतु गोष्ठी आयोजित की गई। अमेरीका व ब्रिटेन के अधिसंख्य वैज्ञानिकों ने भविष्य के सम्मलनों का निम्न प्रतिरूप प्रस्तुत किया–

1. विशिष्ट रूप से सरकारों की नीति निर्धारण पर प्रकाश डालने वाली विभिन्न राजनीतिक समस्याओं पर चर्चा करना।
2. वैज्ञानिक उन्नति के सामाजिक प्रभाव का अध्ययन करना एवं स्वयं वैज्ञानिकों के चिन्तन का परिशोधन करना।

कुछ वैज्ञानिकों ने विश्व की आमजन सामान्य की समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जाने हेतु गोष्ठी आयोजित करने पर बल दिया। दो दिन के गहन विचार मंथन पश्चात समिति ने निष्कर्ष निकाला कि उपर्युक्त प्रथम बिन्दु को प्राथमिकता के आधार पर अपने कार्यक्रमों में समाविष्ट किया जाना चाहिये तथा इस हेतु लघु सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाए। वैज्ञानिक समुदाय अपने विचार निभर्यता से प्रकट कर सके तथा उनके विचारो को मीडिया द्वारा विकृत रूप से प्रकाशित न किया जाए, इस हेतु समाचार प्रतिनिधियों को इस सम्मेलन में प्रवेश के निषेध पर भी सहमति हुई। वृहत जन समाज में आयोजित सम्मेलनों में सृजनात्मक, मौलिक एवं मार्मिक चिन्तन नहीं आ पाता, क्योकि मनुष्यों के समूह के सम्मुख वक्ता उर्वर विचारों की अपेक्षा भाषण देने की ओर अधिक प्रवृत होता है तथा रचनात्मक निष्पत्ति नहीं हो पाती। अतः लघु सम्मेलनों को आयोजित किये जाने पर निर्णय लिया गया तथा समय–समय पर इनमें प्रस्तुत विचारों का सार जनता को सूचना हेतु प्रकाशित किये जाने का निर्णय लिया गया। केवल लघु सम्मेलनों के आयोजन करने का अर्थ यह नहीं कि वृहद गोष्ठियों का कोई योगदान नहीं होता। विचारों को व्यापकता से फैलाने हेतु जन समूह का अपना योगदान होता है और इस तरह के समूह सरकार पर उपयुक्त कदम उठाने हेतु दबाव भी डाल सकते हैं। अतः पग्वाश आन्दोलन में लघु एवं वृहद दोनों प्रकार के सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का आयोजन किया गया। शांति आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विश्व भर के प्रतिभाशाली एवं प्रभावशाली वैज्ञानिकों एवं व्यक्तियों को मंच पर लाकर आण्विक शस्त्रों एवं युद्ध के भय तथा खतरे को कम करना रहा। इस प्रकार वे अपने–अपने देश में नीति निर्धारण के समय पग्वाश विचारों से प्रभावित होने के कारण शांति निर्माण की दिशा में सहायक तत्व की भूमिका निभाते थे। कालान्तर में पग्वाश आन्दोलन के कार्यक्रमों की गति में तीव्रता आई, किन्तु मुख्य रूप से ये निम्नलिखित सिद्धान्तों पर ही आधारित रहा –

1. पग्वाश एक वृहद जन समूह का आंदोलन था जिसका कोई औपचारिक संविधान, सदस्यता आदि संबध ी कोई कठोर प्रक्रिया नहीं थी।

2. पग्वाश कार्यक्रम में सहभागी वैज्ञानिक किसी देश के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, अपितु व्यक्तिगत स्तर पर भाग लेते थे।
3. सहभागियों के रूप में मुख्यतः वैज्ञानिक सम्मिलित होते थे, किन्तु अन्य क्षेत्रों के विद्वत–जन, दार्शनिक आदि भी इसमें भाग लेते थे।
4. वैज्ञानिक समुदाय विभिन्न विचारधाराओं, भौगोलिक स्थितियों एवं धार्मिक परम्पराओं के होते थे।
5. किसी एक पक्ष या दूसरे पक्ष के प्रचार की अपेक्षा इनमें समस्त विचार–विमर्श वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होते थे।
6. प्रायः समस्त क्रियाकलाप पग्वाश द्वारा ही संचालित होते थे। इनमें किसी अन्य संस्था का सहयोग या सहभागिता नहीं होती थी।

5-9 iXok'k vkUnkyu dh vUrjk"Vªh; xfrfof/k;k

सत्ताईस सदस्यों की गठित समिति पग्वाश के अन्तराष्ट्रीय कार्यक्रम आदि आयोजित करती थी तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम का दायित्व 36 राष्ट्र समूह पर था जो अन्तर्राष्ट्रीय समिति के सहयोग से अपने कार्य सम्पादित करती थी। यह समूह सम्मेलनों, कार्यशालाओं, गोष्ठियों आदि का समायोजन एवं इसकी वित्तीय व्यवस्था का दायित्व वहन करता था तथा अन्य राष्ट्रों से आये सहभागी वैज्ञानिकों के यात्रा व्यय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समिति के लन्दन स्थित केन्द्रीय कार्यालय हेतु वित्तीय सहयोग प्रदान करता था। पग्वाश की मुख्य गतिविधि के रूप में विभिन्न राष्ट्रों में वार्षिक सम्मेलन का आयोजन होता था। 1985 तक ऐसे 35 सम्मेलन आयोजित किये गये थे। सहभागी प्रतिनिधियों की गुणात्मक एवं मात्रात्मक वृद्धि इस आन्दोलन की विशेषता रही जो कि कालान्तर में बढ़कर 120 वैज्ञानिकों की हो गई। वार्षिक सम्मेलन के आयोजन के अतिरिक्त कांफ्रेंस एवं कार्यशालाएं आदि का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता रहा है। इनमें विशिष्ट विषयों पर गहनता से विचार विर्मश, पत्रवाचन आदि भी संपादित होते रहे हैं। अब तक विशेष रूप से 10 कार्यशालाएं रासायनिक शस्त्रों तथा रासायनिक युद्धों पर तथा 12 कार्यशालाएं अणुशस्त्रों एवं अणुशक्तियों पर आयोजित की गई हैं। पग्वाश अपने कार्यक्रमों में प्रस्तुत पत्रों, विचारों, निर्णयों तथा भविष्य की योजनाओं आदि को निरन्तर प्रकाशित कर अपने कार्यक्रमों हेतु विश्व भर से नैतिक व बौद्धिक सर्मथन प्राप्त करता रहा है।

यद्यपि पग्वाश की कार्यसूची तथा कार्यक्रम अत्यन्त व्यापक प्रकृति के थे, तथापि यह आन्दोलन मुख्यतः अणुयुद्ध के भय का निराकरण, शस्त्र–नियन्त्रण तथा क्रमशः पूर्ण निशस्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अपने कार्यक्रमों को प्राथमिकता प्रदान करता है। सहभागिता की निष्पक्षता तथा अनौपचारिक वार्ता के कारण कई संवेदनशील विषयों के सन्दर्भ में विभिन्न विचारधारओं वाले राष्ट्रों में भी आम सहमति बनने के वातावरण ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय शांति संधियों को जन्म दिया–जैसे सी.टी.बी.टी., एन.पी.टी., साल्ट, बी.डब्ल्यू.सी. आदि। यद्यपि अणुशस्त्रों की होड को समाप्त करने में पग्वाश आन्दोलन के मात्रात्मक योगदान को मूल्याँकन की दृष्टि से बहुत सन्तोषप्रद नहीं माना जा सकता, तथापि यह एक सार्वजनिक तथ्य है कि पग्वाश आन्दोलन ने शीतयुद्ध में कमी लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आणिवक निशस्त्रीकरण हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में भी सहायता प्रदान की। इसने विशिष्ट रूप से उस काल में पूर्व और पश्चिम के मध्य वार्ता हेतु सेतु की भूमिका निभाई जिस काल में विचारधाराओं के भेद तथा राजनीतिक संकट के कारण संवाद पूर्णतः समाप्त हो चुका था। पग्वाश ने सामाजिक समस्या तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति वैज्ञानिक समुदाय में बोध जागृत कराने हेतु उद्धीपन का कार्य किया।

पग्वाश कोई औपचारिक सता केन्द्र नहीं है। इसे गैर सरकारी संस्था के रूप में अनेक अवसरों पर राष्ट्रसंघ तथा अन्य अभिक्रमों द्वारा आयोजित सम्मेलनों में अपने विचार प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया। अनेक पग्वाश सहभागियों का इन अभिक्रियाओं की नीतियों के निर्धारण पर प्रभाव पड़ा है यथा 'गाईडलाइन फोर इंटरनेशनल साइंटिफिक कोलोबोरेशन फॉर डेवलेपमेन्ट' तथा 'कोड ऑफ कनडक्ट ऑन द ट्रांसफर ऑफ टेक्नौलोजी' आदि। पग्वाश ने कई अन्य संस्थाओं की स्थापना हेतु भी योगदान दिया है जो पूर्णरूपेण शांति स्थापना, निशस्त्रीकरण आदि पर शोध कार्य करते हैं–जैसे सिपरी आदि।

इस संस्थान का पग्वाश द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक सम्पादन करना भी पग्वाश की सफलता का एक उदाहरण हैं। इसने वैज्ञानिक समुदाय को मानव जीवन की जटिल समस्याओं पर अध्ययन तथा विचार विर्मश करने हेतु विश्वभर में वैज्ञानिक समुदाय को एक मंच प्रदान किया। इसके द्वारा निशस्त्रीकरण हेतु किये गये सफल प्रयासों के लिये वैज्ञानिक समुदाय को आदर सम्मान भी प्राप्त हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने हेतु पग्वाश शब्द प्रतीक के रूप में स्वीकार हुआ है। पग्वाश सम्मेलन की सफलता वैज्ञानिकों के इस सामुहिक प्रयास की देन है, जो विभिन्न राजनीतिक व अन्य विचारधाओं के प्रति निष्पक्ष रहे तथा वैश्विक समझ एवं सहयोग को विकसित करने के लिये समर्पित थे। उच्चस्तरीय विवादों के प्रति संकुचित एवं स्वार्थी दृष्टिकोण की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से समस्याओं के मूल तक जाना तथा उनका समाधान पाना अधिक सहज व प्रभावशाली रहा। अपनी स्थापनाकाल के प्रारम्भिक दिनों में पग्वाश ही एक ऐसा मंच था जहाँ दोनों महाशक्तियों के प्रभावशाली वैज्ञानिक संवादों का आदान–प्रदान करते थे। यद्यपि कालान्तर में इस प्रवृति की कई संस्थाए वैश्विक स्तर पर उभर कर आई, तथापि राजनीतिक प्रभावों के कारण ये इस क्षेत्र में विशिष्ट सहयोग प्रदान करने में प्राय असफल ही रही– जैसे वियतनाम युद्ध (1972) एवं तात्कालीन सोवियत रूस द्वारा अफगानिस्तान में सैन्य सघंर्ष के समय दोनों गुटों में प्रायः संवाद को ही स्थगित किया गया। ऐसे संकटकाल में भी पग्वाश ने अपने स्तर पर संवाद जारी रखने में सफलता प्राप्त की। संभावित नाभिकीय युद्ध न होना भी पग्वाश के वैज्ञानिक स्तर पर किये गये प्रयासों का ही परिणाम है। यह भी पग्वाश का ही परिणाम है कि विश्व शक्तियां इस बात की गंभीरता समझ गई कि अणुयुद्ध होने से कोई भी विजेता नहीं बन पाएगा अतः निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास करना ही श्रेयस्कर है।

5.10 बस आन्दोलन

डॉ. मार्टिन लूथर किंग (जू) जिन्हें अमेरिका का गाँधी भी कहा जाता है, उन्होंने साठ के दशक में अमेरिका में व्याप्त रंग–भेद नीति का अहिंसक विरोध कर गाँधी की मृत्यु पश्चात अहिंसा को प्रतिष्ठित किया। अमेरिका के दार्शनिक हेनरी डी. थोरो, रूसी विचारक लियो टॉलस्टॉय तथा विशेषतः महात्मा गाँधी के सविनय अवज्ञा के चिन्तन एवं कार्यक्रम से प्रभावित डॉ. मार्टिन लूथर किंग ने अमेरिका के अल्बामा राज्य में स्थित मोंटेगोमरी नगर में रंगभेद को मिटाने हेतु गाँधी विचार पर आधारित अहिंसक सविनय अवज्ञा आन्दोलन की सहायता से नीग्रो समाज को भेदपूर्ण स्थितियों से मुक्त करवाकर गरिमामय स्थिति में पहुंचाया।

5-11 rRdkyhu lkekftd ifjLFkfr;k

अमरीकी समाज का तात्कालीन परिदृश्य शोषण एवं रंगभेद पर आधारित क्रियाकलापों का था। विशेषतः मोन्टोगोमरी नगर के नीग्रो जाति और श्वेत जाति के बीच कई क्षेत्रों में शरीर के रंग के आधार पर भेदभाव किया जाता था। नीग्रो लोगों को गोरे हमेशा हीन मानते थे तथा अपनी इस भावना का प्रदर्शन भी किया करते थे। गोरे और नीग्रो ये दोनों समुदाय मनुष्य समाज के विभाजित अंग बने हुए थे। रंग के आधार पर भेदभाव स्कूलो में भी चलता था, जबकि अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1954 में स्कूलों में भेदभाव मिटाने का निर्णय हो चुका था। मोन्टेगारी के गोरों ने जानबूझकर उस निर्णय को अमान्य कर दिया था। एक श्वेत और एक नीग्रो एक साथ टैक्सी में यात्रा नहीं कर सकते थे। वहां ऐसा कानून था कि श्वेत ड्राईवर केवल श्वेत यात्रियों को ही अपनी टैक्सी में ले जा सकता था। नीग्रो लोगों की अलग व्यवस्था थी। नीग्रो ओर श्वेत मजदूर–मालिक की हैसियत से आपस में मिलते थे और बसों में दो अलग–अलग निश्चित सिरों पर बैठकर यात्रा करते थे। इन दोनों समुदायों को अलग करने वाली एक निश्चित लक्ष्मण रेखा हमेशा रहती थी। काले और गोरे एक ही दुकान से सामान भी खरीदते थे, लेकिन नीग्रो को मजबूर होकर तब तक प्रतिक्षा करनी पड़ती थी, जब तक कि सभी श्वेत ग्राहक सामान लेकर चले नहीं जाते। नीग्रों को शायद ही कभी आदरपूर्ण संबोधन मिलता था। शहर के अनेक हिस्सों में काले गोरे लोगों की बस्तियां आपस में जुड़ी हुई थी और कहीं–कहीं तो वे आपस में ही काफी घुली मिली भी थी। परन्तु दोनों ही समाज अपने पड़ोसियों की तरफ पीठ फेर लेते थे तथा सामाजिक और सांस्कृतिक आचार व्यवहार के लिये वे अपने ही रंग वाले समुदाय के साथ मिलते थे।

विभिन्न तबको एवं प्रकारों के संगठनों में भेदभाव देखने को मिलता था। शहर में ऐसा कोई भी संगठन नहीं था जिसके सदस्य काले व गोरे दोनों थे। डॉक्टरों, वकीलों एवं अध्यापकों के संगठनों में भी ये रंगभेद का व्यवहार व्याप्त

था। अगर राष्ट्रीय पैमाने के ऐसे संगठनों में कही दोनों रंग के सदस्य मिल भी जाते तो भी उनका आपसी संबंध अच्छा नहीं होता था। चर्च में भी नीग्रो एवं गोरे पादरियों में आपसी सहयोग का अभाव था। अल्बामा राज्य के कानून और प्रशासन के द्वारा ऐसी व्यवस्थाएं की गई थी, जिससे बहुसंख्यक नीग्रो बहुत सारे राजनीतिक अधिकारों से वंचित रह जाते थे। वोट देने का अधिकार बहुत कम नीग्रो लोगों को प्राप्त था। 1940 तक नीग्रो मतदाताओं की संख्या पूरे अल्बामा राज्य में 2000 से अधिक नहीं थी। उसके बाद कुछ तरक्की हुई और 1958 तक नीग्रो मतदाताओं की संख्या पचास हजार तक पहुंची। किन्तु यह संख्या कुल वयस्क नीग्रों जनसंख्या का 10 प्रतिशत भी नहीं थी। उसका कुछ कारण तो यह था कि स्वयं नीग्रो मतदाता को मतदान करने में दिलचस्पी कम थी और उनके चारो ओर जो बंधन थे उनको तोडने का प्रयत्न इन लोगों की तरफ से भी बहुत कम हुआ। परन्तु उसका सबसे बड़ा कारण वे कठिन बेडियां थी जिनका निर्माण वहां के गोरे प्रशासन ने किया था।

मोन्टेगोमरी की बसों में लम्बे काल से शांति संदिग्ध अवस्था में थी। बसों में नीग्रो को प्रतिदिन अप्रतिष्ठा पूर्ण रंगभेद की याद दिलाई जाती थी। गोरे अफसरों में से यद्यपि कुछ तो मृदु व्यवहार वाले थे, फिर भी अधिकांश बहुत ही अशिष्ट एवं असभ्यतापूर्ण व्यवहार करते थे। इन ड्राइवरों के मुंह से नीग्रो यात्रियों के लिये 'निगरस', 'काले जानवर', 'काले बन्दर' जैसे अभद्र शब्दों को सुनना कोई असाधारण बात नहीं थी। रोज ही नीग्रो यात्रियों को बस का किराया देने के लिये अगले दरवाजे से चढना पड़ता था और किराया देने के बाद वे अन्दर से ही पीछे की सीटों पर नहीं जा सकते थे, बल्कि बस से नीचे उतरकर पिछले दरवाजे से चढ़ने के लिये उन्हें मजबूर किया जाता था। कई बार तो ऐसा भी होता था कि नीग्रो यात्री से किराया प्राप्त करके बस आगे चल पड़ती थी और उस नीग्रो यात्री को इतना समय भी नहीं मिल पाता कि अगले दरवाजे से उतरने के बाद वह पिछले दरवाजे से बस में प्रवेश कर सके। इससे भी निर्दयी व्यवहार तो वह था जब नीग्रो यात्रियों को बस में पड़ी खाली सीटों के बावजूद खडे रहने के लिये विवश किया जाता था। उन सीटों पर लिखा रहता था कि 'केवल गोरे यात्रियों के लिये', भले ही गोरे यात्री बस मे न हो, दस व्यक्तियों के बैठने की अगली चार सीटो पर नीग्रो को बैठने की मनाही होती थी। अगर गोरे यात्री अगली आरक्षित सीटों पर भरे हुए हो और कुछ दूसरे यात्री बस में चढ़ जाए तो बिना आरक्षित सीट पर बैठे हुए नीग्रो यात्रियों से कहा जाता था कि वे स्वंय खडे हो जाए और इन गोरे यात्रियों को बैठने दे। यदि नीग्रो यात्री सीट खाली करने से इनकार कर देते तो कैद कर लिये जाते थे। इसलिये प्रायः नीग्रो यात्री बिना विरोध के खडे हो जाते थे।

जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि अमेरिकी समाज का तात्कालीन परिदृश्य शोषण एवं रंगभेद की नीति पर आधारित क्रियाकलापों का था। इसी प्रकार के परिदृश्य में डा. किंग ने मोन्टेगोरी में ऐवेन्यू बेपटिस्ट डेक्सटर चर्च के पादरी के रूप में कार्यभार संभाला। पादरी के रूप में कार्यभार संभालने के उपरांत उन्हें कई सामाजिक एवं राजनीतिक कार्य करने थे तथा रंगभेद समाप्त करना था और यहीं से उनका रंगभेद के विरूद्ध अहिंसक प्रतिकार प्रारंभ हुआ। किंग के विचारों में गोरे तथा नीग्रों के जीवन स्तर में अत्यधिक विषमता भी रंगभेद का कारण थी। तथा इस कारण से मोन्टेगोमरी का नीग्रो समाज पिछड़ा हुआ था। उद्योगों की कमी के कारण गरीब नीग्रो घरेलु नौकरियों की तरफ आकर्षित हुए थे। महिलाएं और 48 प्रतिशत नीग्रो पुरुष घरेलु कामकाज में नौकरी करते थे। शहर के सभी गोरे परिवारों के घरों में आधुनिक शौचालय थे जबकि 31 प्रतिशत नीग्रो परिवारों को ऐसी सुविधा थी। नीग्रो का अपनी आजीविका के लिये गोरे लोगो पर निर्भर रहना भी उन्हें किसी भी आन्दोलन को करने में बाधक स्वरूप था। इससे उन्हें नौकरी से निकाले जाने का खतरा था। नीग्रो समुदाय के पिछड़ेपन तथा आन्दोलन में भाग नहीं लेने का कारण उसकी अशिक्षा भी थी। अशिक्षित नीग्रो समुदाय में फैली उदासीनता, आलस्य और शिथिलता उनके दुर्भाग्य का मजबूत कारण बना हुआ था। जहाँ थोडे से नीग्रो रंगभेद के खिलाफ आवाज उठाने के लिये हमेशा तत्पर रहते थे, वहीं बहुजन समाज इस अन्याय को आंखे बंद करके चुपचाप बर्दाश्त कर लेता था। उन्होंने रंगभेद को न केवल एक परम्परा के रूप में स्वीकारा, बल्कि उनके साथ होने वाले अपमान को भी बिना विरोध किये ही मान्य कर लिया। उसी चर्च के पूर्व पादरी मि. जोन्स एक दिन एक बस पर चढ़े तथा गोरे लोगों के लिये आरक्षित सीट पर बैठ गये। चालक ने उन्हें पीछे जाने को कहा, परन्तु उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। तब चालक ने उन्हें बस से उतर जाने का आदेश दिया तो जोन ने उसे नकार दिया। अन्त में जब बस चालक ने उनसे लिया हुआ किराया लौटाया तब वे बस से उतरे। परन्तु उतरने से पहले बस में बैठे अनेक नीग्रो से उन्होने पूछा कि उनमे से कितने व्यक्ति बस चालक के इस व्यवहार के प्रति अपना प्रर्दशन जताने के लिए बस से उतरने को तैयार हैं? किन्तु बस में बैठे किसी भी नीग्रो ने उनकी बात का जवाब नहीं दिया। यह घटना अमेरिका में हुए विश्व प्रसिद्ध बस आन्दोलन की पूर्वपीठीका थी।

इसी अन्तराल में रंगभेद की एक घटना और घटी, हाई स्कूल में पढने वाली एक किशोरी केल्विन को बस से उतार दिया गया और गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इस घटना ने नीग्रो समुदाय को आन्दोलित कर दिया तथा उनमें ऐसी भेदभाव पूर्ण बसों का सर्वथा बहिष्कार करने की इच्छा जाग उठी। नीग्रो लोगों की समीति बनाई गई तथा उसे यह दायित्व सौंपा कि बस संचालकों व कानून से बस नियमों का खुलासा करने वाला वक्तव्य प्रकाशित कराया जाए। साथ ही बस चालकों द्वारा नम्र एवं सद्भावपूर्ण व्यवहार हो, ऐसी मांग की जाए। इस समिति का सदस्य मार्टिन लूथर किंग को बनाया गया। समिति के सदस्यों से बातचीत कर उन्हें इसका आश्वासन दिया गया तथा केल्विन को भी छोडने का आश्वासन दिया गया किन्तु उसे दण्डित कर दिया गया। इस घटना ने लम्बे अन्तराल से नीग्रो समुदाय में प्रज्जवलित अग्नि को और भी भडका दिया। यह घटना 1955 में घटित हुई। 1 दिसम्बर 1955 का दिन रंगभेद के विरूद्ध आन्दोलन को छेडने के लिए निर्णायक दिन साबित हुआ। आन्दोलन की शुरूआत में जो भी थोडा बहुत विलम्ब एवं बाधाएं थी, उसे श्रीमती रोजा की गिरफ्तारी ने दूर कर आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। श्रीमति रोजा दिनभर के नियमित कार्य के बाद वापस लौट रही थी। वह बस में गोरे यात्रियों के लिये रखी गई आगे की सीटों को छोडकर पीछे की सीट पर बैठी थी। बस के थोडी दूर जाने के उपरान्त उसे तथा तीन अन्य नीग्रो को गोरे यात्रियों के लिये सीट छोडने का आदेश मिला। रोजा ने सीट छोडने से इनकार कर दिया। परिणामस्वरूप वह गिरफ्तार कर ली गई। कुछ ही देर बाद रोजा की गिरफ्तारी की घटना पूरे नीग्रो समुदाय में फैल गई। इस घटना से दुखी होकर राजनीतिक महिला समाज ने बस बहिष्कार का विचार प्रकट किया। डॉ. किंग, समाज सेवी निक्सन तथा युवा पादरी अबेरनाथी ने विचार– विमर्श के उपरान्त अगले दिन बस बहिष्कार के संबंध में नीग्रो समुदाय के लोगों की एक सभा चर्च में आयोजित की, जो पूर्णतः सफल रही। इस सभा में कई व्यवहारिक प्रश्न उठाये गये, जैसे कितने दिनों तक बहिष्कार आन्दोलन चलेगा? बहिष्कार के दिनों में घरों से कार्यालय आदि का सफर कैसे किया जाएगा? आदि। इन सब सवालों के हल के लिये एक आम सभा बुलाने का निश्चय किया गया। बैठक में निम्न निर्णय लिये गये –

1. 5 दिसम्बर, सोमवार को शहर, स्कूल या अन्य किसी स्थान पर जाने के लिये बस उपयोग में न ली जाए।
2. सोमवार को यदि कही जाना आवश्यक हो तो पैदल या अन्य साधनों से जाया जाए।
3. आगे के निर्देशों को जानने के लिए बैपटिस्ट चर्च में होने वाली आम सभा में सम्मिलित होइए।

नीग्रो लोगों के द्वारा संचालित की जाने वाली टैक्सी कंपनियों ने 5 दिसम्बर को बस जितना किराया लेकर ही अपनी सेवाएं दी जिससे बस बहिष्कार पूरी तरह सफल हुआ। इससे डॉ. किंग को आन्दोलन को आगे बढ़ाने का और भी विश्वास मिला। 5 दिसम्बर के बस बहिष्कार की सफलता से आन्दोलन के सभी नेता बहुत प्रसन्न थे। इस प्रसन्नता के साथ यह प्रश्न भी उत्पन्न हो रहा था कि आगे की कार्ययोजना किस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिये? इस हेतु एक नवीन संचालन समिति गठित की गई, जिसके अध्यक्ष मार्टिन लूथर किंग बने। आन्दोलन को प्रभावी बनाने के लिये अन्य समितियों का भी गठन किया गया। विभिन्न समितियों के मेल से बने संगठन का नाम 'मोंटेगोमरी विकास समिति' रखा गया। अब तक श्रीमति रोजा को छोड दिया गया था। एक आम सभा में नीग्रो समुदाय द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं–

1. बस चालकों द्वारा भद्र व्यवहार किये जाने की गारंटी दी जाए।
2. बस में यात्रा करने वालों के लिये बैठने का प्रबंध ऐसा हो कि जो पहले आए पहले बैठे।
3. नीग्रो बस चालकों की नियुक्ति उन मार्गों पर खासतौर से की जाए जहाँ नीग्रो यात्री ज्यादा होते हो।

8 दिसम्बर 1955 को मोंटेगोमरी विकास संघ की ओर से एक समझौता वार्ता समिति गठित की गई जिसका प्रवक्ता डॉ. किंग को बनाया गया। इस समझौता समिति की ओर से उपर्युक्त प्रस्तावित बिन्दुओं को वार्ता का मुख्य आध ाार बनाया गया, किन्तु ये वार्ता बिना किसी समझौते के समाप्त हो गई। आन्दोलन समाप्ति हेतु पुनः दो बार वार्ता हुई और असफल रही। सरकार को आन्दोलन के दमन का कोई बहाना नहीं मिल सका था। अतः दमन हेतु नये–नये उपाय किये जा रहे थे। इन उपायो में से एक यह था कि निजी टैक्सी ड्राइवर ट्रेफिक के सभी नियमों का पालन करते हैं या नहीं, इस बहाने दमनकारी नीतियाँ अपनाई जाने लगी। अन्ततः इस आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने के कारण

डॉ. किंग को गिरफ्तार कर लिया गया। उस पर 500 डालर जुर्माना या 386 दिन के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। किन्तु उनके जुर्माने की रकम जमा करने हेतु उनके कई मित्र एकत्र हो गये। मार्टिन लूथर किंग ने अपनी पुस्तक 'स्ट्राइड टुवार्डस फ्रीडम' में लिखा है कि ''साधारण तौर पर सजा प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति न्यायालय में उदास चेहरा लेकर निकलता है, किन्तु मेरे चेहरे पर मुस्कान बिछी हुई थी। मैं जानता था कि मैं एक घोषित अपराधी हूँ, परन्तु मुझे अपने अपराध पर गर्व था। मैने अपने लोगों के साथ मिलकर प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान को प्राप्त करने के लिये संघर्ष किया, यही मेरा अपराध है। अपने लोगों के लिये जीवन के अनिवार्य अधिकारों की मांग करने के लिये मैं उद्धृत हुआ। स्वतंत्रता और परतंत्रता के साथ मरने और जीने का अधिकार अनिवार्य रूप से और समान रूप से सभी को प्राप्त होना चाहिए। मैं अपने लोगो का यह समझाना चाहता था कि न्याय के साथ सहयोग करना जिस तरह हमारा नैतिक कर्तव्य है, उसी तरह अन्याय के साथ असहयोग करना भी हमारा नैतिक कर्तव्य है और यही मेरा सबसे बड़ा अपराध था।

डॉ. किंग की गिरफ्तारी और सजा से आन्दोलन की समाप्ति होने की बजाय उसे और अधिक गति तथा प्रचार मिला। साथ ही नीग्रो समुदाय में और अधिक एकता पैदा हुई। डॉ. किंग द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा के नागरिक आन्दोलन ने पूरी नीग्रो जाति को जगा दिया था। अन्ततः 13 नवम्बर 1956 के दिन रंगभेद के विरूद्ध अश्वेत लोगों के पक्ष में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का समाचार मोंटेगोमरी पहुंचा। यह समाचार उसी समय पहुंचा जब मोंटेगोमरी के न्यायालय में बस बहिष्कार से सम्बन्धित मुकदमे की सुनवाई हो रही थी। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद आन्दोलन के संबंध में विचार विमर्श करने के लिए 14 नवम्बर को नीग्रो अधिकारों की आम सभा आयोजित की गई। उनमें लोगों को इस सन्दर्भ में जागृत किया जाने लगा कि आन्दोलन काल में प्रत्येक तरीका अहिंसक हो। लोगों को समझाया गया कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के कारण बसों में चलने वाले रंगभेद को समाप्त करने की जो सफलता हमे प्राप्त हुई है, उसे हम गोरे जाति पर अपनी जीत का प्रतीक न समझे, अपितु उसे न्याय व जनतंत्र की विजय माने। जब हम बसों में चढने जाए तब अनावश्यक ही अपने अधिकारों की ढींग न हांके। हम केवल वहीं बैठे जहाँ सीट खाली पड़ी हो। मुख्य रूप से जो निणर्य सर्वसम्मति से स्वीकारे गये वे निम्न हैं –

1. सभी गोरे नागरिक बसों में किये जाने वाले रंग समन्वय के विरोधी नहीं है इसलिये उन सहृदय यात्रियों के सदभाव को स्वीकार करे।
2. पूरी बस में किसी भी खाली सीट पर कोई भी व्यक्ति जाकर बैठ सकता है।
3. जब आप बस में चढ़े तब ईश्वर से प्रार्थना करे कि वह आपको संयम से रहने की शक्ति दे और अपने मन में यह प्रतिज्ञा करे कि शब्दों या कार्यों में पूरी तरह से अहिंसक बने रहेंगे।
4. अपने क्रिया कलापों में अपनी शांति और भद्रता का परिचय दे।
5. प्रत्येक अवसर पर नम्रता और सद्व्यवहार के साधारण नियमों का पालन करे।
6. याद रखे कि ये केवल नीग्रो समुदाय की विजय नहीं है इसलिये घमण्ड न करें और ढींग न हाके।
7. चुप रहें और वह भी मित्रतापूर्ण हो। गर्वोन्त रहे, पर वह गर्व उदण्डतापूर्वक न हो। प्रसन्न रहे, पर उस प्रसन्नता में दूसरों का मजाक मत उडाईये।
8. इतने प्रेमिल बनिये कि अन्याय स्वयं शरमा जाए और इतने समझदार बनिये कि शत्रु भी मित्र बन जाए।

इसी के साथ कुछ दूसरे विशिष्ट सुझाव भी दिये गये जो निम्न हैं –

1. बस ड्राइवर बस का एक प्रमुख व्यक्ति है तथा उसे कानून पालन करने की आज्ञा दी गई है, इसलिये उनके साथ सहायता करे तथा प्रत्युत्तर में वह आपकी सहायता करे।
2. जानबूझकर किसी गोरे नागरिक की बगल में बैठने की कोशिश न करे।
3. किसी के बगल में बैठते हुए चाहे वह गोरा हो या नीग्रो हो, नम्रतापूर्ण शब्दों में बैठने की अनुमति ले। यही साधारण शिष्टाचार है।
4. यदि आपके प्रति कोई हिंसक या प्रतिकूल व्यवहार का प्रदर्शन करता है तो हर अवसर पर प्रेम और सद्भावना का परिचय दे।

5. यदि कोई विशेष घटना घटे तो धीरे–धीरे और कम से कम बोलिये।
6. प्रारम्भ में किसी ऐसे मित्र के साथ यात्रा कीजिये जिसके सहृदय व अहिंसक होने पर आपको विश्वास हो।
7. यदि कोई नीग्रो यात्री विवाद में उलझा है तो आप उस विवाद में पडकर उसे और मत उलझाइये, बल्कि उस समय भी प्रार्थना करते हुए अपनी नैतिक और अध्यात्मिक शक्ति द्वारा न्याय प्राप्त करने का संघर्ष जारी रखे।
8. अपनी योग्यता अथवा व्यक्तित्व के अनुसार ऐसे नये व सक्रिय तरीकों का प्रयोग करने में हिचकिचाए नहीं जिनसे मेल मिलाप और सामाजिक परिवर्तन संभव होता है।
9. अगर आप यह महसूस करते हो कि किसी उत्तेजित परिस्थिति में शांत रह पाना आपके लिये कठिन है तो एक या दो सप्ताह तक बस में चढ़ने की कोशिश न करे।

सर्वोच्च न्यायालय का रंगभेद के फैसले के विरूद्ध बहुत से गोरे नागरिकों ने प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा हिंसक विरोध भी किया। नीग्रो समाज में फूट डालने के विभिन्न तरीके अपनाए जाने लगे तथा डॉ. किंग की आलोचना की जाने लगी। इन घटनाओं में कई नीग्रो घायल भी हुए फिर भी वे अहिंसक बने रहे। किन्तु धीरे–धीरे वातावरण शांत होने लगा। नीग्रो समुदाय के व्यवहार और प्रतिक्रिया ने गोरे नागरिकों हेतु हृदयपरिवर्तन का आधार प्रस्तुत किया। बसों में रंग समन्वय की स्थिति अच्छी तरह चलने लगी। कुछ ही सप्ताह में यातायात की भेदभावपूर्ण व्यवस्था समाप्त हो गई और गोरे तथा नीग्रो समुदाय के लोग प्रेमपूर्वक बसों में यात्रा करने लगे। डॉ. किंग का यह बस आन्दोलन पश्चिमी समाज में अहिंसा के प्रयोग की एक अनुपम कृति है, किन्तु दुर्भाग्यवश डॉ. किंग का अन्त भी गाँधी की तरह हुआ और उनकी हत्या कर दी गई।

vH;kl gsrq iz'u

cgqfodYih iz'u@,dokD; mÙkj

1. 'Friends of Peace' की स्थापना कब की गई थी?

(अ) 1815–16 (ब) 1816–17 (स) 1817–18

2. 'Inter Parliamentry Union' की स्थापना कब हुई थी?

(अ) 1889 (ब) 1890 (स) 1891

3. 'First International of the Working Men' संगठन कब अस्तित्व में आया?

(अ) 1860 (ब) 1862 (स) 1865

4. पौलेण्ड शांति आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य कितने थे?

(अ) 4 (ब) 5 (स) 7

5. इटली शांति आन्दोलन का उद्‌भव कब हुआ?

(अ) 1979 (ब) 1980 (स) 1984

6. पग्वाश शांति आन्दोलन का घोषणा-पत्र कब लागू हुआ था?

(अ) 1955 (ब) 1960 (स) 1965

7. अल्बामा प्रान्त में 1970 तक नीग्रो मतदाताओं की संख्या क्या थी?

(अ) 2000 (ब) 3000 (स) 5000

8. रंगभेद आन्दोलन का सूत्रपात किस दिन हुआ?

y?kqÙkjkRed i'u

1. पाश्चात्य शांति आन्दोलन के कारणों का वर्णन करें।
2. पोलैण्ड शांति आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य क्या थे?
3. इटली शांति आन्दोलन के स्वरूप का वर्णन करें।
4. पग्वाश आन्दोलन की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियां क्या थीं?
5. बस आन्दोलन पर एक लघु टिप्पणी लिखें।

fuca/kkRed i'u

1. पाश्चात्य शांति आन्दोलनों का परिचय एवं इतिहास का वर्णन करें।
2. पग्वाश आन्दोलन पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
3. अमेरिका के रंगभेद विरोधी आन्दोलन की समीक्षात्मक समालोचना करें।